

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186115

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81
EJ 68 N

Accession No. H 3545

Author गोरखाप्री , अतुल कृष्ण .

Title नारी : महाकाव्य . 1958 .

This book should be returned on or before the date last marked below

नारी

(महाकाव्य)

लेखक

अतुलकृष्ण गोस्वामी



१९५८

आत्माराम एण्ड सन्स
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
सचालक
आत्माराम एण्ड सस
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

मर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित
प्रथम मस्करण
अक्षय तृतीया १९४७
मूल्य रु० १० ००

मुद्रक
सत्यपाल शर्मा
कान्ति प्रेस
आगरा ।

प्राक्थन

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम है 'नारी'। समस्त मानवीय सदाचार निष्ठ मानव धर्म्या स्त्री को नारी कहने है। वपु प्रकार प्रकृति प्रत्यय, वर्ण, गुणादि भेद होने पर भी नारीत्व की अभेदता से यह संज्ञा नारी मात्र की है।

मूर्तियाँ धातु, मातृ, आकार, अनुहार, भेद से अनेक भाँति की होने पर भी देवता सबमे एकसा है, शरीर विभिन्न होने पर भी सर्वान्तरगत आत्मा मे अभेद है, तर्क और प्रत्यय प्रकार अलग-गलग होकर भी प्रतिपाद्य तत्व एक ही है उभी प्रकार सर्वत्र, सर्व काल, सब मे नारीत्व भी एक सा एक है। सूक्ष्म सूत्र दिव्यातिशय रूप मे, इस अनन्त विभु नारीत्व की अंग भूता नारी अनन्त है। अशी रूप मे नारी केवल एक ही है। प्रत्येक मानवी मे उस नित्य नागी और उसके नित्य नारीत्व का चिराविर्भाव है। तत्त्वतः प्रत्येक स्त्री उसी की चेतन स्फूर्ति है। विराट नारी का यही विन्तन इस ग्रन्थ का अभीष्ट विषय है।

निखिल शक्तियों का विकास नारी वा स्वरूपानुभव अथवा तदपलब्धि का क्रम प्रस्तुत करता है। इतर लोकीय सृष्टि परक (गन्धर्वी, विद्याधरी आदि) सज्ञाओं से उसके सत्व और गुणाश्रित प्रकृति व्याञ्जित है। कुछ से भावस्थिति, आन्तरिक शोभा, स्वभाव सिद्ध गुण, शील और शारीरिक सुषमा व्यक्त होती है, इस प्रकार अनन्त सार्थक नामों मे नारी सम्बोधित है। विज्ञ भेद सौकुमार्य और माधुर्य भेदीय है। गति, प्रगति, वृत्ति प्रभृति मे स्वतः स्त्रीत्व नहीं है या तो स्त्रीत्वोत्प्रेरक आभासांश है, या किसी अधिष्ठात्र तत्व सम्बलित 'विभूत्यंश'। इस अवस्थान के साथ ग्रन्थ मे मानवी से प्रारम्भ होकर 'नारी' की परिणति पर्यन्त उसके व्यक्तिगत, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, कलात्मक, तथा व्यावहारिक स्वरूपों के प्रति विनम्र श्रद्धापूर्वित हुई है।

नारी का विराट 'निजत्व' अनिर्वचनीय माधुर्य आनन्द, सौन्दर्य, और संगीत का एकान्त आश्रय है। उसमें सत्य शिव सुन्दर समस्त सुकुमार तत्वों और सर्वोत्तम सत्वों का संयोग है। मानव जगत् के त्रिकालीय कला गुरुओं और तत्व मनीषियों द्वारा, साहित्य, और दर्शन की हेम मंजूषा में नारी तत्व निधियों और तथ्य चिन्तामणियों का अपूर्व संग्रह हुआ है। शास्त्रों, सन्तों, शास्त्राचार्यों और सामाजिकों की चिरानुनेया, प्रिय दर्शना नारी सर्व प्रिय, सर्वानुगेया है। नवोपस्थित काव्य में कुछ 'स्वरूप सर्जना' या रूप परिणति नहीं है। इसमें उसी अपौरुषेया नारी के प्रति गांधी युगीय पूजा सम्पन्न हुई है।

आलोचकों का मर्म, काव्य प्रेरक मूल के परिचय को विकल रहता है। दृष्टि प्रदा नारी अनुग्रह के बाद सम्प्राप्त काव्य की प्रेरणा का केन्द्र है, निखिल कला चेतना की अभिधान ब्रज भूमि। ब्रज की उज्ज्वल रस और मादनाख्य महा भाव मयी प्रेम विभूति परम प्रतिभाओं की निकषा है। चरम साधनाओं का फल है। भावों का अनुभव है कि यहाँ सैकत कणों से, इन्दु रश्मियों से, प्रातः गगन विहारी खग कण्ठ कूजन से, नवस्फुट कलिकाओं से, कदम्ब कुञ्ज में उतरते हुए अरुण आतप से अनवरत युगल केल्यनुकूल दिव्य नव रस निर्भरित रहते हैं। इसी रस के उन्माद में श्री चैतन्य देव का मूर्च्छनावेश, नवद्वीप और पुरी की वीथियों को वाष्पार्द्र किये है। मीरा की नूपुर शिञ्जन अरावली की गुहाओं में अद्यावधि मुखरित है। गोवर्धन गिरि की विरह ज्वरित शिलाएँ वज्रल मिश्रित अश्रु स्रोतों के जमे हुए खण्ड सी प्रतीत होती हैं, जिन पर धारियों सी चिलक रही है। सूरदास की कोमल कान्त पदावलि। यमुना की तरङ्ग तरङ्ग से उद्वेलित हो रहा है प्रेम महा सिन्धु जिसका एक एक बिन्दु है इस प्रकट महा-सिन्धु सा। ब्रज में पुरुषोत्तम विजित हुए हैं नारी के सत्तम सत्व से। यहाँ नारीत्व के सम्पूर्णत्व का साक्षात्कार और उसकी भुवन विमोहिनी महिमा का दिगन्त व्यापी विस्तार हुआ है। सम्पूर्ण नारी तत्व, जिसका अपर नाम ह्लादिनी है, जो निखिलाखिल शक्तियों की जननी है, श्री राधिका जिसका विग्रह है, एवं दर्शन स्पर्श सुरभि और रस में जो सम्पूर्ण सौन्दर्य समस्त आह्लाद, सर्वतम संगीत, सकल भाव, तथा अशेष सौकुमार्य की मदन मोहन मोहिनी नारी है; उन्हीं की वेणु वादनश्लथ निकुञ्जाभिगमन कालिक पद नख द्युति चिन्तन से, मेरी मलिन मति को जो कणाभा

मिली है। उसी का अस्फुट सुखोच्छ्वास इन छन्दों के अन्तर का निमित्त और उपादान है।

तात्त्विक दृष्टि से अनन्त जीवन की नित्य चैतन्य ज्योति ही नारी है। उसके सर्व शोभन सत्य समूह सर्वत्र भासमान है। पुरुष के सम्पूर्ण व्यक्तित्व गर्भ में वह प्रतिष्ठित है। उसके समस्त निजत्व में पुरुष का हित है। वह एक में भी भिन्न विराजित है और अनेक में भी अभिन्न। पहले वह आदि पुरुष में उनकी नितान्त पूर्णता के लिये अभिनिविष्ट रही बाद में उपसृष्ट हुई उन्हीं के पूर्णानन्द विधान के लिये। इस द्वैत के बिना अन्तर निभूत तन्मिथ रस राशि का आस्वादन असम्भव था। सृष्टि के सब सत्पात्र अनिश नारी सुधा मन्त्रयन के लिये विनिर्मित है। उनमें आपूरित होने के अनन्तर जीवन की सञ्जीविनी सुधा सी वही जीवास्वाद्य है। नारी आस्वाद्य आस्वादन और आश्वादक तीनों से पूर्ण होने के कारण ही स्वयं आकर्षण का केन्द्र भी है और आकर्षित भी होती है। जब आकर्षण करती है तब भुवनैश्वर्य बरस उठता है, जब आकर्षित होती है तब माधुर्य सिन्धु में ज्वार भाटा आ जाता है। इन्हीं दोनों क्रियाओं में उसका पुनीत मातृत्व जिसका स्वरूप उसको स्नेहाद्र करुणा जनित सत्व सर्जना है, निखरता है, और मदीला भोक्तृत्व जो उमका उच्छ्वन मुदन मोदन मय विलास है—दीप्त हो उठता है। अपने अपने रज तम सत्व के अनुसार कोई मातृत्व की शीतल पारिजात छाया में चतुरसा-स्वादन करता है, और कोई भोक्तृत्व की विहार कुञ्जों में नव रसास्वादन। इसमें भी भेद है तम और रज वाले इसकी छाछ पीते हैं, सत्व वाला पयः पान करता है परन्तु त्रिगुणातीत पुरुष शुद्ध नवतीत सेवन करता है। इस पर भी संस्कार और गुण तो अपने होते ही हैं परन्तु सत्पात्रों को पात्रता वह स्वयं देती है। 'नारी' की कविता में इसी विश्वास की लय है।

'नारी' की प्रथम अनुभूति पावस कालीन गगन के घन घण्डों की तरह अनन्त शक्तियों के रूप में होती है। छोटे छोटे बादल एक होकर विराट घटा में परिवर्तित होते हैं। उनकी इस क्रिया का क्षेत्र आकाश है। इसी तरह अलग अलग शक्तियाँ एकत्र होकर महा शक्ति बनती हैं। यही प्रकृति है। उनकी एकत्र क्रिया का जो क्षेत्र है वही पुरुष है। ये ही नर और नारी हैं। यहाँ सब चेतन, नित्य और सत्संकल्प है। प्रकृति पुरुष परस्पर में एक दूसरे के मूल है। आपसी सम्बन्ध कल्पना ही भाव

है। उसे व्यक्त करने की उत्कृष्ट विधि कला है। उदय का प्रकाश मैं आने वाला सत्य ही निगूढ़ रहस्य है। चित्रकार रङ्गों से, मूर्तिकार पत्थर पर छैनी से, गायक वीणा के तारों पर और कवि शब्दों, स्वरों की रञ्जु मे इसी रहस्य को बाँध लेना चाहते हैं। वह एक कुहक सा उत्पन्न होता है। नव विस्मय सगोज सा विकसित रहता है, आनन्द भागीरथी के कलस्वर सा मुखरित हो कर भी रहस्य, रहस्य ही रहता है, मानो प्रकृति पुरुष के अस्तित्व का यह रहस्य ही पूर्ण सत्य है, जहाँ अनुमान और कल्पना के पर भी थक जाते हैं। “नारी के आत्म गान मे” इसी रहस्य मयी की निगूढ़ रस राशि इष्ट मूर्ति के प्रति मेरी श्रद्धा प्लावित हुई है।

क्षीर सिन्धु से पितृ तत्व उत्पन्न हुआ। जिसकी सत्व नाभि में खिला अव्यक्त तत्व की सर्जना शक्ति का पुण्डरीक। इसी से स्रष्टा का जन्म हुआ। सत्व से रज, रज से तम, की उत्पन्न सृष्टि मातृ हीन घर की अरसिक सन्तान सी निरपेक्ष रही। रज तम, सत्व की सम्मिलित सृष्टि ने क्षीर सिन्धु मथ डाला। इससे उसका अन्तर शयित व्यक्तित्व जाग उठा और साकार होकर त्रिमूर्ति मे अभ्युदयित हो गया। भोक्तृ शक्ति शुद्धांश भाग लेकर रम्भा के रूप मे रजोगुणी देवों के यहाँ, वारुणी जो उसी की रम्य मूर्ति थी तमोगुणी देवों के यहाँ चली गई। अब प्रकट हुई समस्त सौन्दर्य, सगीत आनन्द रस की कोमल कमल मूर्ति पद्मा, जिनमे दिव्याकर्षण के हेतु से गुण विकार रहित भोक्तृत्व और महा ज्योतिर्मय शुद्ध सत्व मय, सम्पूर्ण मातृत्व विद्यमान था, उस पितृ तत्व पूर्ण परम पुरुष के वामाङ्ग मे अभिराजित हो गई। पुरुष के अपराजित ग्रहण की कान्ति से दीप्त और अपने भुवन विजयी समर्पण से सौम्य, दिव्य तमा माँ का भक्ति मय कीर्तन है मुझ अल्पमति के इस श्रद्धा जनित काव्य मे।

पृथिवी की प्रत्येक नारी उसी भोक्तृ-मातृ शक्ति की शुद्ध मूर्त चेतना है। चेतन मूर्ति है। मूर्त हो कर भी उसका विभुत्व आक्रान्त नहीं है। उसका प्रति वाञ्छित मनोरम-रस रमणीय सत्व तो सबके अपने भीतर विद्यमान है। बाह्यस्थित नारी उसे उद्बोधित उल्लसित कर रही है। नारी का आन्तरिक आविर्भाव भाव और प्रतिभा, की सृष्टि कर रसास्वादन का विवेक, विचार और लक्ष्य उत्पन्न करता है। नारी मुकुर बन कर सामने आती है, जिसमे निज शाश्वत स्वरूप लक्षित हो जाता है, और बहु उस छाया सी हट जाती है, जिसके साथ ही मन्दिर का सूर्योदय

सूचक मंगल वाद्य ध्वनित होता है। जब वह शुभ दृष्टिमान करती है तो कम्पमाकर की नंदन शोभा धूमि पर विलस उठती है। जब कृपा हेतु से ही दृष्टि हटाती है तब मानवात्मा के जाग्रत कवि-कण्ठ कमण्डलु से रस कादम्बिनी बरसा कर त्रिभुवन के मरु में मन्दाकिनी प्लावित कर देती है। मैंने मानव की पुंभूमि इसी शुद्ध मानवी की अर्चना में यह आरती दीर्घित की है। नारी की स्तुति गाकर मेरा कवि धन्य हो गया है।

जीवन दर्शन और जीवन विज्ञान के निगूढ सिद्धान्त, चेतनानन्द मय जीवन सम्पादनार्थ-नारी की अनुक्षणा अपेक्षा करते हैं। जहाँ जितना अणु और विराट् सत् चित् है वहाँ उतने ही अंश में आनन्द रूप से नारी प्रतिष्ठित है। पृथिवी पर नारी के रूप में प्रभु की आनन्द और रस राशि का ही आनन्द मय, रस मय अवतरण हुआ है। सत्त्व मय पुरुष जब शुद्ध सत् चित् में प्रतिष्ठित होता है तब 'आनन्द' रूप से अभिन्न होकर नारी अधिष्ठित होती है। जब रजोगुण मय पुरुष मन और बुद्धि में निविष्ट रहता है तब नारी आंशिक संज्ञा सी भिन्न अम्युदयित रहती है। जब नितान्त तमोमय पुरुष अधिष्ठा-च्युत इन्द्रियो में ही प्रविष्ट रह जाता है, तब नारी केवल मोहक और उन्मादक बाह्य तत्व सी परिलक्षित रहती है। कहने का तात्पर्य कि नारी स्वयं वह शुद्ध सान्द्र तरल ईषद् घन चेतन सत्य है जो स्वयं अपने प्राप्त पात्र के अनुरूप रूप में स्व-स्वरूपा दशित करता है। नारी के उपयोग प्रयोग पर ही निर्भर है अपना निम्नोर्ध्व आरोह अवरोह। जैसे उपा दर्शन के रसा स्वादन में कारण है अपनी ही दृष्टि, रुचि और प्रकृति, वैसे ही नारी दर्शन के मदसद् प्रभाव भाव में हेतु है जनकी अपनी स्वस्थास्वस्थ मनस्थिति-गितामित मति। तात्त्विक और निष्पक्ष दृष्टि से देखने से अपने नैर्गिक और यथार्थ रूप में पुरुष और नारी परस्पर के वास्तविक सत्य परक स्वरूप की उद्भावना के निमित्त नित्यानन्द, रस मय सत्त्व से सम्पन्न है। शेष सब कर्म, वृत्ति, सङ्ग और संस्कार जन्म है। 'नारी' में परोक्षापरोक्ष रूप में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

जीव के तत्त्व चतुष्टय में प्रहङ्कार जैसे संतोषक तत्व है, उसी प्रकार निश्चित रूप से विश्व के तत्त्व समुच्चय में 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के साथ जीव का अभिभावक-संयोजक तत्व है नारी। बाह्य क्षुण्ण क्षणिक सुख के लक्ष्य से परे नारी का विन्नन, ग्रहण, समर्क और सम्बन्ध यदि नित्यात्मिक, अन्तर दृष्टि परक विवेक और राग संयुक्त हो तो निर्विवाद

ही अभ्युदय और निःश्रेयस के प्रशस्त सरल मार्ग भी समुद्धाटित हो जाएं और जीव में उस परलक्ष्य की और द्रुत अभिगमन की सुशक्ति भी सञ्चारित होजाय। सम्भव है प्रभु के धातु श्रीविग्रह के स्थान पर ध्यान, धारणा, ध्येय की उपलब्धि, इस भगवदीय निर्मित चेतन विग्रह में ही हो जाये। . . यह बात अव्यवसायात्मिका बुद्धि और सूक्ष्माति निर्गुणा विभु दृष्टि की है—जो कठिनतम है, परन्तु असम्भव कदापि नहीं है। नारी दर्शन में यह दृष्टि सुलभ हो और उपरान्त इस स्वरूप का साक्षात्कार हो—‘नारी’ में इसी आशा-अभिलाषा की उत्कण्ठा ज्ञापित है। इस रचना का कला कौशल, भले दुर्बल हो, आलोचकों के आग्नेय भले ही मेरे अनधिकृत प्रयाम पर क्षुब्ध बरस उठे—परन्तु मुझे ‘नारी’ की रचना कर आत्ममन्तोष है और इसके अतिरिक्त अन्य कुछ अभिनयित नहीं है।

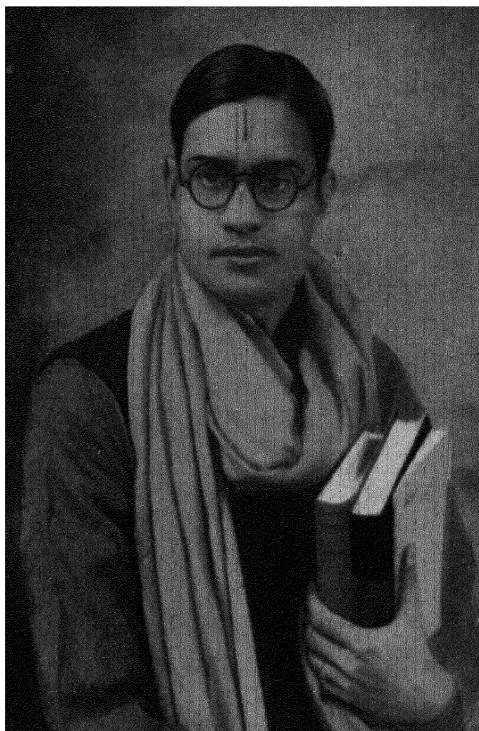
प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर प्रातः स्मरणीय पूज्य पितृ चरण श्रीमन्माध्व गौडेश्वर सम्प्रदायाचार्य श्री विजय कृष्ण गोस्वामी जी म० व्याख्यान वाचस्पति वाणी भूषण, विद्या वागीश ने मङ्गल शुभाशीर्वाद प्रदान करने की असीम कृपा की है। यह भी मेरा कम सौभाग्य नहीं है कि मेरे परम श्रद्धास्पद अग्रज एवं विद्यागुरु श्री मन्माध्व गौडेश्वर सम्प्रदायाचार्य अभिनव व्याकरणाचार्य सर्व शास्त्र, साहित्य, तर्कादि दार्शनिक महा परिणत श्री रास बिहारी गोस्वामी शास्त्री एम० ए० की मुद्रण परीक्षा के व्याज कृपा प्रसादिनी एक द्रुति दृष्टि भी इसे सुलभ हो गई है। यदि परमादरणीय पितृव्य श्री प० सत्यपाल जी शर्मा महानुभाव इस आत्मीयता एवं सौजन्य पूर्वक मुद्रण की यह सुविधा व्यवस्था प्रदान न करते तो सम्भव है पाठकों के पद्म पाणि तक पहुँचने के हेतु इस ग्रन्थ को न जाने कितनी प्रतीक्षा और करनी पड़ती। इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे मुझे जिन अन्य अनेक सहृदय सुहृदों का आन्तरिक सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त हुई है उन सबके प्रति मैं विनम्र उपकृति ज्ञापन करता हूँ।

विभूति भारती पुस्तकालय,

वृन्दावन।

लेखक

अतुल कृष्ण गोस्वामी



अतुल कृष्ण गोस्वामी

- समर्पण -

मैं अबोध असमर्थ अपठ मैं ! हीन बुद्धि अबिचारी ।

मुझ अयोग्य पर हुई अकारण करुणा किरण तुम्हारी ॥

ज्ञात न होने दिया दान निज, अविदित हृदय प्रबोधा ।

पत्र न लिखना आता मैं कब लिख पाता यह पोथा ॥

मुझे तुम्हारी आत्मा प्रिय है, तब सन्तोष अभिप्रेता ।

मेरा जीवन धन्य हुआ मैं ! गाकर तब माँहीमायुत ॥

मैं ! मुझमें जिसने करुणा कर मूर्ति तुम्हारी आँकी ।

जिसकी दृष्टि सुधासे सम्भव हुई सहज तब भाँकी ॥

वाणी मे रस, भाव हृदय में, प्राणों में कोमलता ।

जिसने मुझे सदय दी जीवित रहने की सार्थकता ॥

उस ज्योत्स्ना प्रद इस प्रसाद को मैं सादर श्रद्धाञ्जित -

नित्य निकुञ्जुद्दिष्टे । मैं ! तुम्हें गिनत कर रहा अर्पित ॥

२०१४ -

अक्षय तृतीया

वृन्दावन

} तुम्हारा -

} अतुल कृष्ण गोस्वामी

- (४३) गायिका । (४४) नर्तकी । (४५) प्राचीना । (४६) आधुनिका ।
 (४७) गणिका । (४८) ऋतुमती । (४९) सहयोगिनी (५०) वीरांगना ।
-

अष्टादश सर्ग अनुगेया ... २८१

- (१) चिर सुन्दर मादक मेरा प्रिय ।
 (२) नीद भी मेरी लुटी है जागरण भी खो गया है ।
 (३) मैंने तुमसे प्यार किया है ।
 (४) त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ।
 (५) विजन वन में खुल गई है बात मन की ।
 (६) सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुला दूँ ।
 (७) मधुर तुम्हारा प्यार चाहिये ।
 (८) मैंने तुम्हें पुकारा हे ।
 (९) क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है ।
 (१०) मेरा चिर विश्वास मधुर प्रिय क्रूर नहीं है ।
 (११) ?
 (१२) मोंतियों की रात ब्रीड़ित सकुचता मङ्गल सबेरा ।
 (१३) जय भारत भारती भुवन की विभु नारी रस गीते ।
-

एकोनविंशति सर्ग नारी ... २६९

जय भारत जननी ॥

प्रकृति पुरुष की कल्प केलि मयि महिमा मयि अरुनी ।
सरस, प्रोज्ज्वला, शस्य श्यामला, सृष्टि सरसि नलिनी ॥१॥
ज्ञान और वैराग्य सुतों सह भक्ति यहाँ रमती ।
दिव्य चेतना का दिन जिसमे शुद्ध मत्त्व रजनी ॥२॥
जीव ब्रह्म माया का शाश्वत पूर्णानुभव प्रद— ।
षड् दर्शन के सद्विवेक से पड़िपु दुख दलिनी ॥३॥
गंगा, यमुना सी, शत सरि मयि महा सिन्धु अर्चित ।
हिम किरीटिनी, विन्ध्यकिङ्किणी मानवता सृजनी ॥४॥
चौसठ कला, शास्त्र, सन्तों मयि, अखिलाध्यात्म निलय ।
श्रुति, विज्ञान, चतु, षड्, नवरस, सुरसम्पदा धनी ॥५॥
गीत, हर्ष, सौन्दर्य, सुधा, मयि, अष्ट सिद्धि नवनिधि ।
षट्कृतु सेवित, नित्योत्सव रत भव विभूति तटिनी ॥६॥
सर्वान्नीषधि, रत्न, वस्तु, गौ, घृत, पय, हेमाकर ।
उत्तम नर, उत्तमा सुतनु गण, फूलो फलों धनी ॥७॥
व्यापक ध्येय, धर्म, संस्कृति युत विश्व भारती निभूत ।
चिर स्वतन्त्र मंगल मयि मधु मयि मानव की अरुनी ॥८॥

जय भारत जननी ॥

कृष्ण हृदय के प्रियतम ठाकुर, श्री राधा ठाकुरानी,
इनके पद अभिषेक हेतु यह सञ्चित दृग का पानी ।
जो प्रतीक इनकी महिमा की सद्विभूति अविकारी,
जय नारी निज युगल भूति की संकुल द्युति अनुहारी ॥

मानवी

प्रथम सर्ग

१

सत्यं - शिवं - सुन्दरं - शाश्वत

शान्त सरल निर्मल नित नूतन ।

जयति मानवी चिर ममता मयि

भुवि पावन शुचि मन प्रिय दर्शन ॥

२

जीवन नभ मे सुधा वारिधर,
 युग प्रभात मे उदित रूप रवि ।
 हे ! अनन्त रमणीय रुचिर रम,
 अमृतःसृति ! करता प्रणाम कवि ॥

३

निखिल लोक गुरु, प्रति जन आत्मा !
 चिर अतृप्त जन, स्वप्न सान्ध्यघन ।
 तुमसे मधुमयि सबकी रजनी—
 मङ्गल मय, सुख मय सबके दिन ॥

४

मृदुता, मोह, मधुरता मे ऋजु
 सकल शक्तियों को आश्रित कर ।
 करुणा पयस्तुत, निज स्नेह मे
 त्रिभुवन मे पुरुषार्थ रही भर ॥

५

हो सजीव - संहत - मानवता,
 पूर्णा पुरुष की पुण्य प्रकृति जय ।
 मर्त्य लोक स्वलोक बना है
 स्वर्ग बना तुमसे महिमा मय ॥

६

वसुन्धरा के रङ्ग अङ्क मे,
 तुम मयङ्क, अकलङ्क पङ्क हर ।
 प्रति उमङ्ग मय राग रङ्ग मे,
 सङ्ग सदा ऋतु रश्मि अङ्ग धर ॥

७

पुरुष मिह निश्चय भूतल मे
 मिह वाहिनी नारी जय जय ।
 चपल चाह रमना मे तन्मय
 चाट रहा चिन्मय पद कुवलय ॥

८

लोक कल्प वह्निरि की शुभ फल,
महाकाल की हिम हीरक क्षण ।
सुख, सौभाग्य, श्रेय, शोभा तुम,
सृष्टि जीर्ण की कीर्ति आभरणः॥

९

अन्तर की लय रस आत्मा का,
प्राणों का सुख, यौवन का मधु ।
जीवन का सन्तोष, जीव का,
तुम चैतन्य, लोक मङ्गल विधु ॥

१०

मन के विषय वामुकी मे बंध,
रई बना नर का सुमेरु नग ।
हुआ मुरामुर से भव मन्थन
समुदित तुम पद्मा, जग जगमग ॥

११

अमित अर्थ मयि तन्मि व्यञ्जना,
देव कुहक, जिसके कोटिक मन ।
स्वय भक्ति नव महा भाव युत,
काव्य बधू तुम धर नव रस तन ॥

१२

योग पीठ, तुम सिद्धि योग की,
तेज तपो का, यज्ञों का फल ।
शिल्प कलाओं की प्रतिभा जय,
प्रति विभूति परिमल मय शतदल ॥

१३

तव शुभ कृति कर, सकल नियति कर,
अनघ हुआ युग, पूर्ण हुआ नर ।
सृष्टि शुक्ति मे तुम सम मुक्ता
धन्य प्राप्त कर भव रत्नाकर ॥

१४

भव सङ्घर्ष, शान्ति, श्रम पथ पर,
 धैर्य, प्रकाश, दिशा दर्शन तु ।
 विश्रामोक, प्रगति, गति, सम्बल,
 चिर पाथेय, कल्प छाया द्रुम ॥

१५

कुसुम, गुल्म, खग, मृग, युग, जन प्रति-
 सहित सुधा सुवर्ण घट, रस ऋतु ।
 मदन संपुटी मे पद्माचित
 तुम उतरी नन्दन की मधुऋतु ॥

१६

बीत वृषा संज्ञा मय घट घट,
 घर पर चल आये तुम पनघट ।
 स्नेह रज्जु मे दृढ तर बँधकर,
 मग्न प्राण के चिर रोते घट ॥

१७

नित्य वेश नव, अनिश नवल छवि,
 युग युग से समीप अनजानी ।
 हे ! आलोक मयी ! त्रिलोक मे,
 सब पर तव सोने का पानी ॥

१८

कण्टक जिसने कोटि बिछाये
 रुक सुकुमार तुम्हारे पथ पर ।
 मूक सजाती तुम चलती हो
 मुक्ता मणि उसके पग पग पर ॥

१९

युग पूजा के सिंहासन पर,
 अग्ररु, कपूर, रचित चल प्रतिमा ।
 मृकुल मही पर तुम स्वमर्त्य की,
 महिमा मयी अमर्त्य मधुरिमा ॥

२०

जीवन की ऊर्मिल गङ्गा मे
प्रेम पाल युत सुदृढ़ तरी तुम ।
जग को खड़ी पुकार रही है
नयन किनारे कहरा रिमझिम ॥

२१

कोटि कोटि कल कण्ठ कूककर,
गायक वीणा के अनन्त स्वर ।
चित्रकार की सुभग तूलिका,
धन्य तुम्हे पा मूर्तिकार कर ॥

२२

दृग की लघु सीपी में अगणित,
मोती से जग ढल ढुल जाते ।
एक तरल आँसू के कण मे,
अमित अमूर्त्त शुभाकृति पाते ॥

२३

प्रलय, सृजन, बन्धन, स्वमुक्ति चिर,
यौवन का मन का अनुमोदन ।
तुममे जन जीवन का आग्रह,
मदनाज्ञा, विधि का अनुशासन ॥

२४

तब स्पर्श, दर्शन से जग के—
कण कण की तंत्री बज उठती ।
दृष्टि द्रवित जन मन में शतधा—
चेतन विष्णु पदी द्रुत बहती ॥

२५

स्वप्न कल्पना, सुधि चाहों की,
भाव मुरुचि, सुख की पावस सी ।
श्रियैश्वर्य्य माधुर्य्य मयी तुम,
मोहन, मादन, की गोरस सी ॥

२६

नूतन जागरण, नव निद्रामव,
 नयनोत्सव, प्राणोद्भव अमरण ।
 प्रति जन द्वार स्वपद्म पाणिसे—
 रचनी तुम शुभ उल्लास तोरण ॥

२७

सब मूर्च्छित, मजामय प्रति द्रुत,
 सब यथार्थ, स्वप्निल सब तन्द्रित ।
 तुममे प्रकट, चगचर गोपित,
 तुममे मरुत, भुवन धवलामल ॥

२८

प्राणी, प्राणी प्राण प्राण मे,
 मुखरित तव अनिमेष गुणावलि ।
 जग की श्वाँसों मे प्रतीकमति,
 पूर्व परो की तुम विरुदावलि ॥

२९

निज चरित्र, चिति, मन की प्रहरी,
 चित्राधार, लोक जीवन की ।
 छवि वय, रस, निधि की कुवेर श्री
 तुम माली नरके नन्दन की ॥

३०

जीवात्माएँ यथा ब्रह्म से,
 तुमसे काव्यात्मा रस स्वस्तिक ।
 मधुर रूप के पुष्ट पोर पर—
 कोटि दण्ड धारी नत मस्तक ॥

३१

अति रहस्य सी, रत्न राशि सी,
 वस्तु रही हो तुम दुराव की ।
 देवि ! हेतु तुम उदय, अस्त का
 सकल पूर्ण की, प्रति अभाव की ॥

३२

अनिश उषा में क्षण मुस्काकर,
सन्ध्या में बहु विधि सजधज करं ।
निशि में निखर, इन्दु में ढलकर
आती रवि से सरसिज पथ पर ॥

३३

जीवन की चातकी चकित हो,
एक घूँट मधु पर हुँझारी ।
तब अशेष पावन भाँकी पर—,
त्रिभुवन की नरता बलिहारी ॥

३४

तुम जग की अस्तित्व आस्था,
कहाँ तुम्हारी किममें उपमा ? ।
जय तमिस्र मय भव प्राङ्गण की,
पद्म शोभना शरद पूर्णिमा ॥

३५

जगती की त्रिकाल महिमा तुम,
हो त्रिपाद महिमा अम्बर की ।
महिमा कौन तुम्हारी जाने ?
महिमा मूर्त स्वयं तुम नर की ॥

३६

अति निरुपाधि अखण्ड निजाश्रय,
शान्त तपोवन तप पूत तुम ।
मष्ट जहाँ क्षण रुक जीवों के,
जन्म जन्म के चलने का श्रम ॥

३७

तब विराट नारीत्व सदा से—
कर नरत्व का दान सिहाता ।
नर के रीते में वह अपनी—
सुषमा का भण्डार लुटाता ॥

५०

तुमाध्यात्म की सायुध प्रहरी
 अधिकारी प्रवेश पाते पर—
 हार अनधिकारी, विमोह की—
 कारा मे बन्दी होते चिर ॥

५१

हो सबका निज सहज संतुलन,
 सबके सत्स्वरूप का चेतन ।
 आत्म प्रतिष्ठा, निष्ठा सबकी,
 शाश्वत जन्म भूमि का दर्शन ॥

५२

तव उपेक्षिता गति विराम से—
 राष्ट्र, समाज, पिछड़ जाते जन ।
 संयत उचित तवाग्र गमन से
 सृजनोन्मुख रहता परिवर्त्तन ॥

५३

स्वय अहिंसा, शान्ति, प्रेम, तुम,
 मनोमूर्ति जनता की अवितथ ।
 वर्ग वर्ग की नैतिकता का
 तुममे मुक्त सहज ज्योतिष्पथ ॥

५४

दुग्ध, नीर मयि, तुम मराल मन—
 की विवेक निकपा सी निर्मल ।
 रजित हुई विश्व सागर पर
 अति अनिवार्य सुदृढ़ मौक्तिक पुल ॥

५५

पारस सी कञ्चन करती सब,
 सन्त, मलय तरु सी अपने सम ।
 कल्प लता, महि कामधेनु तुम—
 मन वाञ्छित जिससे पाते हम ॥

५६

मानव में जो आ न सका है,
देवि ! वही तुममें विशेष है ।
कर पायी अधिकार जहाँ तुम,
वहाँ न अपना क्षण प्रवेश है ॥

५७

तुम्हें विरच निज अन्य कला कृति—
विधि को विरस प्रतीत हुई जब ।
मण्डल मिस रवि-शशि शून्याङ्कित,
किया तिमिर पट से वेष्टित भव ॥

५८

तुमसे ज्ञात कहां से क्यों इस—
सुख दुःख पाप पुण्य में बहते ।
कबसे ? कैसे ? दाह द्वन्द्व में—
बद्ध मृत्यु जीवन हम सहते ॥

५९

देवि ! तुम्हारे ही आश्रय में,
निजादर्श, कैवल्य पला है ।
प्राणी को कर्तव्य, अभ्युदय,
जीवन को सङ्घर्ष मिला है ॥

६०

बूँद-बूँद मैं रुधिर बहाऊँ,
तिल-तिल, घुल-घुल, गल-गल जाऊँ ।
उद्धरण न मैं तब उपकारों से,
मूल्य कृपा का चुका न पाऊँ ॥

६१

अति समीप जीवन के तट पर—
इस विराट भूतल, अम्बर पर ।
इन्दु नयन का अश्रु सिन्धु तब—
शिरोच्छलित, लय भीत चराचर ॥

६२

प्रति युग पुरुष, युगो के प्रति कवि,
तरुण, वृद्ध, शिशु सबके द्वारा ।
सम्राटो ने, श्रुति, सन्तो ने,
तत्त्वज्ञो ने चरण पखारा ॥

६३

रति सज्जा, लज्जा सतीत्व की,
छवि, तवत्व, कुल शील, रसोत्सव ।
मांस पेशियो में विकचित मनु,
वय वसन्त मन्दार मनोभव ॥

६४

प्रत्यय, सङ्कोचो से बोझिल,
परम्परा, प्राचीरो से छन ।
पर स्वरूप रत मुक्त प्रकृत तुम
सौम्य पराश्रय मे प्रशस्त मन ॥

६५

शान्ति सन्धि तुम, शान्ति दूत चिर,
शान्ति सिन्धु, युग शान्ति सुधाकर ।
शान्ति वृत्त, चिर शान्ति साचरण,
सृष्टि अशान्त, तवोपेक्षा कर ॥

६६

तुम असीम की अमृत परिधि पर,
प्रलय अवधि तक जन सेवी हो ।
सुन्दरि ! तुम कितनी अद्भुत हो,
कहो मानवी या देवी हो ! ॥

६७

तव छवि के सायन्तन नभ का—
पुरुष सान्ध्य सर्वोज्वल तारा ।
शोभा के विराट सागर का—
वह दूरस्थ विशाल किनारा ॥

६६

मुक्त हृदय का तिमिर आवरण,
हुआ जगत् सत् चिन्मय अनुभव ।
व्यक्त आत्म चैतन्य हुआ तब,
तब स्नेह छवि दीप्ति मिली जब ॥

६९

लोक लोक आलोक पारहे,
तब स्व कोकनद के विकास में ।
प्रति अशोक पर साक्षी युग कपि,
अनघ देवि ! तुम असुर पाश में ॥

७०

जन्म मरण के द्वन्द्व तटों के—
मध्य बह रही जीवन धारा ।
जिस पर निखिल विभूति सिद्धिमय—
बहता स्वर्णिम पोत तुम्हारा ॥

७१

मानव मै, तुम मानवता हो ।
आत्मा तुम, मै दिव्य शुद्ध तन ।
हूँ लघु खनिज रत्न, तब नभ का—
खण्ड शरत्कालिक पयोज घन ॥

७२

यहाँ विश्व वन में पग पग पर,
खड़ी खोल फण ईर्ष्या व्याली ।
एक प्यार करने वाली हो—
बस तुम माखन से मन वाली ॥

७३

परखा जब इन्द्रियातीत तब,
पञ्च तत्त्व संहत प्रकाश को ।
निरख सका तुझ सगुण व्यक्त मे,
निज चेतन चिन्मय विकास को ॥

७४

यश काया, तुम हरि की माया,
 सिद्धि, मुक्ति पथ की चल छाया ।
 तुम्हे अनुग्रह से आग्रह से,
 मन, आत्मा रम मय ने पाया ॥

७५

तर्कोपशमन, विलीन भेद सब,
 अग जग की तुम एक इकाई ।
 तब मुक्ता मय मुक्त मुकुर मे,
 सबके अन्तर की परिछाई ॥

७६

शुभ, सुभाव सब तब स्वभाव में,
 संसृति के प्रभाव तुम में लय ।
 तुम उतराव चढ़ाव मयी के,
 तीर न नाव डूबने का भय ॥

७७

तब हेमाञ्चल के तल फेगिल,
 वर्षा के उडु सा गित पिङ्गल ।
 तरल, कुरल मय शरदोत्पल सा,
 है अनन्त शिशु का शिव सम्बल ॥

७८

शून्य सधन से मेरेपन मे,
 अमृत तोष अनहद उमगी हो ।
 स्वान्त की साधना सरणि पर,
 तुम अध्यात्म प्रदीप जगी हो ॥

७९

सत छिद्र मयि भव वंशी पर,
 मूर्त्त मूर्च्छता किमने गाई ।
 किस महान् ऋषि कवि की कोमल,
 काव्य कल्पना वपु धर आई ॥

८०

अति निचोड़ प्रति शुचि-सुन्दर का,
संस्ति का आनन्द आत्मधन ।
तव जीवन में प्रकट दीप्ति मय,
आस पूत का, तृप्त शान्त मन ॥

८१

यह संसार असार नहीं है,
सार रूप इसमें तुम नारी ।
तुझ वैतरिणी तरण तरी को,
व्यर्थ भार भर की है भारी ॥

८२

लेना मोह, प्रेम देना है,
क्षमा शील, पौरुष है सहना ।
प्रति उपकार प्रवृत्ति, सुहृचि तव,
सुख दे दुख से अञ्चल भरना ॥

८३

जो सचेष्ट संयत गति विधि मे,
निष्ठा मय विनम्र पग धरना ।
सचल तीर्थ नारी आश्रम मे,
जीवन्मुक्त पुरुष हो सकता ॥

८४

दिव्य शक्तियाँ सभी स्वर्ग से,
उतर मानवी तन धर सुन्दर ।
हो पाती त्रैलोक्य पूजिता—
राधा, सीता, प्रभृति नाम धर ॥

८५

निकले कुछ गलके कुछ घुल के,
भलके कुछ तुममें आ छलके ।
पलकों में पलके प्रथम से,
भार हुए सब हलके फुलके ॥

८६

कसी वीन सा, अणु अणु तृण तृण,
 शिक्षित चरण चाप से भंकृत ।
 प्राण प्राण सङ्गीत, हर्ष तव,
 नित नव स्वर नव लय में मुखरित ॥

८७

दर्शन के विज्ञान, कला के,
 तर्क, भक्ति के चौराहों पर ।
 वाङ् दिशा, इतिहास मोड़ पर,
 तुम बहु पथ सी लक्ष्य एक पर ॥

८८

नर व्यक्तित्व, कृतित्व, तेज, रुचि,
 मत्स्वरूप में सतत तव स्थिति ।
 कोटि वसन्त अनन्त शरद का,
 उजलापन, तुममें अति परिणति ॥

८९

जलती जब निरभ्र जन मन में,
 अति प्रचण्ड निर्धूम व्यथानल ।
 बरसाती टग से करुणा घन,
 श्वासों से शीतल मलयानिल ॥

९०

कृतघ्नता बट तल, मद सरिता—
 छल तट, जला शक्ति मरघट पर ।
 स्वार्थ चिन्ता, स्मर निशा, मानवी—
 शव, नृतीर्थ के अहं घाट पर ॥

९१

निबल, निठुर, निर्धन, अस्थिर को,
 नश्वर, निर्भर को, आतुर को ।
 शक्ति, दया, वित्त, स्थिति, अमरण,
 मिली मुक्ति विग्रह सी नर को ॥

६२

पश्चिम पर ज्यों सान्ध्य श्री का,
बहु रूपों रङ्गों मे विनिमय ।
जन की रङ्ग पीठ पर करती—
तुम शत भाव विभावित अभिनय ॥

६३

अमर प्यार के तुझ सागर का—
कोटि भुवन व्यापी लघु शीकर ।
घायल गति के मुझ पागल की—
गागर भर पाये कितना फिर ? ॥

६४

घने तमोमय बीहड़ वन की—
वर्षा सरि के बीच भँवर गत—
निशि के तट खोजी नाविक की,
दिशा द्योतिनी तुम द्युत विद्युत ॥

९५

तव शुभ दृष्टि, मधुस्मित से सखि ।
नर्तित मस्त मदीला भुवि मन ।
ज्ञान, स्मृति, अनुभव, आस्वादन,
भावान्वित रीभते रमिक ज ॥

९६

समा रही सबके अथाह मे,
सिहर रही समुद्रित स्वथाह मे ।
तुम सम्पन्न कूल पर कल मयि,
बहती चुप जगके प्रवाह मे ॥

९७

चटुल चेतने ! मम चिद् घन यह,
प्रेरित चेत गया है तुममे ।
सहज हुआ, निज ' ' आज 'त्वम्',
प्राण प्रतिष्ठा है तव मम मे ॥

६८

तुम स्वराष्ट्र दीवट पर शोभित,
 मङ्गल मधुर दीप चिर चेतन ।
 पाते है आलोक स्व पथ पर,
 जिससे भीतर बाहर के जन ॥

६९

देश, जाति, गुण, रङ्ग, रूप, वय,
 धर्म, वृत्ति का स्वल्प विचार न ।
 है अभीष्ट श्रद्धालु हृदय को,
 विभु नारी विभूति नीराजन ॥

१००

‘मातृ भाव’ मानवी प्रमुख तव,
 भूले हम न ‘मातृ देवो भव’ ।
 वैसे सब रूपो मे तुम हो,
 तुममें सब रूपो का उद्भव ॥

१०१

भ्रान्त न हों नव पथिक सरल मन,
 पार कर सके दूरी दुर्वह ।
 नारी मन्दिर के पथ पर यह—
 वाणी का लघुदीप जगा रह ।



माँ 

द्वितीय सर्ग

१

अरुण विन्दु, कृश माँग, मुक्त-कच, वदन स्मित मय ।

दृग प्रफुल्ल, उज्ज्वल ललाट, दैवी छवि, लघु वय ॥

हृदय पयस्नुत, पुलकित तन, स्वर्गीय वेश शुभ ।

मित व्रीडित, शिशु अङ्क, जयति माँ नव ममता प्रभ ॥

२

स्वर्ण पोत युत सान्ध्य सिन्धु सी श्यामा पुलकित ।
 मानस सी कमलावृत, जिसमे राजहंस मित ॥
 शरद रात्रि सी अङ्क लिये यह पूर्ण कलाधर ।
 पूर्व दिशा, जिमका बालारुण पिये पयोधर ॥

३

सबके प्रति अनुराग, विराग लिये अपने प्रति ।
 अपने मे रह सुनि बनी प्रति जन में जाप्रति ॥
 इसका मौन अखण्ड-विश्व की उत्सव हल चल ।
 हृदय कारुणिक जल से भिचकर उर्वर भूतल ॥

४

यही तमिस्रा मे लेकर लघु दीप निज सजग ।
 सिन्धु पार के उम अनन्त पथ की रह अध्वग ॥
 तीर तीर पर तोल चरण, कर लहर निवारण ।
 मरणोल्लास, सुधा जीवन की करती वितरण ॥

५

ध्वंश-रुधिर-शोषण आहो के लोह पीठ पर ।
 लिये प्रेम वरदान खडी है यही चरण धर ॥
 अविश्वाम - अन्याय - कपट - अत्याचारो पर ।
 थिरक रहा आनन्द इसीका चिर क्षेमङ्कर ॥

६

सजा रही मेरा निश्च्रेयस् उर की धडकन ।
 पथ की बाधा विनयन करती सकरुण चितवन ॥
 खोल दिये माँ की श्वासो ने माया बन्धन ।
 उसका पग पग अडिग, सजग युग युग का जीवन ॥

७

माँ लोचन के सजल नील घन सदा छलाछल ।
 विश्व विपुल अङ्गार पुञ्ज को करते शीतल ॥
 निज लघु गागर मे समेट अगणित मधु सागर ।
 जग नभ में भरती असख्य अकलङ्क सुधाकर ॥

८

अमिट रूप, अक्षय यौवन, शाश्वत गीतो मय ।
सदा एक रस, एक स्थिति, गत जन्म मरण भय ॥
अतुल, अनल्प, अपार, अमृत अज, अदभुत, अतिशय ।
शुद्ध भाव माँ का न प्रलय मे भी होता लय ॥

९

साध्वी माँ के चरण रेणु कण जिसके सिर पर ।
त्रिभुवन के साम्राज्य मुकुट लुगिठन तत्पद पर ॥
लोह लेखनी छू माँ लोचन का पारस जल ।
स्वर्ण वर्ण मे लिखले अपना युग युग पल पल ॥

१०

महानाश यह प्रलय तुम्हारी कारा में घिर ।
वात - दाह - वर्षा - उल्का - बरुनी से बँधकर — ॥
अधरों पर मुस्कान आँकते लौन भरे ब्रण ।
खिल पड़ते नव वर्ष, नये दिन, नव निशि, नव क्षण ॥

११

अथ पितु-प्राणा सन्तति हित मे संतत रत ।
सरल-स्वच्छ व्यवहार कुशल-वात्सल्य समूर्जित ॥
दिव्य आचरण मे वैदिक ऋषि-सो है अनुपम ।
निज चरित्र मे अपरिमेय-अग जग मे निरुपम ॥

१२

मणि सा अमल, धवल मुक्ता सा, हिम सा शीतल ।
तरल ओस सा, घन सा सरल, कुरल सा निश्छल ॥
सान्ध्य राग रञ्जित सुरसरि धारा सा भिलमिल ।
माँ का हृदय मृदुल माखन सा, पय सा फेनिल ॥

१३

यही राम का धाम, काम का यही पराजय ।
यही नाम अभिराम ललाम ललित लीलामय ॥
मुलभ यही विश्राम, सफल सब याम इसी थल ।
पाने यहाँ विराम लोक संग्राम चलाचल ॥

१४

देव यजन व्रत-नियम कष्ट से कर नाश वासर ।
 सन्तति के सुख सतत माँगती कर फैलाकर ॥
 तनिक दुःख मे देख कही निज सुत को पलभर ।
 हो जाती वह विकल-तड़फ उठना माँ का उर ।

१५

मानव का आधार, निखिल अधिकार मयी चिर ।
 जिसमे एकाकार, प्यार जयकार रहा कर ॥
 सहसा लिया पुकार-हार कर रुका पार पर ।
 बैठा भुक्त साकार अम्ब के पुण्य द्वार पर ॥

१६

सदुख जुटा लेती सुविधा के सम्भव साधन ।
 स्वशिशु ओर से कभी न करती मेला निज मन ॥
 उन्हें पूर्ण करने मे होती रिक्त जीर्ण तन ।
 उन्हें बनाने मे देती है मिटा स्व-जीवन ॥

१७

माँ के अधरो पर ममता के कोमल स्वर गण ।
 विद्युत् घन पर हो मनु पारद के मुक्ता कण ॥
 हृदय लुभा लेते है उसके प्रिय सम्बोधन ।
 श्यामा वसुधा पर वर्षा मे यथा नये तृण ॥

१८

उसे शान्ति मिलती देकर निज सब तन मन धन ।
 तृप्त हृदय होता उसका खोकर अपनापन ॥
 अपने कारण जीना होता उसे न रुचिकर ।
 रहती वह सुख सत्त्व सहित पर की ही होकर ॥

१९

लोक कर्म के कठिन चक्र का प्रत्यावर्त्तन ।
 त्रिगुण सृष्टि के त्रिविध रूप का पट परिवर्त्तन ॥
 प्रायः सुख दुख पतनोन्नति की पुरावृत्ति सित ।
 नव प्रतीत होती उसके रङ्गों से रञ्जित ॥

२०

काम धेनु यह भरती सबके मुख पय उज्ज्वल ।
कल्प वृक्ष यह पाते जिससे सब वाञ्छित फल ॥
नव नव रत्न प्रकट करती नित यह रत्नाकर ।
अमृत वृष्टि करते जग मरु पर इसके जलधर ॥

२१

मसृण मृदुल वह अरुण तरुण अति करुण वरुणवर ।
सरल-तरल-शुचि-रुचिर-मधुर माँ सुन्दर-सुन्दर ॥
निज आत्मा की ज्योति विश्व को करती वितरण ।
माँ केवल तब लोक जहाँ कलि का न अवतरण ॥

२२

नङ्ग धड़ङ्गा ब्रह्म तोतले बोल श्रुतिस्वन ।
शङ्काओं से रङ्क अङ्क का अलङ्कार बन ॥
माँ गोपी के मन वृन्दावन की लीला कर ।
रिभा रहा है प्राण नाचकर और नचाकर ॥

२३

शिक्षक ने निज कार्य भार माँ से पाया जब ।
जननी का ही दान जनक की गुरुता गौरव ॥
सब पूजन से चिर प्रसन्न गुरु पितर देव नर ।
तुम अहेतुकी कृपा सदा करती हो सब पर ॥

२४

ग्रीष्म दाह पीड़ित महिपर वर्षा सकरुण गल ।
भिगो भिगो कर ढक देती ज्यों नव दूर्वा दल ॥
भव भय से चिर भीत बाल के मृदुल अङ्क तल ।
फैलाती माँ हेम-प्रभ ममताद्रि निजाञ्चल ॥

२५

शिशु मयङ्क सा लसित अङ्क में माँ ! तब जाकर ।
निर्भय सोता वरद हस्त की थपकी पाकर ॥
तुम असीम सी उस सीमा के क्षितिज प्रात पर ।
युग का चित्राधार सजाती अमर रूप भर ॥

२६

क्षेम प्रश्न तव, नीराजन वाद्यो से सुख कर ।
 कुशल स्वस्ति कल कल मयि मणि सुमेरु की निर्भर ।
 माँ तव आशीर्वाद साम उद्गीथ अनश्वर ।
 अभय वचन तव भुवि के सब मधुरो से सुन्दर ॥

२७

यह स्वभाव से स्वच्छ, गुणो का गुरु आकर्षण ।
 विनय दया से रहती सबकी मित्र प्रकाशण ॥
 प्रकट प्रजापति का इसमें सब रचना कौशल ।
 माँ पद रेण पुनीत-स्वर्ग वन्दित वसुधा तल ॥

२८

भर कर लोक गरल, समेट कर अमृत कलश विधु ।
 खाकर निखिलालोक, पान कर अखिल तिमिर मधु ॥
 शैलोच्चयता-सप्त सिन्धु का गुरु गहरापन ।
 नाप खड़ा सम तल पर दृढ़ माँ का अपनापन ॥

२९

भूखी रह कर भी प्रसन्न शिशु को दे भोजन ।
 जीर्ण वसन से शिशु ढकती रह स्वयं निर्वसन ॥
 उसे सुलाती जाग जाग अगणित निशि अपलक ।
 शीत, ग्रीष्म, वर्षा में तजनी साथ न वह थक ॥

३०

कावेरी यह प्रखर पुरुष के तप्त हृदय पर ।
 बहती शत शत ऊर्मि लिये गङ्गा सी शिर पर ॥
 सरस्वती सी वेग-वती सबकी वाणी पर ।
 यमुना सी अनुरक्त लसित सब की मेधा पर ॥

३१

निमित्त कर पकवान स्वकर से रसमय नूतन ।
 स्वयं भूमि पर बैठ स्व शिशु को देकर आसन ॥
 अमितोत्साह भरी साग्रह करती परिवेषण ।
 विजन डुलाती मुदित एक टक लख शिशु आनन ॥

३२

शान्त सिन्धु ही पी सकता है ज्यो बडवानल ।

धीर धरा ही रहती उर मे भर ज्वालाचल ॥

मौन हिमालय ही रहता सुरसरी प्रकट कर ।

प्रसव व्यथा मे रह सकती जननी ही सुस्थिर ॥

३३

जननी की कोमल निसर्ग मे विधि, हरि, शङ्कर ।

लोम लोम मे माँ के सुर गण का निवास चिर ॥

विश्व-प्रलय मे हरि उर मे पाता सरक्षण ।

यह करती नव माह गर्भ मे नर को धारण ॥

३४

संस्मृति कृषि में मानव हल नारी सिञ्चन जल ।

दोनों ही अनिवार्य अम्ब के मणिमय मे ढल ॥

माँ का तन है धरा और आकाश हृदय तल ।

उड़ता मै लघु विहग बीच मे मुक्त पङ्ख पल ॥

३५

मिला लोक को माँ मे आज सत्य, शिव, सुन्दर ।

माँ मे पाया सकल सृष्टि ने निज सम्बल धर ।

माँ के अगणित रूप व्याप्त, प्रति जन माँ की प्रति ।

सब मे उसके संस्कार सबमे उसकी मति ॥

३६

सर्व प्रथम लख पड़ी अम्ब ही जग मे केवल ।

दीख पड़ा माँ मे ही मुझको जग निखिलाखिल ॥

माँ की लघु गोदी मे था मेरापन आश्रित ।

पर मेरे विराट में भी थी माँ कब सीमित ! ॥

३७

जिसके यौवन का अतीत यह अभिनव शैशव ।

यह यौवन शिशु के शैशव का भावी वैभव ॥

इसकी अँगुली पकड़ उठा शिशु इतना ऊपर ।

निज से लघु हो रहे चरणतल भूधर अम्बर ॥

३८

जो करती प्रतिकार न उसका अल्प अपेक्षित ।
 तुममे सब का सत्व-धर्म-हित-सदा सुरक्षित ॥
 कर्त्री, धर्त्री, यह धात्री, समर्थ, सर्वाधिक ।
 किन्तु बनाया नहीं पृथक् अस्तित्व निज तनिक ॥

३९

दूर निकट के अमित बन्धु बान्धव जन से घिर ।
 सुख दुख मे प्रति क्षण पुकारता माँ ही माँ नर ॥
 नयन सूँद, कर ध्यान-हृदय मे-माँ का दर्शन ।
 होता किस अखण्ड नव जीवन का उद्घाटन ॥

४०

नयनों मे शुभ शकुन, कुशल जिसके होठों पर ।
 बन्दी जिसमे दुर्ष, लोक शृङ्गार रहा कर ॥
 भाग्यवान मे, आज धन्य मेरा शुचि अन्तर ।
 पग पग पर वरदान बिखरते माँ के जिस पर ॥

४१

इस अनन्त संसृति के क्रम तुमसे आलोकित ।
 जिन पर चल हो लक्ष्यःसिद्धि वे पथ पद चिह्नित ॥
 शान्ति, श्रेय, सङ्गीत, सुधा, सौन्दर्य, रस विपुल ।
 घनानन्द, यौवन, जीवन, द्युति माँ मे अविकल ॥

४२

म्रियमाणों को प्राण, त्राण निर्बल को देकर ।
 नृत्य चराचर मे भरता उसका उदार स्वर ॥
 पा लेता प्रति युग तुमसे युग पुरुष एक नव ।
 होता महा मानवी का भी तुमसे उद्भव ॥

४३

कितना अक्षय धैर्य-प्रद माँ का आश्वासन ।
 साहस देता है अनल्प उसका उद्वोधन ॥
 माँ का प्यार दुलार सृष्टि का शुभ सम्मोहन ।
 सब निधियो से पूर्ण सदा माँ का कुबेर मन ॥

४४

तुम पयोधि, ममता अहि, क्रीडित शिशु नारायण ।
 तुम विकसित सरोज - राजित बालक चतुरानन ॥
 आधि व्याधि - बाधा - चिता - वह सब लेती हर ।
 एक बार पीड़ित भिर पर धर हेम वरद कर ॥

४५

अहा ! यशोदा कर नवनीत लिये सह मोहन ।
 यह कौशल्या मुदित अङ्क भर रघुकुल नन्दन ॥
 देवहूति यह तनय कपिल से सांख्य श्रवण रत ।
 अदिति-भुवन पति वामन बन जिसके आगे नत ॥

४६

सुरसरि सी पावन, शशि शीतल, सरल धेनु सम ।
 दिवि सी सप्रभ-घन सी उदार सबकी प्रियतम ॥
 मुक्त-वद्ध हे ! विरत ! लीन ! जन जन्म मरण मय ।
 माँ के मन मन्दिर मे तुम स्वतन्त्र अकुतोभय ॥

४७

सुन्दर है आकाश नयन मे बन्दी प्रति पल ।
 मोहक है वह सिन्धु नेत्र मे बन मुक्ताहल ॥
 अलको मे निशि पुलक, अधर युग पर अरुणोदय ।
 माँ ममत्व मे बरस रहा घिर मेघ अमृत मय ॥

४८

शिशु की क्रीडा-लीला मे ब्रीडा मयि हो लय ।
 विस्मृत निज पीडा कर देती स्वर्गिक सुख मय ॥
 शिशु सह शिशु सी होकर तुम होती अनुरञ्जित ।
 यह वात्सल्य शतक गीतों से होता मुखरित ॥

४९

स्थूल - सूक्ष्म - लघु-वृहद-सभी के भीतर बाहर ।
 अनिल-अनल-जल-थल-नभ-दिशि-मन-काल भेद कर ॥
 त्रिगुण-त्रिगति-इति-अथ-मय-शत छाया माया पर ।
 माँ में ही लय उदय हुआ-जीवैक्य-जगस्थिर ॥

५०

चन्द्र खिलौना दिखला बहलाती शिशु क्रन्दित ।
 चुप होता लख प्रेम कान्त मुख पर शशि बिम्बित ।
 मातृ क्रोड पाने रोता शिशु मचल-विकल मन ।
 उसे चाहिये वह, न तुष्ट हो पा इन्द्रासन ॥

५१

शिशु का हास तुम्हारी संस्मित एक रूप बन ।
 कर देता भव विषम निशा का तम उच्छेदन ॥
 बालक की कङ्कण किङ्किणि मे मुस्पन्दित मन ।
 सरल मानवीय सद्भावों का मूर्त संगठन ॥

५२

अहो ! सरल ममताद्र तुम्हारा कल कल छल छल ।
 शत शत रस प्रपात धारा सा ऊर्मिल उज्ज्वल ॥
 किरणों का फेनिल तरलायित प्रतिभ सार नव ।
 स्व स्नेह स्नुत अमृत दुग्ध यह मातृ उरद्रव ॥

५३

शिरा शिरा का रुधिर, शुक्र, मज्जादिक का रस ।
 मेधा की निज शक्ति-पुरुष का शाश्वत पौरुष ॥
 अंगों का सुगठन अन्तर भावों की सस्कृति ।
 मानव की आकृति माँ के पय की है परिणति ॥

५४

जीवन का विश्वास-श्वास का सुरभित मन्थर ।
 प्राणों का उल्लास-हास के मधु का सागर ॥
 चलने का उत्साह-डटे रहने का साहस ।
 पय का प्रकट प्रकाश सुकृतों के सुकृतों का यश ॥

५५

यह ललाट की चमक, नयन का अमृत ज्योति घन ।
 यह कपोल कुङ्कुम-अधरो का पाटल कानन ॥
 यह स्वरूप की शरद-अग का उभड़ा यौवन ।
 मातृ दुग्ध कृत प्रति उत्सव मन के संयोजन ॥

५६

स्वात्मीय, सर्वस्व, सर्व मयि, सत्सर्वाश्रय ।
लोक हृदय साकार, लोक का मूर्त अभ्युदय ॥
पय विभावती, सद्भिभूति माँ विभावरी वत् ।
करती शशि मुख से शत करुणा किरण प्रसारित ॥

५७

माँ के प्रति रह कर कृतघ्न-कुलघ्न एक सुत ।
अपर सदा सर्वात्म भाव से माँ सेवा रत ॥
उभय सुतों के हेतु तुल्य माँ की मंगल मति ।
किन्तु सदय सविशेष मूढ खल बालक के प्रति ॥

५८

जो स्वजाति के सहज धर्म से हुआ पराङ्मुख ।
विदुला सी कर्तव्य मार्ग पर करती उन्मुख ॥
माद्री सी दे विदा रहे कुन्ती सी प्रेरक ।
माँ मदालसा सी शुभ चिन्तक मार्ग प्रदर्शक ॥

५९

द्वेषभाव सबके उर प्रायः पर उन्नति पर ।
इष्ट अम्ब को लोक वन्द्य हो हम लोकोत्तर ॥
उद्यत निज बलिदान हेतु वह सुत के कारण ।
जाति राष्ट्र हित में कर देती वह भी अर्पण ॥

६०

लक्ष्मी का ऐश्वर्य्य-शची के दुर्लभ वंभव ।
अन्नपूर्णा कोष—भारती के विद्यार्णव ॥
महाशक्ति की शक्ति, अप्सराओं के यौवन—
से, सम्भव क्या माँ ममता कण का मूल्याङ्कन ।

६१

हरि सी विग्रहवती, भक्ति यह हरि की विग्रह ।
है विरिञ्चि पद तुच्छ प्राप्त कर मातृ अनुग्रह ॥
मातृ अर्चना युक्त लोक में मन्दिर गृह गृह ।
मातृ निष्ठ जन का अनिष्ट क्या करें नवग्रह ॥

६२

स्वर्ण तरणि माँ चरण तरण को भव वरुणालय ।
 निज अक्षय मणि दीप तिमिर जिससे मन का क्षय ॥
 कौटि वर्ग-अपवर्ग मातृ पद पर न्योछावर ।
 जननी ही निज तीर्थ, प्रकट जिससे तीर्थङ्कर ॥

६३

सफल हुआ संगीत, काव्य का प्रयत्न कलेवर ।
 कला धन्य-प्रतिभा कृतार्थ-सार्थक समस्त स्वर ॥
 पुण्य हुआ प्रत्यक्ष, धर्म निखरा-मति भास्वर ।
 जीवन है चरितार्थ मातृ महिमामृत पीकर ॥

६४

प्रेम परम-पुरुषार्थ, अर्थ करुणा सर्वोत्तम ।
 सेवा ही परमार्थ, स्वार्थ परहित का उद्यम ॥
 योग-यज्ञ-तप-मौन, सत्य ही धर्म कर्म हरि ।
 निष्ठा ही मत्प्रकृति, पूज्य माँ ही सर्वोपरि ॥

६५

मन मे भक्ति, शक्ति आत्मा में, लक्ष्मी कर पर ।
 सरस्वती वाणी पर, बैठी मुक्ति चरण धर ॥
 माँ का सत्य सगल सुन्दर है-माँ का शुचि उर ।
 माँ का भाव सहज मगल मय, माँ अविनश्वर ॥

६६

माँ पद रज करण मुकुट पहिन ज्योतिर्मय हिम नग ।
 माँ के गंगाजल मे धुल धुल उज्ज्वल अग जग ॥
 माँ का पावन लोक-रोक कुछ-टोक न किञ्चित ।
 है सर्वत्रालोक, लोक पथ मुक्त-शोक गत ॥

६७

मातृ विरोधी रह सकता कब कहाँ सुरक्षित ।
 धीर वीर गम्भीर सजग इसके अनन्त सुत ॥
 देन मणि की आलोक राशि सी सदा मुहाग्नि ।
 चरण मलय-से लिपट मुग्ध माया की नाग्नि ॥

६८

लोभ जनित अस्थिरता, काम जनित चञ्चलपन ।
स्वार्थज अघ, मोहज तम, व्यवहारिक रूखापन ॥
राग द्वेष कृत लघुता, वृद्धि जन्य मिथ्यास्मय ।
मातृ हृदय सु पुनीत-न जिसमे तनिक लोक भय ॥

६९

उस असीम को तोल, क्षुद्र सीमाओं से तुल ।
अनल धरा के सचल भाव निष्ठा से बोझिल ॥
मानव का कङ्काल चिता की ध्वस्त भस्म पर ।
नर्तित माँ का गान अस्थियों में अर्चित कर ॥

७०

मधु, पय, सित, घृत, अमृत, कल्प पादप फल, शर्कर ।
गीत माधुरी-कविता रस, पिक स्वर, वनिताधर ॥
माँ इस एक वर्ण से अधिक कहाँ किसमें रस ।
है त्रिभुवन किञ्जल्क सार युत मातृ उर कलश ॥

७१

फूलों के अभिनन्दन, पल्लव के प्रणाम शत ।
स्वयं समय के अभिवादन, ऋतुओं के स्वागत ॥
व्योम वन्दना, मिन्धु यजन, महि गान, गिरि स्तव ।
मानव मे रवि शशि करते नीराजन माँ तव ॥

७२

आशा प्रकृति प्रधान, सच्चिदानन्द मयी शुभ ।
सतरङ्गे सुर धनु सी उमकी कीर्ति दिव प्रभ ॥
सद्भगिनी - सत्कुल कलत्र, ;सद्दुहिता - सत्सुत ।
नित्य सत्य मातृत्व सभी में सदा अवतरित ॥

७३

सर्व समन्वय, सर्व समर्थन, साम्य सर्व दल ।
कवि सौन्दर्य, दार्शनिक सत्य, सन्त का मङ्गल ॥
विदु का तर्क, सरल का निश्चय, पर का विस्मय ॥
जय मातृत्व अनन्त - सान्त - सर्वाश - सर्वमय ॥

७४

पिता धैर्य, माँ क्षमा, शान्ति सखि, वहिन दया चिर ।
 स्वजन यमादिक, वन्धु दान हित, पति परमेश्वर ॥
 लाज वसन, ज्ञानान्न, भाव जल, धर्म सदन सित ।
 प्रेम योग कर प्रसव करे माँ एक सत्य सुत ॥

७५

मातृ दिवा का भानु, निशा का राका शशि सुत ।
 बाह्य भुवन द्युति मय करते निज अस्त उदय रत ॥
 पर तव कुक्षि प्रसूत परम तेजस्वी बालक ।
 एकाकी ज्योतिर रखता त्रिभुवन युग युग तक ॥

७६

शील सुता का रूप, तुष्टि से भगिनी सत्कृत ।
 युक्त वधूत्व लोक में होता पूजित ॥
 उत्सर्गों में साध्व शुद्ध नारीत्व निरन्तर ।
 सत्सन्तति से सहज पूर्ण मातृत्व धरा पर ॥

७७

सिन्धु-इन्दु, हिमगिरि, सुरसरि, प्राची से दिन कर ।
 हो सकते महान् माँ के ही सुत महान्तर ॥
 सन्तति दर्पण स्वच्छ, अम्ब की शुचि छाया मय ।
 सन्तति का प्रति पग प्रतीक मत् माँ का परिचय ॥

७८

मन्त्र विन स्वर्ग यन्त्रणागार निरयवत् ।
 माँ की ममता जहाँ प्राप्त है वही स्वर्ग नित ॥
 लघु प्रकाश में, कृश स्वरूप में, सीमा में मित ।
 किन्तु विश्व के अणु अणु में वह जीवित जाग्रत ॥

७९

मातृ जाति की, वधू वंश की कीर्ति वनी रह ।
 दुहिता के प्रति अतः अधिक चिन्ता करती वह ॥
 सुत प्रति उद्यम अधिक भार रक्षा का उस पर ।
 किन्तु सुता सुत प्रति न तनिक अन्तर उसके उर ॥

८०

क्रमशः जैसे आता दुहिता में नव यौवन ।
वह सम्बन्ध निमित्त बनी रहती उत्सुक मन ॥
देकर उसका हाथ किसी सत्पात्र पाणि तल ।
थम पाता है माँ के अन्तर का कोलाहल ॥

८१

सुता विदा का वह अनिवार्य करुण कोमल क्षण ।
मातृ हृदय में कमक भरा चुभता मर्म-व्रण ॥
ममता का वह सिन्धु ज्वार भाटा मय चञ्चल ।
भरती जिसकी लहर सभी के दृग जल संकुल ॥

८२

परम तुष्टि, परिपुष्टि, लोक की तृप्ति, दीप्ति सब ।
प्रति युग का इतिहास तुम्हीं से पाता गौरव ॥
लोकाराध्य, उपास्य, इसी का हो पूर्वाचन ।
मातृ देवता प्रति न करे वयो स्व हवि विभर्जन ॥

८३

दाने चुन चुन चुगा वाल पुलकित खग माँ अति ।
गौ का कितना भाव प्रकट रहता स्व वत्स प्रति ॥
हर्म अम्ब का ध्यान अहा ! शिशु से लोकोत्तर ।
उमी भाव से लीन व्योमचर-जलचर-थलचर ॥

८४

नव स्नेह विह्वल करती कोमल आलिङ्गन ।
शिशु तन लघु मुक्ता से होते लसित दुग्ध कण ॥
मन्दस्मित मय, अरुण राग सा माँ का चुंबन ।
शिशु कपोल कोपल पर मनु पाटल की विकचन ॥

८५

दुख से हर्ष, असद् से सद्, तम से ज्योतिर्मय ।
यह अधर्म से धर्म, मृत्यु से अमृत निरामय ॥
कटु से मृदुल, पाश से मुक्ति, निरस से रस पर ।
उठी मर्त्य से वह अमर्त्य पर लोक पाणि धर ॥

८६

यह आशा का केन्द्र, गहन वन में प्रशस्त पथ ।
 महा सिन्धु में नाव, गगन का दीप्त वायु रथ ।
 मधु स्वप्नों का लोक, दूबतों का आश्रय तट ।
 माँ है भव के तप्त पथिक का शुचि छाया-वट ॥

८७

मिला सदा शिव है हिमाद्रि कन्दर में तप कर ।
 सुन्दर को पाया समुद्र की लहरों में घिर ॥
 सत्य हुआ साक्षात् परीक्षा की ज्वालाचित ।
 मिला उसे पूर्णत्व पुण्य मय जननी बन कर ॥

८८

कुछ रङ्गीन क्षीण रेखाओं मे कण कण ढल ।
 वर्तमान यह सह अतीत भावी की शृङ्खल ॥
 लोक चित्र पट पर करती मानवता अङ्कित ।
 मानव मे करती विराट भव भाव अलंकृत ॥

८९

अमृत कलश युत तेज पुञ्ज धन्वन्तरि सी सित ।
 शरच्चन्द्र मयि सजल श्याम घन घटा समूर्जित ॥
 ब्रह्म कमल उत्पत्ति काल की विष्णु नाभि वत् ।
 गर्भवती जननी होती पृथिवी सी शोभित ॥

९०

भक्तानिल से पुलक श्वास का शीत विमोहन ।
 रुद्ध कण्ठ मे सजा रहा गीतो का उपवन ॥
 अरे निकट का निकट, दूर का दूर भाव तट ।
 सदा रिक्त का रिक्त पूर्ण का पूर्ण मातृ घट ।

९१

निविड निराशा और दुराशा के उन्मथन ।
 अस्थिर विषय प्रवृत्त तमोमय ओ मेरे मन । ॥
 क्षुद्र क्षणिक यह देह-विकृतियों का आच्छादन ।
 मुक्त्युपाय, उद्धार मार्ग माँ का पद वन्दन ॥

६२

पलकों के संगीत-अधर के नव कोमल स्वर ।
 उर के स्पन्दन मदिर, श्वास के मुरझित मन्थर ॥
 गिर द्युति तन्तु करण-अलक अलियों के गुञ्जन ।
 पय के मिस चिर बहा सभी में स्व माँ स्नेह घन ॥

६३

लोक सत्य में प्राण प्रतिष्ठा आत्मदान कर ।
 नव संस्कृति का शिला न्याम मानव की महि पर ॥
 संसृति के विकाम मे कृत चिर अनुष्ठान तुम ।
 तुमसे रोपित, फलित, पल्लवित-कुसुमित भव द्रुम ॥

६४

दूरी से भुज बाँध, निकटता से चिर हट कर ।
 कर का पंछी, त्याग व्योम खग पर ललचाकर ॥
 प्रकट सत्य को लाँघ, कल्पनाओं में बह कर ।
 कामधेनु माँ के समीप भी रहा रिक्त नर ॥

६५

जीवन के दिन की उज्ज्वल आतप मयि दिन कर ।
 माँ है विभावरी की शीतल शान्त सुधाकर ॥
 मुत स्नेह मे दृग के मुख नक्षत्र भलकते ।
 माँ शोभित राका-सन्ध्या सी सुख स्निग्ध चिर ॥

६६

मातृ तेज कर उदित विष्णु के नाभि कमल छल ।
 माँ स्वरूप सत्ता सागर का बिन्दु त्रिमुर बल ॥
 माँ उत्तम-विग्रह ईश्वर की, प्रतिनिधि जग में ।
 माँ में भुवन श्रेय-पुण्यों का पक्क मिष्ट फल ॥

६७

अति दुर्बोध विषम त्रुटियों से, घनतम तम से ।
 भुवि विवेक पथ, शान्त गील का कर शुभ समुदय ।
 दिव्य तुम्हारी अखिलात्मा के विभु विकास मे ।
 जीव जीव कर रहा चेतना, चेष्टा मञ्जय ।

६८

सम्भव सुलभ देव दुर्लभ वैभव तुमसे चिर ।
 अभिनव रस रत्नों मय शुचि छवि का क्षीरार्णव ॥
 भव में सुख सौरभ का विमल वसन्तोत्सव तुम ।
 देवि ! तुम्हारा इस धरती को है अनि गौरव ॥

६९

विश्वासों की कुरल, भाव की अनुकूलानिल ।
 तुम पुण्यों का स्रोत, पोत थ्रद्धा का मानव ॥
 सुनते सुनते गीत तुम्हारी शुचि श्वासों का,
 कौन जानता प्राण लक्ष्य तक जा पहुँचे कब ? ॥

१००

ऊर्मिल पारावार सुखद संसार प्यार मय ।
 पुष्ट देह, मन तुष्ट, लिये सबका सर्वोदय ॥
 मम प्रति आस्था सँजो हृदय मे मणि सी दुहिता ।
 जीवन तट पर आई माँ रत्नाकर से बह ॥

१०१

आज बरसने उतरा माँ ममता का नव घन ।
 मुझमे बिखरा पिक का राग, शिखी का नर्तन ।
 माँ का मधुर प्रभात खिला मेरा सरोज मन ।
 हुआ वेणु मम स्वरित मातृ यमुना के स्व-पुलिन ॥



दुहिता

तृतीय सर्ग

१

गत शैशव की शुचि सुधिवत्,
संस्मित सी द्युत, पय सी सिन ।
स्नेहस्नुत उर पर राजित,
जय दुहिता उषा नवोदित ॥

२

दम्पति रति शरत्सरसि की,
 सद्योत्फुल्लित प्रथमोत्पल ।
 शृङ्गार सुधीर्णव की यह—
 नव शुक्ति मुक्त मुक्तमहल ॥

३

सम्पूर्ण पुरुष की प्रभुता,
 नारी की विभुता गुरुता ।
 दुहिता में हुई समाहित,
 अग जग की निजता, ऋजुता ॥

४

होता मानव मुख उज्ज्वल,
 संसार श्रेय मय पावन ।
 अभिमान भूमि, गौरव पथ,
 जन त्रिकुल कीर्ति का द्युति घन ॥

५

पद्मारुण, सुताभरण की,
 किरणों का कल्प प्रसारण ।
 जागरण सुधा से करता,
 निज तिमिरावरण निवारण ॥

६

शशि उडु मय नभ जिसका मन,
 प्रति जन जीवन चिर आह्वर ।
 धरती की विभु काया की,
 दुहिता आत्मा अविनश्वर ॥

७

विलयोदित होतीं नभ पर,
 क्रम किरणों जिसके कण की ।
 यह इन्दु, कला लघु जिसकी,
 शशि सेखर ने धारण की ॥

८

सागर ने भीत प्रसू के—
अन्तर मे इसे लुकाया ।
पर आज सुरासुर से छिप
हमने स्वभाग यह पाया ॥

९

प्रमुदित अग जग के जन मन,
प्रेरित युग युग के प्रति कवि ।
माँ के अञ्चल से समुदित,
यह दुग्ध धौत अदभुत छवि ॥

१०

हर्षावधि, परिधि सुकृत की,
गति, विधि स्वरूप शोभा मुधि ।
दधि धवल, उदधि गहना यह,
जननी के प्राणो की निधि ॥

११

संस्मृति के मख मण्डप मे,
आविष्कृत सर्जन अभिनव ।
मानव के रङ्ग स्थल मे,
यह नव जीवन का उत्सव ॥

१२

शत शरदो का उजलापन
कोटिक वसन्त मधुरासव ।
यह मातृ अङ्क में विलसित,
अगणित स्वर्गों का वैभव ।

१३

आभा, शोभा, प्रतिभा का,
शिव, सत्य, अमृत सुन्दर का ।
शैशव मिष प्रकट समूर्जित,
सारल्य निखिल अन्तर का ॥

१४

युग, वर्ष, निमिष, क्षण, निशि, दिन,
हेमस्मित, मधु से उजले ।
इसकी पावन पद रज से,
मम श्वास श्वास घट मँजले ॥

१५

दम्पति की आशा का फल,
अभिलाषा की रस परिणति ।
अभिव्यक्ति उभय के सुख की,
दो प्राणों की एक स्थिति ॥

१६

मधु ऋतु का खग-कुल कलरव,
होरहा समाहित घर में ।
गिरि नद सा मुखर, मुकुर सा—
शैशव मधु निर्भर उर में ॥

१७

ममता की मोहिनि, मोदिनि,
करुणा की कुहकिनि, कृजिनि ।
कामना सुधा की दोहिनि,
है सुता कृपा कादम्बिनि ॥

१८

सुसंदन, सुहसन, सुवचन की,
सुरभित सोने की कारा ।
इसकी सुधि रेशम से बँध,
मन ने विवेक बल हारा ॥

१९

ब्रैल तारों से शशि से,
धूली पर सोकर सन कर ।
मरती ऊपर नक्षित है,
पद के तल गाता अम्बर ॥

२०

प्राणी के आत्माजिर में,
यह जीने का सुख उत्सव ।
यौवन की घन हल चल में
निज आत्म तुष्टि का वपु नव ॥

२१

इस दर्पण मे प्रतिबिम्बित,
जिसने अविनाशी देखा ।
उसने संसृति मे खीची,
सौभाग्य श्रेय की रेखा ॥

२२

आनन्द अलौकिक लहरी,
हो रही चेतना बहरी ।
आलिङ्गन मे उलझी शिशु,
सौन्दर्य साधना गहरी ॥

२३

उपरान्त मिलन के जिसकी,
चाहों में तन्मय दम्पति ।
यह दिव्य गृहस्थी की है,
शाश्वत विभूति, दिव्य स्थिति ॥

२४

इन तुलनाते बोलों मे,
गुन गुन करता सा मधुवन ।
धरणां के लघु शिञ्जन मे,
रुन भुन करता ज्योतिर्घन ॥

२५

यह साधु गृही के घर में,
अक्षय मणि दीप प्रसाधित ।
त्रिभुवन के यश मन्दिर पथ-
इसकी छवि से आलोकित ॥

२६

मानव के नियति गगन पर,
 यह प्रेम पूर्णिमा का शशि ।
 वसुधा पर मुग्धा विलसित,
 सौभाग्य सुधा प्रभ सुखनिशि ।

२७

कौमार्य पञ्च कन्याओं—
 नव कन्याओं का तैजस ।
 यह अत्रि कुटी का संहत,
 अमरो का शैशव तप वश ॥

२८

है इस अपूर्ण लघुता में,
 पूर्णता महत्ता गोपित ।
 इस मिष मानव की सस्कृति,
 सन्ततियो मे आरोपित ॥

२९

भव प्रलय, विलय के जल के—
 अश्वत्थ पत्र का सम रस ।
 अप्रकृत-अनादि-सर्वग शिशु—
 अवतरित हुआ दुहिता मिष ॥

३०

रस भासमान रहता है,
 यह उद्भासित रहती है ।
 भव की इस भास्वरता को—
 रुचि सम्भाषित करती है ॥

३१

सित शुल्क पक्ष सी क्रमशः ।
 वात्सल्य परिधि से बढ़ती ।
 यौवन की मधु बेला के,
 नव उज्ज्वल रस से सनती ॥

३२

पाने का कभी न होता,
लव लोभ सम्बरण इसका ।
खोना भी हो जाता है,
आनन्द उपकरण रम का ॥

३३

अति मानव की महिमामयि,
शाश्वत मङ्गल मयि नारी ।
जय ज्योतिर्मयि, चिन्मयि चिर,
सुन्दर शिशु मूर्ति तुम्हारी ॥

३४

तव स्वर्ग सुधा की गगरी,
बदली सी छलका करती ।
युति लोल ललित लीला से,
विभु आत्मा चिलका करती ॥

३५

केतकी कौमुदी की दिशि,
कैरवी माधवी का पथ ।
पाटल, उत्पल अटवी से—
तुम्ह भाव भैरवी का रथ—

३६

रुक्ता कवि की कुटिया पर—
उल्लास नया भरता सा ।
बढ़ता युग की श्वासो पर—
जीवन जय की सरिता सा ॥

३७

सबके निज बहु भावों में,
तव विविध विभूति बरसती ।
सब काल तुम्हारी शोभा,
मन के संगीत परखती ॥

३८

कायस्थिति का परिवर्त्तन,
 भाव स्थिति लाभ न पाता ।
 प्रति रूप तुम्हारा प्रति पल,
 प्राणों को अतिशय भाता ॥

३९

प्रतिमा लघु, गुरु, सित, श्यामा,
 पर रञ्ज न देव विपर्यय ।
 बहु रूप, बहु स्थिति, बय में,
 तव चिद् व्यक्तित्व समन्वय ॥

४०

उतराव, चढ़ाव प्रकृति निज,
 चिह्नित चर्चित रखती है ।
 तव प्रति बढाव की द्रुत गति,
 गोपित, बेछित रहती है ॥

४१

अनहद, जन मन में वादित ,
 शान्तिप्रद, उन्मद जय ढप ।
 तुझ अनिश पुण्य की थाती,
 दम्पति ने पायी तप तप ॥

४२

सन्ध्या के घन कुंकुम सा,
 सहसा केशोर्य विलसता ।
 अभिभावक गण के मन में,
 चिन्तन का नव पथ खुलता ॥

४३

उत्कर्ष निखरता रहता,
 उत्सर्ग पनपता अविरल ।
 मौलिक आदर्श उजलते,
 जाते सङ्घर्ष नये ढल ॥

४४

आनन्द उच्छलित ऊर्जित,
संगीत नयन मे प्लावित ।
प्राणों से प्रेम छलकता,
सौन्दर्य मुधेन्दु नवोदित ॥

४५

माँ स्नेह मथित सागर की,
तुझ कौस्तुभ को कर धारण ।
कुल यश सहस्र-मुख-ग्रहि-पर,
तव पितु लगते नारायण ॥

४६

चिन्मय, अकुतोभय, अक्षय,
सर्वाश्रय, सर्व निलय हो ।
हे ! अमृत सुते ! संसृति मे,
सर्वत्र तुम्हारी - जय हो ॥

४७

तुम बरसाती धरती पर,
तन, मन, यौवन से कञ्चन ।
प्रति चरण उगाता पथ पर,
मधु ऋतुओ के पाटल वन ॥

४८

सन्तोष, क्षमार्पण आर्जव,
सौभाग्य, विनय, कौशल द्युत ।
तव शुभ गति के अनुगत, शुचि,
तप, सत्य, दया, पद का द्रुत ॥

४९

हिमनगजा शुचि कर जन को,
तन हीन पदाती सुरपुर ।
मानवजा तुम रच देती,
शत स्वर्ग यही मिट्टी पर ॥

५०

सम्पूर्ण त्याग मयि तव गति,
 सर्वस्व हरण में सक्षम ।
 तव ग्रहण परम मंगल मय,
 तव दान शुभे सर्वोत्तम ॥

५१

समता, ऐश्वर्य, तितिक्षा,
 संयम विवेक आस्तिकता ।
 गाम्भीर्य तेज, साहस, बल,
 तुममें स्वरूप की स्थिरता ॥

५२

नव यौवन, मन मधुवन में,
 निज नया रास रचता है ।
 इसका छवि मुकुल स्वपर तव,
 मृदु लज्जाञ्चल ढकता है ॥

५३

छू प्रथम मेघ का जल कण,
 गन्धो से रेणु महकती ।
 नव वय शृङ्गार निरख माँ,
 चाहों से चटुल चिलकती ॥

५४

आभरण शील, मर्यादा,
 आवरण, सगुण, मित भाषण ।
 रह सदाचारिणी करती,
 पालन गुरु जन का शासन ॥

५५

घटता बढ़ता रहता शशि,
 यह सहज सतत बढ़ती द्रुत ।
 निश्चित लक्षो की इति पर,
 नव दिव्य लक्ष्य रचती नित ॥

५६

प्रति जन का सरस कुतूहल,
उत्सव मय भव कोलाहल ।
कुटिया की चहल पहल हो—
तुम राज महल की हल चल ॥

५७

पिक गृह मश्रम शिशु पलने,
होकर समर्थ उड जाते ।
जन कर, पालन, पोषण कर,
हम कहाँ तुम्हें रख पाते । ॥

५८

अति नये अपरिचित कर में,
अस्तित्व विमर्जन तब कर ।
निश्चिन्त हमारी आँखे,
चिन्ताग्रो से जानी भर ॥

६९

जब नये भाव मे रस में,
तुम खो, खपती, निभ जानी ।
गत मधुर स्मृति, अति ममता,
कितना सबको कलपानी ॥

६०

चिर कालिक विदा तुम्हे दे,
अधिकार, प्रभाव हटाते ।
फिर दूर पराये से रह,
मत्कार, दुलार जताते ॥

६१

उस करुण विदाके क्षण मे,
विह्वल विरक्त हो जाते ।
आसक्त कहो फिर कितनी,
मर्मन्तिक पीडा पाते ॥

६२

तव स्वर्ग कलश से प्रतिपल,
 जीवन का सत्य छलकता ।
 इस ओर तुहिन कण भड़ते,
 हासाम्बुज उधर विकचता ॥

६३

पर घर के जीवन रण में,
 सुख दुख के अभिनय कितने ।
 तुमको करने पड़ते हैं,
 अगणित स्वरूप सखि ! अपने ॥

६४

तुम हालाहल प्रति जन का,
 निज प्राणों में भर पीती ।
 विन गिला उपेक्षा सह कर,
 कर्तव्य धर्म से जीती ॥

६५

नागीत्व प्रस्फुटित तुम मे,
 नारी का मार समाहित ।
 दृष्टि ते ! तव पुण्य प्रगति की—
 गव ओर दियाणें विमृत्त ॥

६६

अग जग के भीतर बाहर,
 सब ओर तुम्ही विभु दर्शित ।
 नारी ! नर निज नाडी मे—
 तब विद्युत् गति लग्न विस्मित ॥

६७

इन्द्रियातीत योगी की—
 सर्वत्र व्यापिनी ध्वनि हो ।
 विष विषय विदूषित भव के,
 विषधर की मंगल मणि हो ॥

६८

पितु माँ के चिर पुण्यो ने,
तप ने, सौभाग्य मुकुत ने ।
तव मिय नव जन्म लिया है—
आत्मा ने दिव्य जगत् ने ॥

६९

जन जन कुटुम्ब मे कुल मे,
हर्ष प्रद है तव उद्भव ।
पाती निज जीर्ण जरा क्षण,
वर्षों का विमरग घेराव ॥

७०

अवलोक कोकनद सा मुख,
मव शोक भूल जाता मन ।
आलोक लोक पाता है—
खिलता अशोक सा जन जन ॥

७१

आचर्यग स्मृति, प्रचलन मे,
चिर आदर की पात्री तुम ।
अधिकार दाय तव रक्षित,
कुछ भाव न सेवा के कम ॥

७२

अन्तर विवेक प्राची मे,
सौभाग्य किरण मी जागो ।
हे ! वरद ! आज भिक्षुक में—
निज उर चाहा वर माँगो ॥

७३

माँ, पितु, भाई, पति, सुत, प्रति
सद्भाव, प्रेम श्रद्धा हो ।
आये न तुम्हारे पथ पर—
खल क्षुद्र स्वार्थ अन्धा हो ॥

७४

तव पृष्ठोपरि गुड भेली,
 फूटी है प्रथम जन-स्तुत ।
 तुम बहिन बनी, जन्मा है
 तव भाई, कुल दीपक सुत ॥

७५

नारी ! तुम इस धरती पर,
 सुख वरमाने आई हो ।
 सबके जीने का सम्बल,
 संगीत साथ लाई हो ॥

बहिन 

चतुर्थ सर्ग

१

चिर चेत रहा जिसके चिन्तन से चेतन ।

चल रहा चित्त चामीकर चारु चरण धर ॥

जय बहिन ! शुद्ध रहते निज प्रकृति, विकृति तज ।

जिसके चरित्र शशिधर से लिपट स्व-विषधर ॥

२

चिर ज्ञात, ज्ञय, विस्तार, विभूति, लुटाती ।
 चिन्तन की नई दिशा से नई धरा पर ॥
 मृगमयी, मनोमयि, नयी साधना उतरी ।
 निज नलिन नयन मे नवोन्नयन सिञ्चन कर ॥

३

द्रुत वर्ग चेतना की विराट चेष्टा ढूँसी ।
 विकसित समाज के वर्ग समन्वय का मधु ॥
 आध्यात्मिक युग की आत्म अंशु से अर्जित,
 आधुनिक प्रात मे यह अतीत निशि का विधु ॥

४

सुन्दर स्वभाव मे, मर्यादा से रुचिकर ।
 चिर परम्परा मे मधुर, गरम पर के घर ॥
 यश मयि समाज मे, यह स्वधर्म से पूजित ।
 कुल के गौरव से कान्त, व्यक्ति मे ऊर्जित ॥

५

द्रष्टा के चकित नयन की प्रथमाभा सी ।
 स्रष्टा के आदि स्रजन की कविता अभिनव ।
 कर्त्ता कृत पूर्व प्रगति की तुष्टि समुज्ज्वल ।
 यह बहिन, विजेता की अन्तर वाणी ध्रुव ॥

६

होगई अलक्षित जाति हस कुल की जो,
 शुभ नीर-क्षीर विवेक शेष उसका यह ।
 या घुला ताप से बिना वृष्टि के जो घन ।
 उसकी समता का स्वर्ण पुञ्ज यह निस्पृह ॥

७

यह एक मुमुक्षु-बुभुक्षु जनो का विस्मय ।
 मृदु आभा, जिससे दग्ध अनल, रवि तापित ॥
 यह अम्बर का आनन्द, स्वप्न वसुधा का ।
 यह मानव का सङ्गीत, देव छवि दीपित ॥

८

आदर्शवाद की मीमांसा सी नीरव ।
यह एक समीक्षा है जीवन जग की नव ॥
यह दीर्घ प्रतीक्षा पर की प्राप्त सफलता ।
चिर ब्रह्म जीव के तर्कों का निर्णय सब ॥

९

संज्ञा प्रज्ञा से हीन चपल भोलापन ।
यह प्रथम तृषा के आग्रह का लघु आनन ॥
इसके उदार अविकार हृदय प्राङ्गण में ।
सम्पन्न पर्व करने आते निर्धन नृप ।

१०

जिस पर पड़ जाती दृष्टि वही धवलामल ।
छू देती जिसको हो जाना वह कञ्चन ।
सम्मुख होते ही जीव अकल्मष होता ।
हो स्मरण मात्र से अग जग का जड, चेतन ।

११

कहणा अन्त है अन्त न इस क्षमता का ।
सम्पन्न वसन्तो से मृदुता का मधुवन ।
यह मृदु ममत्व मन की सुख दुख सरिता पर ।
करता सत्त्वों की शान्त विभूति विमर्जन ॥

१२

मन गिरा कर्म से स्वप्न, सुप्ति, जाग्रति में ।
सब देश-काल, पात्रों का मत्व रजस्तम ॥
उद्वेग, वाद, आवेश, विषाद, भुलाकर ।
यह रहती सबकी आत्म विभा का संगम ॥

१३

यह दूर विजय के लघु प्रपात कल कल सी ।
पर्वत समीप के शिष्ट ग्राम की हल चल ॥
निर्जन घन वन की सघन कुञ्ज सी नीरव ।
वह राज मार्ग का मूर्त मधुर कोलाहल ॥

१४

सङ्केत शलभ का, खद्योतों का इङ्गित ।
 सन्देश दीप का, उडु निर्देश, अश्रुलय ॥
 रवि शशि के पद्माङ्कित ज्योतिर्मय स्वर का ।
 है बहिन ! तुम्हारे ही अन्तर से आशय ॥

१५

अगणिता अचेत सकल्प, मूर्च्छित आशा ।
 मौलिक विकास के प्रश्न, हृदय के स्पन्दन ॥
 मेरे विस्मृत विश्वास, वृषाकुलः सपने—
 पागये यहाँ साकार नया सा जीवन ॥

१६

तुम शुभ्र शरद् सी मांस पेशियों में घिर,
 इम इन्द्र जाल तम को हरती जादू कर ।
 उन्मादित वीन बजा अन्तर नागो को—
 क्यों नचा रही विष दन्त तोड़ कीलित कर ॥

१७

रुक गये गगन से उतर सान्ध्य मेरे शुभ,
 अनुभूति हृदय की ओट कर चुकी गुञ्जन ।
 बरसा उसका आकाश ज्योति शीकर बम,
 कर रहा पद्म मुख मे हिरण्यमय नर्तन ॥

१८

संतप्त हृदय की आश्वासित भाषा में,
 पीडातिरेक उपरान्त अश्रु, रेखान्वित ।
 बाधा विमुक्त जन की कृतज्ञता मे भुक्त,
 तुम अनिश आर्त्त की आँखो मे प्रतिबिम्बित ॥

१९

बन जाती एक चुनौती जो मानव की,
 ललकार कभी देती निज पौरुष को यह ।
 देती जय का विश्वास, युद्ध का साहस,
 जीने का शुभ वरदान, जगत् का आग्रह ॥

२०

लक्ष्मी सी सबके भाग्य पटल पर राजित ।
 सबकी वाणी पर सरस्वती सी शोभित ॥
 प्रतिजन उर के असुरो पर यह चण्डी सी ।
 देवों पर भक्त-विभूति-विभव सी भूषित ॥

२१

वह मानव की अमोघ सीमा का पूजन ।
 यह संसृति का अमरत्व, भुवन का चेतन ॥
 यह अमरों का आह्लाद, नाद सिद्धों का ।
 यह परम लाभ प्राणी का, आत्मा का धन ॥

२२

निर्माण बन्धु से, ज्योति प्राण मे माँ से ।
 कल्याण प्राप्त कर लेती पितृ पदों पर
 पा शक्ति श्वश्रु से, आण स्वसुर से पाकर ।
 निर्वाण सुलभ करती प्रियतम का कर धर ॥

२३

कटु क्या ? नीरसता कहाँ ? द्वेष किसके प्रति ?
 पनघट पर जितना तुष्ट, मुदित मरघट पर ।
 जड़ कौन ? दूर किससे ? कब जरा, मरण, रुज ?
 अघ कैसा ? पा इसकी अनुभूति अनश्वर ॥

२४

मर का कठोर है आदि श्रेय पथ गामी,
 तब शुभ स्नेहः से भक्त हृदय चतुर्दिक ।
 हठ गई काम दल दल पग के नीचे से,
 मानव का तार्किक बहिन तुम्ही से आस्तिक ॥

२५

राष्ट्रीय भावना, व्यक्ति साधना क्रम में ।
 यह युग युग की विचारणा अविरल ॥
 तद्बुद्ध जाति की परम्परा गाथा सी ।
 है यह मशीन युग का नृशेष नैतिक बल ॥

२६

तुम खड़ा अमङ्गल मे मङ्गल की बेला ।
 कण्टकाकीर्ण पथ मे प्रकाश सर्वोदय ॥
 देकर संवेदन शील सरस संगोपन ।
 तुम हेमाङ्कित करती मसृति का मृदु ...

२७

नवनीत मृदुल होकर के लोह कठिन जब—
 निज मलयस्मय को ज्वाला मुखियों से भर ॥
 सबके मधुपर्ण मे आगे आजाती
 यह कुसुम शायिनी चढ़ कण्टक शूलों पर ॥

२८

अस्तःसलिला यह निज अनुवादित ऋजु कृति ।
 बहु व्यस्त श्रमिक की आर्ष आन गीतावलि ॥
 के सम्पुट मे स्वानुभूत मौलिक श्रुति,
 माङ्गलिक अहिमा मख की मृत्युञ्जय वलि ॥

२९

कल्पना कुहर से भाँक किमी की आशा,
 पीती उत्सर्गों के लोहित मुक्ताहल ।
 हीटक-हीरक इसकी मणि मञ्जूषा मे—
 मोने रहते गत रुधिर आन्तियों के पल ॥

३०

अन्तर आलोडित ऊर्म बाहिनी चुल बुल ।
 लोचन मृग मद निर्भरिणी से आप्लावित ॥
 लघु प्राण जलज के मधु मग्न्द मे चर्चित,
 उपहाम वृत्ति मुरधनु रङ्गो से रञ्जित ॥

३१

इसने ही तोड़ी निज लोहे की कारा ।
 है गला गयी पापाण यही कहरामय
 हो रहा ज्ञान का यहाँ भक्ति से परिचय ।
 राका यह पद से बाँध अमा का अनुनय ॥

३२

इसमें सलज्ज नारीत्व बुद्ध वाणीमय ।
लो करा रहा संकोच रूप दर्शन निज ॥
यह इसी रूप में अन्तपुर के बाहर ।
अवलोक सका अपने पन की कुछ सज धज ॥

३३

निर्लज्ज अभावों और प्रभावों की मति ।
निज सहज साधनाओं से माँज मधुर कर ॥
रच गई काव्य की अमर आत्मा तो यह ।
मैं जोड़ रहा केवल कङ्काल कलेवर ॥

३४

चिन्ता के स्वर्ण परो से तत्व गहन से ।
भीने धागो वत् उलझे है स्वाभाविक ॥
मेरी बरुनियों पर अमन्त सारों में ।
ससार सजन हो रहा इसी का तात्त्विक ॥

३५

पी गये तृष्ण के अधर गगन के प्याले ।
रीते प्यालो में उफन उठा यह सागर ॥
लड़खड़ा गया पवमान प्रगति के द्वारे ।
खिल गया विश्व संज्ञा का नव इन्दीवर ॥

३६

कङ्काल शिराओं में बह चला रुधिर नव ।
ध्वज गढ़ा खण्डहर के जर्जर शिखरों पर ॥
उर्वर मानव का मरु दुर्वा में व्यामल ।
उठ गई आज मानव की आँखें ऊपर ॥

३७

माया के, तृष्णा के, मादक हिलकौरे ।
पलकों के कोरों पर बिखराते मधुकण ॥
तुम मधुर सत्य के अरुण रश्मि अञ्जल से ।
धो देती देखते हरे हृदय के विष व्रण ॥

३८

भुक् रहा जिन्हें पाने को क्षितिज समुत्सुक ।
 महि माँग रही है ललक उठा हिमगिरि कर ॥
 सागर है घेरे खड़ा जिन्हें प्रहरी बन ।
 इसका उर जग के उन रत्नों का आकर ॥

३९

युग अनुष्ठान का महारम्भ उत्सव मय ।
 सुख समारोह लोकोद्घाटन का विस्मृत ॥
 जन सदाचार का शिलान्यास करता सा ।
 विश्वास बहिन का हुआ विश्व में समुदित ॥

४०

भूतन निश्चय, प्राचीन संस्कारों में ।
 आलोक तुम्हारा नई लयो में भङ्कृत ॥
 दुर्गम समाज की प्राचीरो से छन कर ।
 हो पाता है व्यक्तित्व तुम्हारा लक्षित ॥

४१

विज्ञान यहाँ आविष्कारो मे तन्मय ।
 वेदान्त तत्व अन्वेषण की चिन्ता रत ॥
 साहित्य खोजता सहज रसायन रस की ।
 इतिहास दिग्ध आदर्शों मे श्रद्धान्वित ॥

४२

इस महाकाल के छन्द धरा धूली पर ।
 हीरक वर्णों से स्वर्ण वर्ण में अङ्कित ॥
 मृदु मदिर पाण्डु लिपि सरल प्रकृति पर्णों की ।
 प्रिय बहिन ! तुम्हारी जय लेखा पर चर्चित ॥

४३

अम्बर स्नेह अम्बार उठे अम्बर तक ।
 कल्लोलित अञ्जलि मे करुणा के सागर ॥
 क्षिति की पुण्यात्मा ! तुम्हें पुष्ट करने को ।
 यह धन्वन्तरि का अमृत कलश है भू पर ॥

४४

शत शत काञ्चन मणि मय दीपों से मण्डित ।
 यह लक्ष्य, सुष्ठु पाथेय, पथिक, मंगल पथ ॥
 यह बहिन ! दिशा की मुक्त अर्गलाओ सी ।
 हे ! अमृत पुत्र ! तेरे निर्माण श्रम श्लथ ॥

४५

शुभ यही दृष्टि अभिराम मुक्त मौक्तिक है ।
 चिर यही भाव निखिलाखिल में जन पावन ॥
 मिल सकता भगिनी के स्वरूप सौरभ मे ।
 आत्मा परमात्मा का प्रतीक मय दर्शन ॥

४६

हो सकी सन्तुलित रुचि, अभ्यास सका मँज ।
 बन गया, हेम मृग सा मन मृग-चर्मसिन ॥
 इन्द्रिय निग्रह की यही मान्यता शाश्वत ।
 है मरण शील का इसी भाव मे जीवन ॥

४७

यह मानवता की नैसर्गिक व्याख्या ध्रुव ।
 यह उभय पक्ष की सुगम व्यवस्था आर्जव ॥
 मानव विवेक के विश्व कोष मे निश्चित ।
 जन संस्कृति की व्यापक परिभाषा आर्तव ॥

४८

शत उदधि गान इव व्यक्त, व्याप्त घन रव वत् ।
 भूधर स्वर निभ अभिराम, सरस मर्मर सम ॥
 उन्मुक्त प्रतिध्वनि तुल्य, साम सा पावन,
 है उर, धड़कन सा निकट बहिन स्वर सरगम ॥

४९

यह विगत कथा सी, शुभ भविष्य वाणी सी ।
 यह वर्त्तमान की कल्याणी, गृह की छवि ॥
 विश्वस्त कीर्ति, अधिकृत मर्यादा जग की ।
 यह बहिन सृष्टि की सुरभि काल की भैरवि ॥

५०

कर सरस सरल भावो को सहज तरङ्गित ।
 जन रत्नाकर को निज शशि कर से मन्थित ॥
 हिम हेम रश्मि सी उतर भाग्य पङ्कज मे ।
 बन्दी जीवो के करती भ्रमर विमोचित ॥

५१

यह दो प्राणो के सहज पूर्व परिचय सी ।
 अव्यक्त गूढ वार्त्ता निसर्ग की रस मय ॥
 है देह प्राप्ति की सार्थकता सी सन्मुख ।
 यह साधु विचारो-कथनो का क्रम विनिमय ॥

५२

दृग की गोधूली, मदिर प्रात आनन का ।
 शरदुज्ज्वल, अलको की निशीथ तारक मय ॥
 छाया वसन्त शोभा का यह पिक कूजित ।
 फूलो सा शैशव, श्वास मलय, ज्योतिर्मय ॥

५३

तम, द्वैत, भ्रम रहित, आश्रयप्रद आत्मिक बल,
 यह किसी तरह भी हीन, मलीन न दुर्बल ।
 पीडा-व्रीडा से विगत बहिन का निश्चय ।
 ऋजु-साधु सिद्धियो की आभा से उज्ज्वल ॥

५४

जीवन-जय का सदेश, प्रवेश सुकृत मय
 नव भारत का उन्मेष, विश्व का समुदय ॥
 शुभ वेश भारती का अशेष प्रतिभाश्रय
 निजता, नैतिकता, मानवता, का आलय ॥

५५

तुम प्रात स्वप्न सा मोह भङ्ग कर देती,
 निज निकषा पर कर जीवन का मूल्याङ्कन ।
 अपने आँसू की आग रुधिर मे भरकर,
 चर्चित कर देती शीश विदा का चन्दन ॥

५६

है प्रायश्चित्त, न पश्चात्ताप, न अघ कुछ ।
उद्भाव्य न स्वार्थ, विकार, भार का अनुभव ॥
आमार न खल, उद्गार न मिथ्या होते ।
यह द्वार स्वर्ग का पार यही होता भव ॥

५७

निज परिष्कार कर सकी यहाँ दुर्बलता ।
परिहार यहाँ कर सका न मेरा मानव ॥
अधिकार और आधार संधि कर बैठे ।
संसार सार पा गया बहिन में अभिनव ॥

५८

इस ओर खुले मन की विचार बीथी यदि,
नारी के प्रति हो यही दृष्टि का माध्यम ।
मिट जाय घृणित व्यापार युगो के शिर से,
लङ्का, भारत जैसे युद्धों का दुष्क्रम ॥

५९

गहरे तमिस्र मे उलझे आर्द्र अनावृत,
आर्द्रा के शैल शिखर पर के तारक मम ।
मुस्कान सहित करुणा से धरा चिबुक पर—
कर-नख-गङ्गाधर के शिर का चन्द्रोपम ॥

६०

प्रध्वनित विश्व के तन्तु तन्तु के स्वर से,
उमड़ा पड़ता नारी का रस सिन्धूच्छल ।
सब मे अवृत्ति, मित, मूक वासना बहती ।
सन्तुष्टि-शान्ति का यही मिद्ध उदयाचन ॥

६१

वे सत्व हीन अधिकार जताते आगे ।
तुम सलज क्योंकि तव सत्व अमित सर्वाधिक ॥
वे गरज रहे है हृदय रिक्त जिनके चिर ।
तुम मौन क्योंकि परिपूर्ण पहुँच सीमा तक ॥

७४

चिर मेरी अपर गिरा है, अपर हृदय मम ।
 चेतन द्वितीय मम प्राण, प्राण से प्रियतम ॥
 मेरा अस्तित्व अनाहत जग में घोषित ।
 प्रत्येक प्रगति है इसका सफल परिश्रम ॥

७५

कल्लोल कारिणी-सरित सदृश स्वर गुम्फित
 कोमल सम्बोधन-आकृति के सम्मोहन
 एकान्त ध्येय पथ पर चिर पहिचानी सी
 कर लेती चिर जीने का मधु आयोजन

७६

माँ का तुम पर विश्वास, प्यार बाबा का,
 तुम सचिव पिता की, ओर तुम्हारी अग्रज ॥
 अनुकूल स्वजन, अनुयायी घर के अनुचर ।
 श्रद्धालु अनुज मैं देवि ! मुझे दो पद रज ।

७७

सब दिशा रुद्ध, सब द्वार बन्द, पथ बाधित ।
 विपरीत काल, प्रतिकूल दैव, ग्रह प्रकुपित ॥
 प्रति जन विरुद्ध, धन नष्ट, भ्रष्ट सब साधन ।
 आश्रय विहीन तुमसे ही चिर आश्वासित ॥

७८

विजया दशमी के प्रातः, अरुण वसने ! तुम ।
 कर तिलक जयी मानव का करती वन्दन ॥
 पा जाता राघव शक्ति, रुढ़ि लङ्का से,
 करने स्व चेतना उक्त मार अघ रावण ॥

७९

शुभ सान्ध्य सुनहली मन्द फुहारों में नित ।
 यह मुझे भुलाती, बहलाती गा गा कर ।
 श्रावण हरियाली तीज, अजिर के तरु पर ।
 कौशेय सूत्र से निर्मित नव भूलों पर ।

८०

घनघोर घटाओं के घेरे में घिरता
शशि की बाँहों में लिपट सभय तारक दल ॥
नत्तित विद्युत्तालो पर देख निमिर को
सट जाने बालक भीन तुम्ही से अचपल ॥

८१

रत्न धन तेरस का दीप प्रथम प्राङ्गण में,
कर बहिन ! मदा दीपावलि का उद्घाटन ।
ऊँचे भवनो में, क्षुद्र कुटी, जन मन में ।
तुम मुक्त किये रहती हो मुख वातायन ॥

८२

मिट्टी का मन्दिर, मिट्टी के दीपों से,
घन अमारात्रि तम में हो उठता भिल मिल ॥
श्री के स्वागत में स्वयं स्वर्ग सी, श्री सी,
शुभ दृष्टि तुम्हांगी भरती भव का अञ्चल ॥

८३

सम्मान भार निज दुर्बल बन्धु करों पर ।
दे पुण्य-श्रावणी के कोमल बन्धन मिष ॥
कृश, अकर्मण्य, मोही निराश अन्तर में ।
सञ्चारित कर देती हो कर्म सुधा रस ॥

८४

मु यम द्वितीया के पर्व महोत्साहित तुम,
यमुना लहरों पर समुद्र बन्धु के शिव पर ॥
रोली मिष दे मङ्गल प्रभात का कुंकुम,
अभिषेक प्रेम सुरसरि से देती हो कर ॥

८५

तुम नव जीवन के नवारम्भ का नव दिन ।
तुम नव यौवन की प्रथम उषा का उत्सव ।
पावक फूल झड़ियों के श्यामल अञ्चल से—
तुम सहज खिसकता सा दूर्वा का शैशव ॥

-६

उम दिन विशेष आतिथ्य तुम्हारा उत्तम ।
 सुस्वादु स्वकर मे विरचित बहु भोजन नव ॥
 देती अमीम सुख, किन्तु सकुच जाता मैं,
 होता स्वरूप अनुरूप मान मुझसे कब ? ॥

८७

मधु ऋतु के मधुवन मे रमाल पादप पर,
 कुञ्जन करती केवल प्रभात में मधुपिक ।
 सन्तत कुटीर प्राङ्गण मे सप्त स्वरों से,
 भरती रहती यह कल-रव भुवनाकर्षक ॥

८८

रहती सदैव उत्साहित - मुदित - प्रकाशित ।
 रखती औरो मे भी जीवन की हलचल ॥
 करके विनोद - आमोद - प्रमोद अमित विधि,
 गुरुजन का चिन्ता भार मिटाती पल पल ॥

८९

मानव के सूखे पत्थर मे नारी ने
 की प्राण प्रतिष्ठा, निर्भरिणी सञ्चारित ॥
 कर उसे देवता शुचि जल दूध चढाया
 होगई पार्श्व मे शक्ति-सिद्धि सी राजित ॥

९०

जन - मन - जीवन की धरती पर घिर उतरा
 स्वर्णिम भादो का पुलक भरा ज्योतिर्धन ॥
 कल्पित सुन्दर की मधुर प्रेयसी सी बन
 यह बहिन लगी प्राणो मे बुनने मधुवन ॥

९१

किन्नर गाते, गन्धर्व वाद्य वादन रत,
 भुक भूम रहे सुर, ताल दे रहे दानव ।
 है अमृत उगलते नाग, किपुरुष नर्तित ।
 इसके मन मे आनन्द मनाते मानव ॥

प्रेयसो

पञ्चम सर्ग

१

पलक पिहित मित, किल किञ्चित, लज्जारुण,
थकित, चकित, खोई, कृश, श्वमित, पराजित ।
मुग्ध दृष्टि भ्रुक, भिभ्रुक, खोज रत, मकुचित,
मौन, पुलक मयि, प्रेयसि, जय नव मोहित ॥

२

दिश्य अङ्ग सुषमा, अन्तर की महिमा,
निखिल मधुरिमा पुञ्ज, निरुषमा, परमा ।
हृदय चन्द्रमा, लोक रमा, श्यामा. तु ।
रूप पूर्णिमा, परम प्रेम की प्रतिमा ॥

३

हंस गमनि, शशि दर्शन दाडिम दशना,
अमृत नयन, पिक भाषिणि, कुहक हासिनी ।
फलगु शोभना, शरत्कान्त सन्ध्यारुण,
मार मोहिनी, प्रेयसि कुसुम कामिनी ॥

४

प्राण द्युमणि मणि, दृग शशि मणि, पारस मणि,
आत्म-नील-मणि, अन्तर की कौस्तुभ मणि ।
कल्प करुण मणि, इच्छा फणि मणि, भुवि मणि,
लोक-भाल-चूडा-मणि, जय चिन्ता-मणि ॥

५

एक सुनहली धूप, रुपहली छाया,
मुक्ता का मधु रूप, सीप की माया ।
हेम हिरण का लोभ, मोह का जादू,
इन्द्र-जाल, मनु मन्त्र रचित तव काया ॥

६

प्रकृति धेनु, चिर पुरुष गोप, भव भाजन,
नियति वत्स, पय पञ्चभूत, जीवन दधि ।
यह मनुष्य माखन, संकल्प द्रवित जब,
छाछ अपर सब, तनु पुनीत नव धृत निधि ॥

७

सिता, फेन सा, पारद सा, निर्भर सा,
धुनी रूई सा, प्रातः सा, गोरस सा ।
रजत रश्मि पट सा, क्षीरोधि लहर सा,
रूप हंस सा, मुक्ता सा, मानस सा ॥

८

भाव जेटित, घन रस, हिरण्य मय मृदु मन,
लौन ललित नवनीत खण्ड सा यौवन ।
दग्ध मदन अगणित शरीर धर जीवित,
लोल रास उल्लास सुधा मयि चित्तदन ॥

९

चन्द्र सूर्य से घिरी शरद् सन्ध्या सी,
प्रेम और सङ्कोच उभय से कपित ।
निशा. उषा के बीच प्रभात प्रणय रा,
मदन मध्य शैशव यौवन के शोभित ॥

१०

कमल कान्त क्षीरोदधि गज लीलामय,
हंस-वास-मानस यह मणि मुक्ता भय ।
सिंह विहार स्थल वसन्त मय कानन ।
लोक स्वर्ग सुर-सत्त्व पुरुष श्रीडालय ॥

११

मस्त मूर्च्छनाओं का श्वास कमल धनी,
कोमल कान्त पदावलि सी अलकावलि ।
विविध. पूर्ण चित्रो सा छविमय आनन,
धेर खड़ी मन प्रिय दृग की भ्रमरावलि ॥

१२

अमृत नटी यह निखिल रङ्ग शाला ली,
गान सृजन मे करती नृत्य प्रलय में ।
मधुर वेण सी एक फूंक से ही जो,
प्राण संचरण करती लोक हृदय मे ॥

१३

प्रात साधना का, सन्ध्या आशा की,
रात स्वप्न की, सुन्दर गीतों के दिन ।
वर्ष प्रतीक्षा का, चिन्तन का क्षण क्षण,
मधुर कल्पनाओं का कोमल जीवन ॥

१४

अल्प प्रकट, अव्यक्त अधिक जो जग में,
 अर्ध देव कृत शेष लोक की रचना ।
 मत्स्य पूर्णतम, पर न कल्पना भी कम,
 कना, पीठ वाहन तब कवि की रमना ॥

१५

मोह मुक्ति सा मधुर, कर्म रागानुग,
 लोभ पाश सुरधनु कुसुमो सा कोमल ।
 पद पखारने का विवेक जल घट रे !
 दर्प वना प्रिय पाद पीठ की मखमल ॥

१६

किरण दोल पर नीद हुई सूच्छित गिर,
 निशा मौन, ताराण उपहामित चिर ।
 सुरा नगे मे विकल, मृत्यु है निस्सुधि,
 मुग्ध सर्प दृग का सम्मोहन तुम पर ॥

१७

मेघ दूत है वृत्त प्रेम का लाते,
 प्रीति पत्र ले जाते हस निराकुल ।
 पवन मिलन सङ्केत परिवहन करता,
 नील कमल पर अश्रु लेख द्युत प्रेमिल ॥

१८

प्राण प्राण मे शत ऋतुओं के मधुवन,
 श्वास श्वास मे अमर गान के गुञ्जन ।
 उठे आवरण तम के, जाल फटे सब,
 प्रकट धूलि पर शन स्वर्गों का नर्तन ॥

१९

रंगा सहज इतने रङ्गों से मृदु तन,
 गया कौन इतने रङ्गों से रच मन ।
 सृजन एक क्षण मे शत शत रंगों का,
 डूब गया कितने रंगों मे जीवन ॥

२०

भाव ज्ञात गृह की प्रतिमाओं को सब,
लिखित चित्र परिचित है तन्मय मन से ।
भित्ति षड् नीरवता ने पूछा है,
अन्तर का उल्लास नये यौवन से ॥

२१

फिरे मेघ करुणा के करते छाया,
दीप्त निरन्तर पथ पर मणि दीपक गए ।
कौन दिशा से जाने कब प्रिय आये,
नयन द्वार पर लटके रहते तोरण ॥

२२

मधु-श्राव लोचन से, घाव हृदय मे,
कुछ दुराव से दबे पाँव धरती वह ।
कुछ अभाव में, नव-प्रभाव सा उस पर,
भाव नये से, चाव अनोखा सा यह ॥

२३

किरण किरण में देती मौन निमंत्रण,
लहर लहर पर चञ्चल प्राण अकेला ।
फूल फूल से दृष्टि पूछती कितनी,
दूर और है मधुर मिलन की बेला ॥

२४

नाच मोर सी, नये चोर सी लुक-छिप,
इस किशोर की चिर विभोर उत्पल की ।
चल चकोर सी, लगी भोर से निशि तक,
किसी चन्द्र की ओर कोर काजल की ॥

२५

प्रेम कुञ्ज वन में गोरस की मटकी,
लिये आरही यह भावों का माखन ।
मन्द मौन गहिवर के पथ पीछे से,
लूट न ले चुपचाप कहीं मन मोहन

२६

मिलन विरह के संकल्पों में कातर,
चाह और चिन्ता के चारु चरण धर ।
पलक ओट में ग्रहण और अर्पण के,
मौन स्वप्न अभिसार नित्य लेती कर ॥

२७

कोटि विच्छु दंशन सा पीडित करता,
लोम लोम को जीवन का सूनापन ।
सदा शूल सा मन में चुभता रहता,
ज्वलित तृपित यौवन में एकाकीपन ॥

२८

लिपट लाज में, समिट सकुच में, नटखट—
खोल साध की लट, मुख का द्युति घूँघट ।
हेम व्यथा के जल घट, प्रिय पनघट से,
खीच मिक्त करती दृग तट, अन्तर पट ॥

२९

नाभि गन्ध मद विह्वल हेम हिरण सी,
भाल स्रवित मद विकल नाग सी उन्मद ।
मव वसन्त कुसुमासव मत्त भ्रमर सी,
तरल चाँदनी, पावस का चञ्चल नद ॥

३०

महाश्वेता सी चिर प्रतीक्षा में रत,
कादम्बरी विभोर प्रेम में उत्कट ।
पुष्प वाटिका की विमुग्ध सीता यह,
कुञ्जवनो की राधा एक जिसे रट ॥

३१

उतर रहा है गगन धरा चढती है,
हार गया है मदा जीतने वाला ।
धूँट धूँट प्रारम्भ प्रभा तुम पीती,
बना अन्त को लधु मरकत का प्याला ॥

३२

तोड़ शिलाएँ, दिशि तज, फोड़ किनारा,
तुंग पतित यौवन की चञ्चल धारा ।
तीव्र वक्र गति से ऊर्मिल कल कल कर,
बही जारही पाने सिन्धु सहारा ॥

३३

जन्म-मरण, वरदान-शाप, सुख दुख सह,
शैल सिन्धु युग वर्ष प्रलय लङ्घन कर ।
गगन, धरा, नक्षत्र, ग्रहो के पथ से,
मुदित आज पाकर मन में चिर सुन्दर ॥

३४

बन्द नेत्र इन्दीवर मे बन्दी चिर,
विन्दु विन्दु शरदिन्दु कुन्द वन्दित छवि ।
मन मिलिन्द आनन्द मरन्द मुदित पी,
खिली मन्द निस्पन्द प्राण की कैरवि ॥

३५

क्रिया, ज्ञान, इच्छा मय वह त्रिगुणात्मक,
धूम रहे स्थूल-सूक्ष्म-पुतली मे ।
ठहर गये भूगोल, खगोल अपर पर,
चन्द्र-सूर्य, दिन-रात गले कजली में ॥

३६

सदाचार के घेरे मे भावी की,
क्रान्ति मध्य जी मके इसी सपने मे ।
विरह तम पूर्वानुराग के तप मे,
लीन शक्ति सञ्चित करती अपने मे ॥

३७

भानु कमण्डल के झुति जल से धो पद,
प्रात कोटि स्वर में तब महिमा गाता ।
नखत कुसुम बरसाता तुम परसुर बन,
इंदु मुकुट चरणों में पर नभ रख जाता ॥

३८

नयन नलिन नभ की नीलिम धारा पर,
ज्योति किसी की चिलक अचेतन सोती ।
देवि ! तुम्हारे छवि सागर मे भिलमिल,
विश्व वन्द सीपी का कोरा मोती ॥

३९

लवण कनी सी ढग मे, मुख में मधु सी,
मिना कर्ण मे, माखन सी मृदु मन मे ।
कर कपूर सी, मौरभ सी श्वाँसो मे,
गनी प्राण मे हिम, हाटक सी तन में ॥

४०

नई उषा की प्रथम अरुण आभा में,
मन्द मौन लहरों में हिलता डुलता ।
उभय कूल प्राणो के गीतो से भर,
नयन स्रोत में पोत इसी का तिरता ॥

४१

मन्द हास जुगनू के चिकने मृदु पर,
भोंक पलक के तम से सिहर चमकते ।
शिरा शिरा मे जगी स्वर्ण दीपावलि,
निखिल भुवन मे प्राण नाचते फिरते ॥

४२

पुष्प धनुष युत-विनत अग्रगामी हो,
मार तुम्हारा दृष्टि अनुगमन करता ।
तुम्हे बना उपदेश यष्टिका काञ्चन,
ललित शास्त्र के रस रसिकों में भरता ॥

४३

सार, सत्य, सुन्दरता और सघन रस,
तुम्ही लोक चैतन्य चेतना चेतन ।
जन रहस्य की अन्त गहन गुफा में,
देवि ! तुम्हारा गुँज रहा जय गुञ्जन ॥

४४

ब्रँधा वासना रेशम की डोरी में,
सृष्टि करों पर पुरुष स्वर्ण घट उज्ज्वल ।
विश्व ग्राम मे दिव्य प्रकृति पनघट से,
भरा कोर तक उसमे यह नारी जल ॥

४५

अविच्छिन्न, अति सूक्ष्म, कामना वर्जित,
वर्धमान, गुण रहित, एक रस चिर नव ।
प्रेम तुम्हारा अनुभव, रूप अमृत निधि,
मौन समर्पण मय, आत्मा का वैभव ॥

४६

सिन्धु रत्न, मानस मोती, गिरि माणिक,
खनि स्वर्ण, वन कुसुम, परिच्छिन्न धरती ।
जन्तु राग, रस रुक्ष, कलाण रस निधि,
नियति हेतु तव सृजन प्रकृति का करती ॥

४७

ऊर्ध्व भ्रुकुटि, विकचित कपोल, त्रिबलित शिर,
करज चिबुक पर, ग्रीवा मन्द विकम्पित ।
अधर स्फुट ध्वनि, धीर, दीप्त तन्मय मुख,
प्रेमवती तुम मधुर छन्द रचना रत ॥

४८

स्वाद न दुःख का सुधा न सुख की पायी,
दूर निकट फिरते रहते हम भ्रम से ।
तुम्हे देव किमने मरना चाहा है,
किन्तु लिया कितनों ने जीवन तुमसे ॥

४९

जन्म जन्म का विच्छिन्न जीवन साथी,
महज खोजती मिला वन्य भव पथ पर ।
उत्तर पड़ा सुर धनु के सप्त रंगों से,
मधुर प्यार करने वाला चिर सुन्दर ॥

५०

सिद्ध तूलिका के भीने रंगों से—
हलकी गहरी रेखाओं में चित्रित—
व्यस्त चयन करती सौंदर्य भुवन का,
मुग्ध सिहरती, होती हुई समर्पित ॥

५१

तुम अखण्ड संगीत विश्व वीणा का,
प्राण प्राण में व्याप्त स्वरित सबके गृह ।
निखिल तरुण की माँग, कामना उसकी,
लक्ष तुम्हीं, सबके यौवन का आग्रह ॥

५२

मीरा सी विभोर भावों में नर्तित,
मधुर मूर्च्छना वीणा पर गाती हो !
पासु पीठ की झुष्क रग साँझी में,
स्वप्न भरी निज प्यार आँक जाती हो ॥

५३

स्वकृत ललित उपवन की जब क्षयारी से,
कुसुम द्रुमों के विविध वर्ण कुल जड़ती ।
काट छाँट महदी के घन विरबों की,
भाव मूर्तियाँ कल्प कला मयि रचती ॥

५४

उमड़ सिन्धु सा सिन्धुर तुल्य मदोन्मद,
सीधु शीघ्र पी सुधिमय प्रेम सुधा विधु ।
बरस रहा सुख निधुवन में रस निधि की—
साधु भाव मयि निज नव वंशी का मधु ॥

५५

मधुर प्रेम मणि मन्दिर की देवी पर,
नम्र भाव से जिसने शीघ्र चढ़ाया ।
रूप विभव - आनन्द उसी पर अपना,
चढ़ा गई इसकी विमोहिनी माया ॥

५६

लीन बही करुणा की चञ्चल धारा,
 टूट पड़ी जन की पत्थर की कारा ।
 डूब गया पागलपन के वय घन में,
 निकट चन्द्र मण्डल के मन का तारा ॥

५७

प्राप्ति यत्न में हुए ध्वंशकारी रण,
 पाद पीठ तब उषण रक्त से चर्चित ।
 तपे कोटि जन, तुम्हें एक क्षण पाने,
 धरा तुम्हारी अश्रु नदों से सिद्धित ॥

५८

मुक्ति भक्ति - प्रद कारण लय उद्भव की,
 शक्ति सिद्धि गति विधि समस्त सम्भव की ।
 लोक अर्चना की पवित्र वेदी पर,
 परम देवता तुम भव की मानव की ॥

५९

शिशिर धडकते मन से तुम्हे बुलाता,
 भूल न जा पावस का प्रेम उल्हाना ।
 है वसन्त का पञ्चम स्वर से आग्रह,
 एक बार मधुमयि ! मधुवन में आना ॥

६०

आत्म - द्योतना, भाव - साधना - निधि तुम,
 तुम्हे प्राप्त कर होता दीप्त चराचर ।
 तृप्त हमें कर आप्त - युक्त - चिर रहती,
 रिक्त न होती कभी शक्ति वितरण कर ॥

६१

रोष तुम्हारा तरल फाग का किशुक,
 तिरस्कार शत शत स्वागत से सुखकर ।
 मौन मधुर, कटुता शुभ, वरद उपेक्षा,
 सुन्दर ! तुममें कुछ भी नहीं असुन्दर ॥

६२

एक ओर अति ब्रह्मानन्द उदधि है,
 अपर पार पर ब्रह्मानन्द सहोदर ।
 लोक पन्थ की ऊँचाई गहराई,
 थकित पड़ी जीवन दूरी तब पग पर ॥

६३

इस अबाध क्रम, अन्तर रस रिम भिम में,
 लोक शान्ति उद्यम द्रुम सिञ्चन श्रम में ।
 दीख पड़ रही युग से व्यस्त तुम्हीं तुम,
 भीतर की द्युति में बाहर के तम में ॥

६४

अग्नि दग्ध हूँ तब पुनीत रूपानल,
 फिर कुट्टि, कैसे कुभाव ठहरे पल ? ।
 निर्यात, इन्दु, प्रतिकूल-जीव 'सा, रवि सा,
 तब विरोध कर मिट जाता भव मंगल ॥

६५

सप्त सिन्धु में विन्दु न एक समाती,
 विन्दु विन्दु तुमसे जाते सागर बन
 बदल कलेवर, लघु वृण बना हिमाचल,
 रेण स्वर्ण बन रही, स्वर्ग तुमसे कण ॥

६६

आज विश्व मानव की अन्तर तन्त्री,
 सरल तरल तब अन्तराल में बजती ।
 भुवन व्यथा का कोष बना कोमल मन,
 प्रकृति तुम्हारे मधु से पिघल बरसती ॥

६७

चटुल ज्ञान की नदी, नर्क की भँवरे,
 लहर हर्ष की अलहड़ मन का नाविक ।
 भाव बल्लरी, प्रेम तरी, रुचि दिग्भ्रम,
 मग्न लाज के नीर नयन का नायक ॥

६८

लोक भीति, अनुरक्ति तरुण जीवन की,
मधुर मिलन की चाह न हृदय समाये ।
खोज रही आतुर - सुयोग - आशामयि,
आज एक मुन्दर अपना हो जाये ॥

६९

लोक रमा निर्धना, प्रीति के कण बिन,
सहज अन्नपूर्णा से यह मधु याचित ।
पुनः सती तपती मन वाञ्छित पाने,
सरस्वती फिर नये राग में दीक्षित ॥

७०

निज अस्तित्व समास्था अपने पन की,
पृथक् ध्येय पथ, दूभर रखना पल भर ।
किसी नई संज्ञा मे नव सम्बोधन,
पाने रूप स्वरूप - नया उत्सुक उर ॥

७१

निखर रहा मौन्दर्य नीर सा पल तल,
सगीत मीन सा, चञ्चल भाव लहर पर ।
हर्ष कमल खिलता अनुराग उषा मे,
प्राण मधुप सा गुन गुन करता जिस पर ॥

७२

निभृत प्रेयसी, मन के सरस सरसि मे,
प्रेम पद्म ग्विल रहा क्षेम मय हेमिल ।
बरस रहा जिससे प्रभात शोभा का,
जाग रहा सोये अग जग का मगल ॥

७३

तेज चयन, अध्यात्म चेतना चिन्तन,
आत्म शुद्धि, आत्म स्थिति, तप का अवसर ।
शक्ति सृजन साधना, आत्म प्रत्यय, रुचि,
मधुर प्रेम है रस स्फूर्ति दायक चिर ॥

७४

पाणिग्रहण - सम्पूर्ण समर्पण प्रण-मय ।
 किया बंध निज सम्बन्ध तव अञ्चल से ।
 सती ! जिसे अपनाया - जिसने पाया ।
 वधू ! हुआ वह धन्य तुम्हारे बल मे ॥

७५

रस चेतना स्वरूप चिन्तना पा तव,
 सम्पन्न अर्चना, देव वन्दना सारी ।
 भाव साधना, कला मर्जना की तुम—
 वस्तु प्रेम की, आत्म क्षेम की नारी ! ॥

वधू

षष्ठ सर्ग

१

अनुरागी, अनुरूप, उभय के शुद्ध कर्म मन, वचन ।
परिणय का प्रस्ताव उपस्थित, सहमत युग कुल स्वजन ॥
भावाङ्कुरित किशोर-किशोरी, अविदित लख-नत नयन ।
सम्बन्ध स्थिर, जय वाग्दत्ता-गोद भरित, कृत शकुन ॥

२

शुद्धानन्द-मूर्ति मधु रस की, परम प्रेम की नियति ।
आत्मा का सङ्गीत, जीव के सौभाग्यों की सुकृति ॥
सार्थकता, पूर्णता, महत्ता, ऋजु निजता की भलक ।
नारी है वह कुठक कि पत्थर से जाता मधु छलक ॥

३

अन्तर के सुख की स्मित रेखा मंदिरस्तुत उच्छलित ।
सुस्नेहार्द्र दीप बर्त्ती सी, अनुरागाखण ज्वलित ॥
आलोकित मन प्राण गृहाङ्गन, पुलकायित तन वदन ।
कादम्बिनी अमृत की भू पर बरमाते नव नयन ॥

४

जाति, वर्ग सम्बन्ध, वही कुल श्रेष्ठ जहाँ मन मिला ।
जहाँ प्रेयसी-वधू, दयित-वर, स्वर्ग बने वह इला ॥
साधारण जन प्रति व्यावर्त्तन-प्रेमी जन प्रति वृथा ।
प्रेम पुष्ट होता हो जिससे वह सर्वोत्तम पृथा ॥

५

आ पहुँचा परिणय पुण्योत्सव का समीप शुभ समय ।
सात्विक सुन्दर आयोजन मे व्यस्त सुहृद जन हृदय ॥
है व्यापार न लेन देन का, मन विनिमय का स्फुरक—
यह विवाह दो परिवारों की अनिश एकता परक ॥

६

कर नान्दीमुख श्राद्ध, सुरों का, गुरु, कुलेष्ट, प्रभु यजन ।
श्रद्धा से पितु माँ ने पूजे विप्र धेनु के चरण ॥
हुए स्व दुहिता के परिणय के पुण्य यज्ञ मे वरण ।
की ब्राह्मी विवाह विधि सारी वैदिक पथ अनुसरण ॥

७

शान्ति, वृत्ति की प्राप्ति पूर्ति शुभ, शक्ति श्रेय का गठन ।
ज्ञान भक्ति, निष्ठा प्रत्यय का, प्रेम नियम का यजन ॥
पुनर्ग्रहण शाश्वत उभयों का प्रकृति पुरुष का मिलन ।
यह परिणय स्वभाव, इन्द्रिय मन, नियति-विश्व विष समन ॥

८

यह बलात्गुप्तों के बन्धन की न रज्जु-बलि शिला ।
स्वप्नाशा-मुख दाह हेतु क्या यह यज्ञानल जला ?
है विवाह अभिमत हृदयों का मुटु गठन चिर म रति ।
प्रीति स्थायी करने का पथ, न कि मिलितों की वियुति ।

९

मण्डप में राजित महिला गण, भद्र नागरिक प्रमुख ।
सब आमन्त्रित सम्बन्धी जन, वर-कुल के कुल तिलक ॥
ऋचा गान कर रहे विप्र गण, यज्ञ हुताशन ज्वलित ।
लौ मेष मङ्गल दिन ढलने शुचि, धूम्र व्याज निशि ललित ॥

१०

अति अनुरूप, ऊर्ध्व रेता, सम, मगम, धीर, दृढ, दयित ।
शान्त दान्त यह वधू न उमसे लेश मात्र कम क्वचित् ॥
ध्येय धर्म मय, कर्म यज्ञ मे नव दीक्षित सह उदित ।
परिणय वेदी पर श्री-हरि सी अद्भुत जोड़ी लसित ॥

११

रूप राशि यह प्रकट पुरा कवि कल्पित पुरतः कथित ।
उनकी प्राभा मे यह शोभा माङ्गोपाङ्ग स्फुरित ॥
थे इसके अभाव मे प्रतिभा मेधा के कवि अमित ।
आविर्भाव आज जब, जग के कलाकार श्रुति रहित ॥

१२

लज्जा का तन्तुल सम्मोहन, शील सकुच का अवर ।
नव योवन का मुरा आवरण, छवि मायतन कुहर ॥
नये प्रेम का उद्घाटन-पट, विगत द्वंद्व की झलक ।
कर गृहीत-उर दोलित भीना घूँघट मन की झलक ॥

१३

स्वस्थ निराडम्बर, सुन्दर, शुचि, मगल वातावरण
उभय पक्ष के प्रति कृत्यो मे होता प्रेम स्फुरण ॥
एक दूसरे के प्रति शुभ चिन्तन रत अन्तःकरण ।
पत्र पुष्प ये जो देने, वे करते मादर ग्रहण

१४

कुल, शालीन, शील, मंस्कृति, रुचि, शक्ति, प्रेम, छवि परक ।
 मुख, सौभाग्य, सुहाग, तेज, मङ्गल, शुचिता का स्फुरक ॥
 वशीकरण, जय, आकर्षण कर, परिणीता का मुधन ।
 गिशु रवि सा सिन्दूर विन्दु यह अघ, कुट्टि, तम दलन ॥

१५

सुर साक्षी कर आज विश्व के एक हुए दो हृदय ।
 पड़ी भाँवरें, किये परस्पर प्रण, निबद्ध दृढ उभय ॥
 तन्मिथ इस आत्मिक ऋण से बँध कभी न दोनों उच्छ्रय ।
 अमिट वधू का शान्त समर्पण नर का सात्विक ग्रहण ॥

१६

नागर वर, नागरी वधू का, निश्चय-निर्णय-स्वकृत ।
 गुरु जन कर देते मर्यादित, कर विवाह विधि उचित ॥
 रुढि, रीति का व्यर्थ दुराग्रह, क्षुद्र हृदय कर विवश—
 दोनों के मधुमय जीवन को कर देते कटु विरस ॥

१७

त्यागोत्सर्ग, तितिक्षा दृढता-क्या होती है स्व-कृत ?
 होती ये उत्पन्न प्रेम से प्रेमी मन मे प्रकृत ॥
 हो समाज समुदार प्रेम को लखे प्रेम के नयन ।
 सूक्ष्म प्रेम का दर्शन जग में, प्रेम तत्त्व अति गहन ॥

१८

सादर वर के निज कर से नव परिणीता शिर सुभग—
 सिन्दूरार्पण-सीमन्तार्चन हुआ प्रेम पथ सजग ॥
 चिकुर-तिमिर-मय-शिर नभ पर-चिर जीवन प्राची द्युमय ।
 ले सुहाग घट विन्दु अरुण नव माँग-उषा का उदय ॥

१९

अर्धोन्मिषित नयन, अवगुण्ठित, शिर किरीट लघु लसित ।
 मद्यालंकृत, आनख-शिख शुभ, शुचि रागारुण ललित ॥
 वर दुकूल बद्धाञ्जल-मङ्गल-सूत्र-राग-स्रक्-सहित ।
 पुण्य दर्शना-प्रति सुलक्षणा, मधुर नव वधू मुदित ॥

२०

जन अनिष्ट, मन का अरिष्ट हर, प्राण कष्ट, अघ दहन ।
सुष्टु, मिष्ट, जीवन वलिष्ट कर, दुष्ट भाव-भव कदन ॥
व्यष्टि, समष्टि, सुतुष्टि कारिणी-पुष्टि पुण्य की प्रचुर ।
बधू दृष्टि शुभ, वृष्टि दया की, सृष्टि शान्ति की अमर ॥

२१

यह अमोघ बन्धन अविनश्वर, इसकी महिमा अमित ।
सब विचार करना पूर्वोचित, बाद शिथिलता दुरित ॥
यज्ञ कुण्ड से चित्तारोह तक निभे प्रेम के सहित ।
'पति-पत्नी' सम्बन्ध जगत् में अमर आत्म रति भरित ॥

२२

संस्कार मोह का, नियमन विषयों का, कर मविधि ।
कर परिशोध वासनाओं का, बाँध स्वार्थ का जलधि ॥
अन्तरमुखी इन्द्रियो को-कर-फलद काम को स सुधि ।
दे विवाह-प्रेमी दम्पति को क्षेम प्रेम की सु-निधि ॥

२३

बन्दी जन शृङ्गार, वाद्य भूषण, रागानुग मुखर ।
छवि अलात्, भ्रूनटी, माँग ध्वज, वयं निशान, कच चँवर ॥
छत्राधर, वितान पट, गति गज, चिबुक शिंहु, कुच कलश ।
कान्ता, कटि हरि पर अनङ्ग शोभा यात्रा के सदृश ॥

२४

विकच रहा यौवन अञ्चल में, मन अधरों पर द्रवित ।
लिपट रहा लावण्य लाज मे, रूप लालसा लिहित ॥
छलक रही माधुरी लोम से-अङ्ग चाँदिनी स्रवित ।
उष्ण गिरा की मस्त मंदिर लय मुग्ध चाप में स्वरित ॥

२५

अनिश पुरुष की शाश्वत शोभा, परम सत्य का यजन ।
श्रेय प्रेय पथ की चिन्तामणि, सुखद वास्तविक सदन ॥
निज अभिमान-भूमि-यश-रस की, गौरव की गुरु शिखर ।
बधू लक्ष्मी करती जन का मंगलमय प्रति प्रहर ॥

२६

घर को स्वर्ग, धरा को नन्दन, स्व को ऊर्ध्वंगा विधा
देती मानवता को, युग को, नव संजीवन सुधा ॥
भाव कान्ति यौवन को, जन को ललित कलाकर विभा ।
नारी ही शोभित रखती चिर मन की स्वर्गिक सभा ॥

२७

छम छम करते, रस रिमझिम से, सह दशेन्दु तम हरण
द्युत अप्रतिम, प्रियतम के प्रियतम—यद्य उगाते चरण
हस अरुण मुक्ताहल पाते, मद पाते मद द्विरद
जयाति वधू की गमन ज्योत्सना—सुगति प्रदा, गति वरद

२८

मूल सर्जना की, जीवन की केन्द्र, कर्म की प्रमुख ।
ओत प्रोत सभी की इसमे सब तथ्यों की परख ॥
नारी का ये स्थिर स्वरूप शुचि, सर्व भाव रम रुचिर ।
अति नारीत्व विराट व्यास का-विन्दु वधू यह, मधुर ॥

२९

हुआ पूर्ण परिचय, अब आया विदा समय अति दुखद ।
जननी जनक, मन्वी गण, भगिनी, आर्त्त हुए सब मुहद ॥
वर्षों का स्नेह भङ्ग कर, प्राण भग्न कर, अजिर—
आज सदा को त्याग रही है सब अपनों को निठुर ॥

३०

संभृति के अपार सागर में स्वर्ण तरी सी प्लवित ।
यह तट तज जाती उस तट पर युग लहरों से स्फुरित ॥
बैठा आज सत्य, शिव, मुन्दर, यात्री वाञ्छित वरद ।
वधू तुम्हारा यह लीला वपु, कवि कुल का स्थिर विरुद ॥

३१

मुक्ता से आँसू कण छलके-दुहिता दृग से विरल ।
सबके प्राण करुण हो जिनसे, गये मोम से पिघल ॥
निज निज पट से मुख ढक सारे सिसक उठे अति विकल ।
उठी अजिर में घोर धटाएँ करुणा रस की सजल ॥

३२

हटे द्रवित वर नत शिर बाहर, तभी वधू ने निकट ।
माँ ममता सरिता प्लावन मय-गयी-ग्रङ्क मे समिट ॥
मौन करुण एकान्त रुदन सह-अश्रु विमर्शित मिलन ।
योगी भी जब सह न सके तब भोगी का क्या कथन ॥

३३

कुछ क्षण मे सम्हाल निज को माँ, बोली कर धृत चिबुक--
हुई हृदय मे स्थिरता मिन, पर रुका न दृग का उदक ॥
“बेटी ! हेतु इसी दिन के सब दुहिताग्रो का सृजन--
शान्ति धैर्य से तुम प्रसन्न मन करो स्वपति गृह गमन ॥

३४

जैसा है सब यहाँ वहाँ भी तुम पाओगी सुखद ।
माना, पिता, बन्धु, भौजाई, बहिन मखी, सब सुहृद ॥
सह तुलसी, गुलाब, के विरवा, शुक, सारी, मृग निचय ।
उस घर सुलभ विशेष वस्तु नव प्रेम भरा पनि हृदय ॥

३५

सुमति विवेकमयी ! मुख दुख के आते जाते समय ।
मलिन न होने देना पय की लाज वश यश सभय ॥
तुम पर है दायित्व उभय कुल गोत्र का हे मृदुल ।
मम अभिन्न आत्मा, दुहिते ! तुम पग पग चलना सम्हल ॥

३६

स्वेच्छाग्रो विषयो से ऊपर मन इन्द्रिय से अलग ।
तब स्वरूप हे ! मती ! मत्प्र प्रति रहो प्रेम मय मजग ॥
तुम नारी हो, हेतु न अपने जो जीती मुख वृषित ।
सदुत्सर्ग, मत्सेवा मत्पथ परहित जिसका म्व - व्रत ॥

३७

मम कुक्षी मे जन्म तुम्हारा, मम आत्मा से रचित ।
मम भावो की परिणति-तुममे-तेज पिता का ज्वलित ॥
कीर्ति ध्वज हो तब नभ चुम्बित, चाहे मुख हो स्वमित ।
शील, स्वधर्म, प्रेम हो अक्षय, श्वास श्वास हो अमृत ॥

३८

गायें यात्री गए आआ कर, सदा सुनायें पथिक—
गृह के प्रति जन, स मन सराहें तब स्वभाव गुण अथक ॥
ज्योतिर्मय व्यक्तित्व तुम्हारा जगे दीप सा विमल ।
बेटी ! पुण्य मयी करणी कर जीवन करना सफल ॥

३९

सास श्वसुर ही मात पिता अब देवर ही तब अनुज ।
भगिनी, ननद, ज्येष्ठ अग्रज है, उनको ही निज समझ-
सबका आदर, आज्ञा, सेवा श्रेय तुम्हारा परम ।
कभी हमारे कारण इनमें त्रुटि मत करना सभ्रम ॥

४०

तुमसे तुष्ट हमारी आत्मा, तुम निज कुल आभरण ।
नव गृह मे सन्तुष्ट सभी हों ऐसा हो आचरण ॥
निज शिक्षा, दीक्षा, विद्या का सदुपयोग कर सजग ।
चिर, विनम्र सच्छील मयी तुम रहना पति की अनुग ॥

४१

कहते कहते माँ की आँखें बरस उठी फिर विवश ।
विनत मातृ पद की रज शिर ले, लठी जनक पद परम ॥
शिर पर बरद हस्त रख बोले गद् गद् स्वर मे पिता ।
जीवन हो सुखमय; चिर समुदित रह सुहाग रवि सुता ! ॥

४२

निष्कण्टक पथ मिले, लक्ष्य मयि सर्व सिद्धि मयि प्रगति ।
लाकोत्तर प्रतिभा आभा से दीप्ति मती हो प्रकृति ॥
पति का हृदय तुम्हारा गृह हो, तब उर पति का निलय ।
अकुतोभय, अपराजित जग मे हो चरित्र तब उदय ॥

४३

सार्थकता है इन श्रवणों की तब शुभ गुण गए श्रवण ।
शीघ्र हमारे रहे तुम्हारा श्वेत सुयश आभरण ॥
दुहिते ! तुम कर्तव्य धर्म का परम ध्यान रख सतत ।
क्षणिक देह, सुख मोह, 'अहं' से अघ से रहना विरत ॥

४४

यदि तव अनुज और अग्रज में आजाये कुछ विकृति ।
तब केवल हो एक इसी कुल की क्षति अपयश, कुगति ॥
पर तव कण भर कलुष त्रिकुल का क्षय कारण हो अकथ ।
अति दायित्व तुम्हारे ऊपर, सुते । न तजना सुपथ ॥

४५

संग तुम्हारे शुभाशीष मम-हो न तेज तव मलिन ।
देव कृपा से-पुण्य ज्योति का-तुमसे हो अवतरण ॥
आज पवित्र प्रेम की बेला, मोह न अब यह उचित ।
पति मे तुम्हे प्राप्त हो बेटी, प्रभु जो सबके दयित ॥

४६

फिर कुल गुरु के सम्मुख आकर चरण शीष धर प्रणत ।
अञ्जलि बद्ध खड़ी आनन भुख आज्ञा पाने स्तमित ॥
“सुते ! तुम्हारा चिर मंगल हो सब सुख हो चिर सुलभ ।
सब अनुकूल तुम्हे आदर दे सदा रहो तुम प्रतिभ” ॥

४७

कभी न निज में आने देना कृत्रिमता, पर - प्रकृति ।
स्वच्छ, सरलता-सद्भावों से सात्विक रखना स्वमति ॥
मत्य, न्याय मे रत रहना तुम द्वेष घृणा से अलग ।
साथ देह के आत्मा की भी सुधि रखना चिर सजग ॥

४८

रूप, ढंग, पथ, प्रतिमा जो हो वस्तु स्थिति, अधिकरण ।
हो सबका शुचि लक्ष्य आत्मा परमात्मा का स्मरण ॥
शान्ति, सफलता, सुख का पथ है शुद्ध साधना गहन ।
हो प्रयोग निज से तृण तक का कर उसका उपकरण ॥

४९

अग्रज का अभिवादन करके विकल हो गई सुतनु ।
बोले वे गम्भीर गिरा में ज्यों पावस का नदनु ॥
‘बहिन ! शान्त स्वस्थ मन से कर दुर्बलता पर विजय—
हो गृहस्थ के कर्म गगन में तब मङ्गल मय उदय ॥

५०

प्राण वर्तिका, दीप हृदय रे ! नव स्नेह घन भरा—
 ज्योति जगे ऐसी तुम मे जो निमिर मुक्त हो धरा ॥
 नारी की गौरव गरिमा की तुम मे छिटके शरद—
 बहिन ! बनो तुम निजाचरण से शाश्वत कवि कुल विरुद ॥

५१

तभी अनज ने धिनत चरण पर जीप धरा हो द्रवित ।
 बाढ़ा मे भर विकल दुलारा भगिनी ने टग स्रवित ॥
 'बहिन ! कहूँ मैं क्या ? तुम जानी, मैं न टोकता गमन—
 तव चरित्र से मिले हमे नित नवादर्श—अनुकरणा" ॥

५२

बहिन-कण्ठ से लग रोई वह सिसक सिसक जब विपुल ।
 आश्वामित कर कहा आर्द्र हो—“धीर धरो प्रिय ! सम्हल ॥
 इसी भाम्नि मैं भी तो पर के गेह गई हूँ बहिन ! ।
 मंगल और शकुन है जग मे इस प्रकार निज गमन ॥

५३

नारी जीवन बहुत कठिन है पग पग पर अति गहन ।
 तनिक चूकने से हो जाता सत्ता का ही दहन ॥
 पक्ष, प्रतीप उभय मे रखना निज को कोमल, मधुर ।
 मेरी प्रभु से विनय मिले सब तुम्हे सुसङ्गत, रुचिर”

५४

भाभी के पद छू बोली वह “रहना मुझ पर सदय ।
 नव स्नेह उाकृत मैं कैसे व्यक्त करूँ निज हृदय ॥
 अङ्क स्थित कर बोली वह रो-मैं चिर तव हे ! ननद ।
 इस नवीन गृह मे सर्वाधिक तुम ही हो मम मुहद ॥

५५

सखियों से फिर मिली पुलक कर प्रीतिमयी हो करुण ।
 रोयी शैशव से अब तक की कर श्रीड़ाएँ स्मरण ॥
 सर्वोपस्थित जन का करके अभिवादन अति विलख ।
 पति के संग चली छाया सी विस्फारित टग निरख ॥

५६

पाणिबद्ध वृद्धों ने वर से कहा विनत कर विनय ।
करके ध्यान हमारा इसकी क्षमा करे त्रुटि सदय ॥
निज गृह की प्राणाधिक निधि यह लाड़ प्यार से सुकृत
हम सबकी सम्मिलित याचना दया दृष्टि रह सतत ॥

५७

“आत्मा सी, कुल की देवी सी मसम्मान यह अभय ।
हो विश्वस्त, स्वाभिनी बन कर रहे हमारे निलय ॥
इसके वारि-विन्दु तोलेगे हम देकर निज रुधिर ।
आप गुरुजनो का किङ्कर मैं” धन्य वर गिरा मधुर ॥

५८

विदा हुए मादर दम्पति वे, शकुन हुए सब प्रतिभ ।
यव, प्रमून, खील लाजा की वृष्टि हुई प्रनि ककुभ ॥
उत्सव की इति की व्यापित थी यहाँ शान्ति अनि गहन ।
उधर नवोत्सवमय था घर मे नवल बधू आगमन ॥

५९

ममारोह मह, अति आदर से, गान वाद्य के सहित ।
बहिनी ने गोपुर पर स्वागत किया बधू का बहुत ॥
शुचि आरता उतारा मॉने न्योछावर की अमिति ।
पितु ने दिया दीन दुखियों को पुष्कल धन मन उदित ॥

६०

लोक लक्ष्मी नई बधू का गृह मे मङ्गल चरण ।
मर्त्य स्वर्ग की शुचि विभूति का मनु सम्पूर्ण वरण ॥
सरस्वती विधि निज मराल सह गणपति गति के अनुग ।
पञ्चभूत तन की इस छवि मे सपति इन्दिरा मजग ॥

६१

एकाकीपन मूनेपन की पाहन कारा कठिन ।
भङ्ग प्राण का बधिर मूक मन विश्व मौन आवरण ॥
पारस का प्रवेश मोने का देश बना घन तिमिर ।
पारद सा झिलमिल गेहाङ्गन वारिद मा प्रति प्रहर ॥

६२

कुल रीतियाँ पूर्ण होने पर, हुआ देव कुल यजन ।
 किया सविधि फिर नई वधू का वंश सूत्र में ग्रहण ॥
 कुल के नर नारी गए ने आ क्रम से विस्मित नयन ।
 देखा प्रवणुगठन ऊँचा कर मधुर वधू का वदन ॥

६३

“अमृत नयन, अमृतार्धर, अमृत दृष्टि, अलकावलि अमृत ।
 अमृत हाम, छवि अमृत, अमृतस्वर, श्वास अमृत, श्रुत अमृत ॥
 भाव अमृत, लावण्यामृत नव, घ्राण अमृत, वय अमृत ।
 माधुर्यामृत-वधू अमृत निधि मृदु रद रेखा अमृत” ॥

६४

शची मानिनी, उमा अर्ध तन, अस्थिर श्री, रति दुखित ।
 मुखर शारदा, क्षणिक शरद, अप्सरी स अध, द्युति उज्वलित ॥
 मदन अतनु, पर वश मधु, सुरद्रुम अलभ, हीन कुल कमल ।
 शशि सकलङ्क, स्वर्ण सौरभ बिन, स्वयं स्व उपमा निखिल ॥

६५

यौवन की आग्रह, अभीष्ट निज, प्राणों की अभिलषित ।
 कलाकार की पोषक रस निधि, रुचि संगत कुल उचित ॥
 यथा कल्पिता, पूर्व प्रार्थिता, दृग शोभन, असु प्रतिभ ।
 सुन्दर सपनों की चिर सुन्दर मन चाही खर सुलभ ॥

६६

कितने मौन मुखर आमन्त्रण, मूक मिहोरे-निहुर ।
 अविदित आकर्षण, सम्मोहन, चाटु, प्रार्थना प्रचुर ॥
 चिन्तन, चाह, आग्रह, ईडा, सुचपन, अनुनय, विनय ।
 तड़फन, लगन, साध, मानता से आई नर निलय ॥

६७

जन के पुराय, धर्म से जग के, पूर्वज गए के सुकृत ।
 कुल के न्याय, सत्य सुहृदों के, व्रत समाज के फलित ॥
 गुरुजन के अशीष, पुरजन सहमति से, विधि के हितज ।
 जननी जनक यत्न, निज तप से, प्राप्ति न इसकी सहज ॥

६८

अलबेली, चुलबुली, मनचली, छेल छबोली, चपल ।
गर्वोली, नव ग्विली, मदीली, सजल, सजीली, स्वरिल ॥
नवल नवेली, अठखेली प्रिय चटकीली तनु तिलक ।
मिली लजीली, सती, मुरीली, वधू रसीली रमिक ॥

६९

धरती के कङ्काल उठ पडे पुष्ट प्राण मय चकित ।
इसके आते ही कण कण में रूप, गन्ध, रस लयित ॥
हुई तीन दिन में ही घुल मिल घर में सबकी सचिर ।
विदा कराने अनुजागत, सब उठे प्रीति से सिहर ॥

७०

जो भर्त्ता है वही भार्या, एक पन्थ दो पथिक ।
जो कर्त्तव्य धर्म पत्नी का, पति का उससे अधिक ॥
पितु गृह आई वह प्रसन्न मन, तुष्ट हुए सब अनिश ।
भाभी ने, बहिनो, सखियो ने पूँछी बातें सरस ॥

७१

भाभी ने गृहस्थ की दी शुभ शिक्षा रस की ललित ।
किया तरंगित परिणत उसका हृदय प्रणय से निभृत ॥
पति के योग, क्षेम, प्रेम का नवोत्साह नव लगन ।
नई कल्पना नव आशा में जीवन तन मन मगन ॥

७२

एक वर्ष तक विप्रलम्भ की मधुर साधना निरत ।
पुष्ट-प्रस्फुटित हुआ हृदय पा स्वप्न सत्य का अमृत ॥
आत्म साधना के प्रकाश में निज स्वरूप की भलक ।
मिली दयित के दिव्य रूप की भव्य भाव भयि चिलक ॥

७३

न मन यत्न करने पर भी जो टिक पाता है तनिक ।
चुम्बक से, हटता न हटाये गया लोह सा चिपक ॥
उदघाटित हो रहा वधू के मर्म मूल में प्रणय ।
जगा समन्वय शाश्वत विनिमय शक्ति अनन्य नव विनय ॥

७४

प्रेम-नस्व वेत्ता गण की निज दिव्यात्मा से स्फुरित
पूर्णाध्यात्म वादियों की यह आविष्कृत, श्रुति जनित
मानव की सर्वाङ्ग सांस्कृतिक मानवीय अति प्रगति ।
परिणय की पद्धति यह जीवन दर्शन की शुभ प्रसूति ॥

७५

पत्नी पर अंकुश रखने का सत्त्व न पति को प्रमित ।
वह अपने पथ पर स्वतन्त्र, यह मुक्त स्व पथ पर सतत ॥
निज इच्छा से करले चाहे जो उत्सर्जन सयश ।
किसी विशेष भाव, धर्म, के लिये नहीं यह विवश ॥

७६

नर नारी के मध्य प्रेम के परम भाव का ग्रहण ।
यह समाज द्वारा दोनों का सात्विक एकीकरण ॥
है विवाह उत्साह पूर्वक नव जीवन का सृजन ।
इस मिष प्रिय-प्रेयसी उभय का सर्वाङ्गीकृत मिलन ॥

७७

पहले राम स्वयं बनले हम तब फिर इससे उचित—
सीता बन रहने की आशा, एक पक्ष गति असत् ॥
स्वाभिमान सम्मान वधू का करे सुरक्षित पुरुष ।
नारी के व्यक्तित्व सत्त्व को हम समझे निज सदृश ॥

७८

व्यक्ति, जाति, देश, संस्था की, स्वस्थिति, गौरव, सुयश ।
अधिक नरो से नारी रखती निजोत्सर्ग कर अनिश ॥
प्रलय घात सह कर भी पथ से नहीं हुई जो विमुख,
भारत की विभूति सञ्चय मे नारी ही है प्रमुख ॥

७९

सहज सीचने निज त्रिफलद तरु, प्रकट हुई यह सुतनु ।
धन्य समय पर बरस रहा निज सौभाग्यो का नदनु ॥
अक्षय कीर्ति, स्व अमृत स्थिति की सिद्ध पीठ यह उदित ।
वधू रूप मे प्रकट हुए प्रभु, मदा रहे यह विदित ॥

८०

जीवन का विस्तृत पथ जिम पर कठिन अकेले गमन ।
निर्वाचित हम करे परस्पर सहमत सात्त्विक स्वजन ॥
नारी की प्रेरणा, चेतना, नारी का रस कलश ।
हरे श्रान्ति, कुछ खने न दूरी, प्रति यात्रा हो सरस ॥

८१

नैतिकता, मानवता, शुचिता- दृढ चरित्र, शुभ हृदय ।
भाव, विवेक, शक्ति, साहस से निभ पाता है प्रणय ॥
नित नव नव बलिदान चाहता पग पग पर आमरण-
यह विवाह लोहे का बन्धन समझ करे हम ग्रहण ॥

८२

वधू रूप मे एक साथ सब सम्बन्धो का निचय—
प्रेयसि प्रीति, कामिनी की रति, शिष्या की शुचि विनय—
माँ ममता, भगिनी की निजता, सुता भक्ति, गुरु दया ।
मित्र मैत्री, इष्ट अनुग्रह क्या न वधू ने दिया ? ॥

८३

दिव्य पुरुष नारी, नर, बालक, सर्व सुधन, उपकरण ।
देव प्रकृति के सहमत-पम्मत-मर्यादित सब स्वजन ॥
नवादर्श — उत्कर्ष — हर्षमय सात्त्विक वातावरण ।
हो गृहस्थ निज सफल, वधू तुम स्वर्ग करो निज सदन ॥

८४

लोक और परलोक बने निज तवालोक से प्रयत ।
भाग्यकोकनद खिले, शोक सब-मिटे ओक के दुरित ॥
रोक टोक कुछ रहे न सबकी कोख शान्ति से निभृत ।
जीवन का सन्तोष प्राप्त कर तृप्त रहे हम सतत ॥

८५

श्रवण स्पर्श स्मृति दर्शन से, अमृत भरे मुन वचन ।
कृपा दृष्टि तब पा हो जाते शीतल, जलते नयन ॥
नारी ! तब यह रस रत्नाकर मुक्ति-भक्ति मणि भरा ।
आप्तावित होरही पूरुष की आज अहं की धरा ॥

६६

बीते कुछ दिन, वृत्त मिला शुभ, आया मंगल प्रहर ।
 शुभागमन शुभ हुआ दयित का द्विरागमन प्रति मधुर ॥
 शुचि शुभाशीर्वाद सबका ले सुष्ठु समय सह शकुन ।
 विदा हुई कामिनी स करुणा सायोजन पति सदन ॥

६७

नारी की मृदु भोक्तृ शक्ति क वर विलास से जगत् ।
 तप्त दीप्त शान्त रहता है रुचिर और रस लिहित ॥
 सुभगं-करणी, शक्तीकी यह आढ्यं-करणी, सुमति ।
 अति धीवरी, सुनयिका नारी नृप्रियं-करणी जयति ॥

कामिनी

सप्तम सर्ग

१

भीता, श्लथ माहम, लज्जाकुल, नव स्निग्ध वय,
द्विरागता, पद्मिनी, नवोद्भा, वधूत्तमा जय ।

मखियों के आग्रह अनुनय मे प्रथम मिलन प्रति-
उदित कामिनी के सम्मति मय मौन मधु मय ॥

१

सुतनु हृदय में निखिल भाव-रस सिन्धु तरङ्गित ।
 घनख-शिख इन्दिरा इन्दु इन्दीवर विलसित ॥
 इसमें अति सौन्दर्य, प्रेम, चैतन्य समाहित ।
 प्रति स्पन्द संगीत, प्रति स्थिति से सुख प्लावित ॥

३

खाद्य निवह शृङ्गार, दृष्टि - सेनाचय यौवन—
 करता दिव्य-हसित निर्मित अघर स्थित माधव ।
 भदनाहव के शिविर हृदय पर तने हेम मय ।
 श्वांसों में ठल रहे तीक्ष्ण मन्दार तीर नव ॥

४

पद ने नयन धैर्य, दृग ने लो चरण चपलता ।
 कटि गुह्यता नितम्ब ने, उर पर उठे रहसि द्रुम ॥
 अङ्ग अङ्ग मे सकुच लाज का पीवर पहरा ।
 लोम लोम के सुरा चषक भरता सुवयोद्गम ॥

५

गमनोपक्रम व्यस्त खड़ी वह सद्यस्नाता ।
 कच स्रुत जल मनु तिमिर निगल मणि हार उगलता ॥
 तन पर शीकर हेम कमल नीहार कण सदृश ।
 सिक्त पट स्तन ज्यो गिरि पर भीना हिम जमता ॥

६

प्रोच्छ्रण, गन्ध, राग, रस, भूषण, पोशाकाचन ।
 केश प्रसाधन प्रभृति क्रिया सह चतुर सखीगण ॥
 रति रस कह मधु मिलन हेतु उद्यत, प्रोत्साहित—
 भीति, सकुच हर, प्रीति नीति से करती शिक्षित ॥

७

‘बन जाना अनजान, व्यक्त रुचि हृदय न करना ।
 भान, कोप के अभिनय बिन द्रुत निकट न कटना
 रीति नीति से, मधुर प्रीति से हरना पति मन
 हाव - भाव, लीला-विलास से भर उन्मादन

८

नटन, गमन अवलोकन, हसन, वचन की पटुता
दिखलाना पर तनिक न आने देना कटुता ।
घूँट घूँट, घट पर घट अपनी मुधा पिलाना !
तम न होने देना, कण कण प्याम बढ़ाना ॥

९

मिला अनोखा रूप, स्वरप्सरियो सा यौवन ।
तना तुम्हारी भ्रू पर तीक्ष्ण मनोज शशसन ॥
रक्षा प्रति रख पञ्च बाण चितवन में जाओ !
कसो न इतनी लाज कि टूटे प्रणयास्वादन ॥

१०

अनुनय, विनय, अर्चना से ही मुख दिखलाना ।
पति का सत्य सत्व पाने पर ही मुस्काना ॥
उनके कथन मिन्धु में तब स्वर हो मोती सा,
यत्न विवश निषेध करते शय्या पर जाना ॥

११

कर अनल्प उत्पन्न स्व प्रति विश्वास कान्त में
श्रद्धा का उद्गार प्रकट मे बहने देना ॥
इङ्गित से ही निज अविदित आत्मार्पण करके
प्रियतम की बाहों मे अपना-पन खो देना ॥

१२

तन स्पर्श तब करे न प्रिय, मत डरो मदय वे
वही करे जो तुम्हें लगे मुखकर अति रुचि कर ।
चलो अकेले मे डर, भग्दे शर न मदन का
सहसा, कही मर्म भेदन कर, पीडा गुरुतर ॥

१३

अधिक कहें क्या ? स्फुरित करेंगे मनसिज गुरु सब ।
समयोचित का ज्ञान स्वत देगा मुरतोत्सव ॥
निर्भय सखि ! सम्पन्न करो तुम प्रथम मधुमिलन ।
पति तब कोमल हृदय-रमिक-बूझमणि, मञ्जन ॥''

१४

“मन शङ्कित, मम विकल प्राण, लज्जाकुल हैं मैं ।
 मुझे छोड़ दो, गिथिलि होग्हा मेरा साहस ॥
 रस विदग्ध वे, मैं अनजान किशोरी अल्हड़,
 कसण हुई कह—‘हाय आज मैं कहाँ गयी फँस’ ॥

१५

पाणि पकड़ ले चली सखी विवशाश्वासित कर,
 महक उठा चञ्चल अञ्चल का मृदु मलयानिल ।
 खिचा चरण प्रतिविम्ब धरा पर इन्द्र धनुष सा,
 मदन दुन्दुभी बजी नूपरों के मिष कोमल ॥

१६

अधरों पर नव उदित प्रणय की कुंकुम रेखा—
 प्रथम ममभ्र के भार भुकी भ्रू खिची भाल नस ।
 मदन यज्ञ प्रारम्भ अर्चना हेतु हृदय पर—
 हेम शिव स्थापना सविधि श्रीफल से कुच मिष ॥

१७

शरद चन्द्रमा को ले ज्यों तारों की अवली—
 नील गगन के नये मञ्च पर आती हिलमिल ।
 नई वधू को नव प्रियतम के मिलन कक्ष में
 लाया उत्सवमय सखियों का उत्साहित दल ॥

१८

मौन, स्पन्दित, रुकी कामिनी काम कल्प तरु—
 शयनागार सुसज्जित की मखमली धरा पर ।
 सहमी सलज कनखियो से लख स्वर्गिक सज्जधज,
 स्वप्न कल्पनामय शोभा, स्वागत मय मन्दिर ॥

१९

कुसुमाचित, कौशेय पटावृत, दिव्य तल्प से—
 उठा, प्रतीक्षा व्यथित सुरीपम नर स्वागत को ।
 बरस उठे अभिवादन, अभिनन्दन, नयनों से—
 सका लीन लज्जार्णव मे लख नव-आगत को ॥

२०

वधूं गृहीताञ्चल, कर्षण कर चली, सखी कहु
इससे कोमल, रुचिर, प्रीति मयि, रीति बरतना' ।
यह सौभाग्य, पुण्य, सुकृतो का सिद्ध सुधा फल,
हेम-मयी का निज निकषा पर स्वर्ण परखना' ॥

२१

द्वार बन्द द्रुत हुआ, सिहर वह उठी मृगी सी,
प्रणय वचन, रस सम्बोधन, सम्मोहन बरसे ।
गज कर से कर मे उसका पुष्कर कर उलभा.
गई सिकुड़ती-गड़ती सी वह, प्रिय दृग तरसे ॥

२२

'देवि । तुम्हारा क्रीत, प्रीति याचक, अनुगत मे,
निठुर बनो मत, सदय समुद निज करुणा करण दो ।
अब इतना संकोच लाज अन्याय नहीं क्या ?
करो न आकुल अधिक, वरद ! हे ! कृपा किरण दो ॥

२३

द्रवित हुई तनु, शिथिल हुई मित, बढी मन्द मृदु,
भलके श्रम करण, पुलकायित तन, मीलित लोचन ।
उर की धड़कन बढी, ठगी सी कढी तल्प तट—
आनत शिर, घूँघट सम्हालती स्मित स्तग्ध तन ॥

२४

हुई कलाकृति सी सानुग्रह आग्रह से स्थित
रही फैलती सुरभि, रूप द्युति कङ्कन शिञ्जन ।
गया सँजोता वह उसमे नव भाव चाव रति,
उत्सुकता भर किया तृषा का प्रथम जागरण ॥

२५

उदित प्रीति रवि, विकचित हुआ सुतनु पद्मानन ।
आर्द्र हुआ अलि गुञ्जन से मकरन्द कोष तल ॥
चञ्चल अवगुण्ठन कोरों पर थिरक उठा श्लथ—
धरसाता मन्दार श्वाँस का मद मलयानिल ॥

२६

“मधु विलास के गगन ! तुम्हारे शशि पर कब तक
धिरा रहेगा सान्ध्य रेशमी भीना बादल ?
गंगा की निर्मल धारा के मध्य स्थित भी—
एक बूँद के लिये तरसता मन वृष्णाकुल !

२७

सहसा झलक गया छवि अमृत स्तुत फुल्लानन ।
अग अंग मे दौड़ गई बिजली सी तत्क्षण ॥
योगी मायावरण हटा ज्यों लखते आत्मा,
खोल वदन अवगुण्ठन प्रिय करता मुख दर्शन ॥

२८

ऊपर नभ पर उदित हुआ पूर्णेन्दु शरद का,
पर धरती पर प्रकट आज उससे उज्वलतर ।
सस्वर - सामृत-अनघ-निकट - सुरभित स्पर्शमय—
अन्तर तम हर शशि पाया नर ने अपने धर ॥

२९

अपलक दृष्टि स्थिर छूकर प्रिय की रागारुण,
सद्य कपोलों पर लज्जा का भग्न कुंकुमा ।
छूटी अलक, भुकी भ्रू, द्युत श्रुत अधर, पलक नत—
रंगी नयन की कोर रिसी रस मुग्ध भङ्गिमा ॥

३०

“की याचना-तड़फ रहा हूँ सुनने को तब—
भुवन माधुरी सार गिरा का वीणा सा स्वर ।
एक वार बोलो, वह सहसा बोल गई ‘ना’
इतने से ही उमड़ा गीत सुधा का सागर ॥

३१

“मेरी ओर न दृष्टि कर रही क्या मैं हूँ प्रिय—
भाद्र चतुर्थी का शशि, अथवा सान्ध्य उडु प्रथम ।
बनना चाहूँ देवि ! तब दिशोद्धोधक ध्रुव मैं,
जिससे मुझे सदैव समुन्नत वदन लखो तुम ॥

३२

“रूपसि ! करके कृपा बतादो मधुर नाम तो !
सकुच, सहम, श्रम से कह सकी सु ‘ज्योत्स्ना’ अस्फुट ।
सुन प्रशस्ति निज रूपा, शील, गुण, भाव, नाम की-
भूली सुख की वधू वदन पर विरल तरल लट ॥

३३

हस्थि गुण्ड से निज कर मे ले वधू पद्म ‘कर,
भाल स्पर्शित दियाः भावमय भव का आदर ।
रूठ गई क्या ? कुपित हुई हो ! शपथ तुम्हें मम,
आज मुझे दो दान सुकोमल प्यार भरा उर ॥

३४

भीरु भामिनी भीत शपथ से सिहर उठी क्षण,
रह न सकी चुप, ‘वह तो तुमने छीन लिया है ।
किन्तु देवि ! उससे पहले मैंने अपना ही,
प्राण सहित मन तब चरणों पर वार दिया है ॥

३५

उभयों की इस सहज गिरा मङ्गलाचरण से—
हुआ प्रणय मन्दार मुकुल का प्रथमोद्घाटन ॥
दयित भुजाग्रो मे घिर बरसा सुतनु सुधा घन ।
बधू अधर पर दीप्त कान्त का मधु नीराजन ॥

३६

‘फुल्ल कमल, पूर्णेंद्रु मिलन’ चर्चा खग रव मिष,
‘कमल बन्धु’ सुन उदित, चलाते कुपित रश्मि शर ।
भङ्ग सुहाग प्रथम मिशि मिलमोत्सव दम्पति का,
कुम्भुद नयन मीलित अवृत्ति का हिम सागर भर ॥

३७

दिन में सखी माध्यम से सुयोग सुविधा पा,
हुआ मिलन, सह भोज, भ्रमण, सामोद समन्वय ।
लख स्वभाव, सद्भाव, धैर्य, व्यवहार सुसंयत,
पति प्रति प्रत्ययमयी, वधू सङ्कोच हुआ क्षय ।

३८

प्रथम प्रभाव परस्पर का उदात्त मङ्गल मय,
 आस्वादक, आस्वाद्य बने तन्मिथ रस साधक ।
 एक हो चले शान्त समर्पण मय अनुरागी,
 मधुर भाव से आत्मा के रस सिद्ध उपासक ॥

३९

कल की सोने की प्रतिमा मे द्युतिस्पन्द अब,
 कल सुगन्ध परसो जब जीवन शक्ति तरङ्गित—
 हो, तब उसके उर घट से चैतन्य सृष्टि का
 स सौन्दर्य, सङ्गीत, शान्ति, सुख, रस मय प्लावित

४०

पिछले दिन सब सृजन मात्र के आज उदय का,
 सम्प्रति दिन वसन्त के, फूल फलो का नन्दन ॥
 नव प्रकाश, नव प्रगति, श्रेय का पावन क्षण तो,
 मानव की धरती पर अब उतरेगा प्रति दिन ॥

४१

यह कोमल आवेश हृदय का—सत्तार्जित कर—
 अह भेद-उच्छलित 'स्व' मे संज्ञा प्रज्ञा मय ।
 इस नव पथ पर साधु सुयोग आत्म दर्शन का,
 सहज 'रमो वै सः' अनुभव की स्थिति का उपचय ॥

४२

जीवन के उल्लास, लास, की निशा दूसरी,
 नई किरण का नया इन्दु ने भूपर उतरी
 मधुर मिलन के नवोत्साह सुख मे विभोर मन—
 आई वधू अनूप रूप की अमृत अप्सरी ॥

४३

दिव्यायोजन युक्त दायित ने कक्ष द्वार पर—
 किया भव्य स्वागत, आदर से अगवानी की ।
 सुतनु पाणि मे सुमनार्पण कर सहज शीष पर—
 बरसायी कवि कुल मोहक विभूति वाणी की

४४

प्रत्युत्तर मे रणित वलय, काञ्ची, नूपुर, स्रक्,
रुनक भनक कर ललक, चिलक लज्जार्त चरण से ।
पाणिगृहीती चली रूप के भार लचकती,
रति मन्दिर मे छलकाती छवि मुखावरण से ।

४५

हुआ विविध आतिथ्य, पान, ताम्बूल, गोष्ठी,
रहसि रीति मय शृङ्गारिक क्रम से रुचि विनिमय ।
ललित कलाग्रो, सरस केलियो के माध्यम से,
समैकावयवी हुआ द्वैत अभेद एक - मय ॥

४६

“मैने सुना गीत रचती तुम सुमधुर गाती,
क्या मुझको सौभाग्य न दोगो इस प्रसाद का ॥”
“मै अबोध कुछ मुझे न आता, विवश न करिए,
भेट हठी ने वाद्य हरा अवसर विवाद का ॥

४७

सह निषेध मित मान मयी ने सकुच बीन पर—
एक गीत गा मादकता का सिन्धु बहाया ।
इति पर सहमी, सलज बधू का चिबुक ग्रहण कर—
पनि ने भावोद्वेलित बाँहों मे दुलराया ॥

४८

‘क्या न बजेगी मधुर वेणु तव’ मुन प्रियानुनय,
मुक्त मूर्च्छना मयी बजी वंशी प्रियतम की ।
भूम उठी वह भन्त्र मुग्ध सी नृत्य पुलक भर—
मुखर हुई रस रिमझिम ध्वनि पायल छम छम की ॥

४९

ब्रह्मानन्दास्वादन जन को दे सकते हरि,
और वधू दे सकती उसका सहज सहोदर ।
आत्म लीन नर हुआ एक टक निरख वधू मुख ।
एक स्तर पर दीख पड़े नारी अरु ईश्वर ॥

५०

चाहों की भक्ता मे बाहे उलझ गईं खुल—
 अधरो पर मधु कलश अधर का उलट गया जब ।
 तभी गगन के द्वार अरुण घट ने शिञ्जित पद—
 उया लख पड़ी विहँस छिड़कती प्रात सुधासव ॥

५१

सोना जगना, रोना हँसना खाना पीना ।
 चलता ही रहता है जग मे मरना जीना ॥
 वेही धन्य जगत् मे चलते फिरते जिनके—
 मन मे बजती सतत मधुर भावो की वीणा ॥

५२

क्षण क्षण बढ़ने लगा प्रीति का अकुर उर में,
 पल पल होने लगे नयन तन्मिथ रस लोलुप ।
 होने लगा प्रतीत युग्म जन्मां के परिचित,
 कल्प लता सी एक अपर कल्पाश्रय पादप ॥

५३

पुनः सरस सम्पर्क प्रात से प्रकृत स्थापित ।
 लग्नोत्साह, समुत्सुकता, अतृप्ति उद्वेलित ।
 अब तक दोनो स्वप्न, कल्पना, भाव जगत् मे—
 सरल वासना रहित स्वस्थ शुचि मन से विलसित ॥

५४

हुआ शिराग्रो में समुष्ण नव रुधिर स्पन्दित,
 दोनो का मन आज नई लहरो मे दोलित ।
 सुतनु दृष्टि से लुक कर आज मदन ने पहला—
 किया मर्म भेदी सम्मोहन शर संधानित ॥

५५

काव्य, चित्र, संगीत गोष्ठी, चौसर क्रीड़ा,
 रहसि वार्ता, बहु विधि चर्चा, ग्रहण, समर्पण—
 में बीता दिन एक निमिष सा आयोजन में,
 हुआ मधुर नव मिलन निशा का सुखद आगमन ॥

५६

कर सोलह शृंगार षोडशी आनख - शिख सज-
चली हंस गति से कुसुमाकर गन्ध उड़ाती-
लुका रहा छिप अलङ्कार में मदनायुध निज—
अधरों से रवि, दशन ओट मदिरा छलकाती ॥

५७

आती पति गृह-स्वर्ग-लक्ष्मी शयन कक्ष में,
प्रिय ने मधुपर्कार्पण कर की अति पहुँचाई
“स्वागत अतिथि, स्वामिनी, अभिवादन, उपकृत मे ।
आज भुवन की शोभा मेरे घर चल आई ।”

५८

निश्चल इस मनुहार प्यार से हार गई तनु,
विश्रामार्थ विजय की पति ने अङ्कवार मे ।
नव स्नेह मय निज मृगमय मे द्युत वर्त्ती सी—
उसे लसित कर पर्व दीप सा बहा धार में !

५९

“देवि ! न मै तव योग्य तथापि पसन्द प्यार कर,
मुझे परम सौभाग्य सुगौरव दान किया है”
“क्यों इतना सम्मान दे रहे मे अनुगत तव
दो दिन मे ही मुझे आपने जीत लिया है” ॥

६०

तुम कल्याण्य शुभे । प्राप्त दैवी सम्पद सी,
मिला मुझे उड़ने को तुममे मुक्त विशद नभ ।
“हे विनीत, भावुक, प्रिय ! तुममे देख रही मे ।
सुन्दर, शिष्ट, उदार, एक अति मानव सप्रभ ॥

६१

“मानवता, नैतिकता की प्रतीक तुम सम्मुख,
सहज स्व को ही लखा प्रतिच्छायित मुझमें प्रिय” ।
“जो निज में जैसा जितना होता है, पर में—
सख पड़ता बैसा-उतना ही जग में निश्चय” ॥

६२

मधुर तुम्हारा श्रम कण चिर मम रुधिर धौत हो !
 रेवि ! तुम्हारे हित मे हो मम निखिल आचरण ।
 दे यश मय कर्तव्य धर्म का सह सुयोग दिन,
 रात हमे दे नित्य मिलन का नव मंगल क्षण” ॥

६३

“प्रियतम ! तुमने मुझे आज चरितार्थ किया है !
 मेरे पन का विषाद ग्रनोखा अर्थ किया है ।
 भाव समाधिस्थिता प्रिया बोली हे ! चिन्मय !
 तव निस्वार्थ हृदय ने मुझे समर्थ किया है ॥

६४

बहुत देर तक दोनों भाव विभोर रहे स्थिर—
 फिर सुधि ने अनजान अवश भकभोर दिया मन ।
 आलिङ्गन मे विसुध वधू के बिम्बाधर पर
 कमल कोप के मुक्त मधुग सा प्रिय का चुम्बन ॥

६५

वातायन पर ललक रही हिम चिलक चाँदिनी,
 रुधिर उष्ण लख हुआ, मची तन मन मे हल चल ।
 दोनों के विलास विग्रह मे मादक आग्रह—
 मसृण स्पन्दन जगा गया मन्थर मलयानिल ॥

६६

चञ्चल खञ्जन से टग के भीगे कटाक्ष ने
 किया मर्म भेदन, अन्तर रस का उन्मथन ।
 प्रिय के मधु स्पर्श से तनु के श्रुत कपोल पर
 अधरो पर डुल गई सुरा, पाटल की विकचन ॥

६७

हँसते दीपक को लख वधू सहम सकुचायो
 निरख दयित के कर स्पर्श मे चटुल मनोभव ।
 समिट गई चितवन तिरछी कर हँसकर ‘ना’ कह—
 रुई गई-भित मान किया सह रस लीला नव ॥

६८

अस्तपुर के शान्त निभत मे बस दम्पति का
मर्यादित है, अमुचित या अश्लील नहीं है।
रमारमण के काम श्रेष्ठ भुवि वन्द्य एक सुत
उनका भी सम्मान कहाँ क्या शील नहीं है ? ॥

६९

अनुनय, विनय, प्रणय से कर मधु मान निवारण,
बहु अभिनय कर किया प्रिया को सहमत सम्मत।
'वाद भक्त ने काञ्चन शिव पर पञ्च सित मुकुल
शरदुत्फुल्ल सरोज एक आरक्त कियापित ॥

७०

पुण्य धर्म यह यहाँ, सृष्टि विस्तार श्रेय मय,
दम्पति का यह शास्त्रोचित, मग्न स्थापित है।
देवि ! न तुम भय करो, सहन मित करो सती हे।
अखिल पुरुष मन इसी अमृत के लिये वृषित है।

७१

कुच कैलाश, समाधि मुग्धता, भ्रू वरुणी, ग्रहि,
धूली मलय, विभूति विभूषण, शशि तिलकोत्तम।
केश जटा, पट व्याघ्र चर्म, सुरमरि मुक्ता सक्
मदनाक्रमण हुआ तनु पर निज रिपु शिव के भ्रम ॥

७२

फल तृतीय पुरुषार्थ काम ऋषि-शास्त्र-इष्ट मय,
दम्पति धर्म, प्रजा सर्जक, गृहस्थ सुख पूरक।
काम कला सर्वस्व कामिनी मूल तत्प्रदा,
अध्यात्मोन्नति हेतु काग भी अति आवश्यक ॥

७३

लज्जाक्रान्त विशेष सुतनु की देख दयित ने,
किया दीप निर्वाण सहज कर लीला पाटव।
हुआरम्भ अनुकूल विधा से समुचित संयत,
सह उत्पादित रग प्रथम समस्त सुगतीत्यव ॥

७४

श्यामा, मुर सखा, तनूत्तमा मृगी पद्मिनी,
नवा, स्वल्पभावा, मृदु, शुचि-रति, काम कल्प द्रुम ।
पति अनुकूल प्रचण्ड वेग, शश, चिर कालिक नव
काम कला पटु धीरोदात्त, रमिक पुरुषोत्तम ॥

७५

मस्त मधुर यह निशा प्रीतिमयि मधुर मिलन की ।
आज न हो रवि उदय, उषा तुम प्रात न करना ॥
करता नव प्रिय विनय हृदय में रात न बीते—
तारो के मणि दीप सतत तुम जलते रहना ॥

७६

जीवन का संगीत, हर्ष यौवन का मन का,
अग जग की सौन्दर्य सुधा ले पास प्रिया है ।
इधर लृषा वी सिन्धु तरंगो के भीगे दृग
उधर और भी शीघ्र दैव ने प्रात किया है ॥

७७

सलज रति श्रान्ता के मुख को बार बार लख,
निशा मिनन की स्मृति से होता रोमाञ्चित तन ।
समिटी, सकुची, भुकी सुतनु कर सखी स्मरण निज
कक्ष न तजती, अकुलाती, भिपती मन ही मन ॥

७८

रतिशेष मे केश आप्लुलायित, तन शिथिलित,
अप्रतिभ अरुण कपोल, भाल श्रम सिक्त, दृगाकुल ।
अस्त-व्यस्त सुवेश, हार उच्छ्रित, व्यथित श्री,
वसनान्वेषण कुपित करुण बाला लज्जोज्ज्वल ॥

७९

“करें सखी परिहास, निठुर ! यह ठीक करो सब !
सोपहाम, सायास लिया प्रिय ने रस अभिनव ।
की पट, कच, सग, माँग, विन्दु तिलकाञ्जन रचना,
अनभ्यस्त कर, कृत करते जो प्रकटाधिक सब”

८०

पति ने कर शृङ्गार प्रिया का आनखशिख सब
निरख निरख निज सुकृति हर्षमय मृदु मुस्काते
करने यावक राग किया जब चरण ग्रहण भुक्त
सस्मित, कुपित, हटी, कह क्यों शिर पाप चढ़ाते !

८१

प्रात सखी लख तन विस्मित बोली सीधी बन
“क्यारी क्यारी का पुष्प चयन, सूना मधु वन
बड़ी चतुर पर जिसने पिया भराया उससे”
लज्जा विह्वल, भाव तरङ्गित, हँसी सुतनु सुन ॥

८२

घेर लिया सखियो ने परिहासोन्मुख सस्मय,
खिसिया बोली वह ‘आनखशिख निशि ऊष्मा वश
पुनः स्नान किया, पर मिला न दर्पण, अतः उन्होंने
शुभ सुहाग चिह्नाङ्कित किये, अहेतु रही हँस” ॥

८३

“ह्री अकथ स्मर ज्वर, या बहु वृत सुरत ऊष्मा ?
प्रिय मन मदन दहन का या निज दाह सुवदने !”
अट्टहास कर उठी—“शीत में ऊष्मा, हिममय
जल से स्नान, दर्पणाभाव, धन्य पटु छलने !”

८४

नव नव कला प्रयोग, विविध सुख भोग, राग रस,
दिन दिन नूतन प्रीति नित्य नव भाव विमोहन ।
सम्प्रयोग, संयोग, भोग, नव नव सुयोग नित,
क्रमशः नव उत्साह, नित्य नव नव आस्वादन ॥

८५

नीवी स्खलन, हरण हृदयांशुक, विरक्त, कुचार्चन,
तख-दशनच्छद, आलिङ्गन उपसृत, रति, चुम्बन ।
मीत्कार, प्रहरण, संवेशन, पुरुषायायित मय
जयति वधू के अंग दयित का मदनाराधन ॥

८६

प्रेम परम पुरुषार्थ, व्यक्ति के चित्स्वरूप का,
मत्प्रकाश मय, सार्वभौम 'मद्' शुद्ध मनातन ।
नारी कक्षा में अभ्यास आचरण कर, हो
आत्मा परमात्मा में तद् उपयोगस्वादन ॥

८७

मधु विलास, उल्लास, हास, अन्तर विकास में,
जीवन के प्रकाश, नव ऋतु के नव वनाम में ।
पास चरण के प्लावित रस आकाश धरा का,
दम्पति का विन्याम नया रे श्वास श्वास में ॥

८८

काम 'सदंश' तदांगिक क्रिया मात्र 'निधुवन' यह,
जिसे कला, मर्यादा से गृहस्थ में पति युत ।
कामिनी-भोक्तृ शक्ति नारी की 'वधू' रूप से—
निज मानृत्व प्राप्ति प्रति करती धर्मानुष्ठित ॥

८९

जीवन का सौन्दर्य निखरता है धरती पर,
नारी की श्वासों से जब सगीत छलकता,
स्वर्ग उतर आता है रश्मिल धूलि कणों पर,
नारी की आँखों का जब आनन्द उमड़ता ॥

९०

नारी के अनन्त रूपों में मधुर कामिनी—
का प्रकार भी तत्त्व दृष्टि से अति महत्व का ।
उसकी निज स्वरूप सत्ता की गहन कुञ्ज में,
यही विमोहन, आकर्षण, करता नरत्व का ॥

९१

बुद्धि, विवेक, चेतना, स्फूर्ति, अभय फल दायक,
सुतनु नव-ग्रह शोधक-निज गृह में मङ्गल ग्रह ।
जिस पर इसकी दशा, दिशा, में जो सभाव नत,
वह कर लेता सहज निखिल निधियों का संग्रह ॥

६२

‘हर्ष, गीत, लावण्य, रूप, वाहित शिविका के-
पादपीठ इन्द्रासन, पुहुती सिंहासन पर।
शशि, शृङ्गार, वसन्त मदन, सुर शिल्पी सेवित,
यौवन राज्य स्वामिनी का जय रस मगडल द्युत ॥

६३

उभय हृदय के नव नव परिचय, नव प्रकाश मे,
नये परस्पर के प्रत्यय, प्रण, हों अविनश्वर।
अविरल शरद् सूर्य का कुन्दन, शशि की चाँदी,
पुष्कल बरसे सुख स्वर्ग का नित इनके घर ॥

६४

मधुर कामिनी की पूजा मे अग जग का मन,
स्वतः प्रवाहित, आकर्षित रहता प्रवृत्त जन।
मम कवि उसके युग वाञ्छित चर्चित चरणों का,
नत वस्त्रियो के जल से करना प्रक्षालन,

६५

सदुपयोग निज का, प्रयोग विनियोग जगत् का,
जीवन के उपभोग-भोग संभोग समाग्रह।
मणि काञ्चन संयोग, सुधामय-आत्मयोग मयि,
प्रकटित नारी सदुद्योग के प्रति सयोग सह ॥

६६

दंष्ट्रा मे रक्षा का धारण, हिम नग का कर,
त्रिपद माप त्रिभुवन का, शिर पर मुर मग्नि जल।
सम्भव अञ्जलि गृहण जलधि का रवि का मुख मे,
सहन असम्भव स्व मे प्रिया का उन्मादन पल ॥

६७

नैश, निशान्त, प्रात, साय, प्रदोष, अपरान्हिक,
सह मध्यान्ह अष्ट कालिक लीलाएँ अद्भुत।
पुनि मक्षित, समृद्धिमान, सम्पन्न, अनायित',
दम्पति रम सम्भोग अनिश अनुगम समूर्जित ॥

६८

वधू युक्त लघु वन्य कुटी है इन्द्र भवन सी,
 आतप हिम सा, हिम आतप सा, तत्समीप रह ।
 वह पाथेय नृजीवन पथ की, मृत्यु पन्थ द्युति,
 उम्के विन गृह वन सा है, वन गृह सा तत्सह ॥

६९

हुआ मिलन से दम्पति के जग तरु में दोहद,
 उदित चिर प्रतीक्षित अति मानव का तेजोज्वल ।
 दोनों की आत्मा ने सुन्दर सत्य शिव स्तुत,
 तनय रूप में व्यक्त किया व्यक्तित्व अमृत फल ॥

१००

गृह - गृहस्थ - कृति दक्ष कामिनी भुवन उपासित,
 करती भीतर बाहर का विष शमन जागरण ।
 गृहिणी के गृह में आत्मा मन प्राण पुष्ट कर
 नृ देवत्व की ओर सफल करता आरोहण ॥

१०१

नारी प्रभु के स्व की स्वयं कृत श्रेष्ठ कला कृति,
 उनके निजानन्द की रस की अनिश अमृत घन ।
 प्रति आत्म लीन आप्त काम की शुचि श्वाँसों में,
 मद्रका करता सूक्ष्म इसी का मोदन - मादन ॥



गृहिणी

षष्ठ सर्ग

१

सर्वं प्रतिष्ठा, निश्छल निष्ठा, सुख स्रष्टा, शिव द्रष्टा सी ।
लोक लक्ष्मी, भुवि सरस्वती, दुर्गा, सब पर तुष्टा सी ॥
रस की राधा, रुचि की रति, चिर अन्नपूर्णा, सत्सेवी ।
शक्ति भक्ति मयि, गेहात्मा, जय-नव गृहिणी कुल की देवी ॥

२

सौम्य, सत्वमयि, परिचर्या नव सुलभी हुई समस्या सी ।
 शान्त तपोवन की शिष्या सी, ऋषि की साङ्ग तपस्या सी ॥
 सफल मनोरथ, सिद्धाशा शुचि, अनिश असूर्यपश्या सी ।
 है गृहिणी गृह के सुर-धनुषी-नभ की फाल्गुन संध्या सी ॥

३

शुक्ल पक्ष की विभावरी सी, द्वितीया के शीश की रेखा ।
 कल्प वृक्ष की हेमलता पर शरत्प्रात विद्युल्लेखा ॥
 अग जग की सौभाग्य श्री सी निज हिरण्यमय की आभा ।
 विलस रही हो इस धरती पर तुम चिर सुन्दर की शोभा ॥

४

चितवन से मन्दार बरसते, लज्जा से रस की स्रोती ।
 पद पद चलती पद्म उगाती, हँसने में झडते मोती ॥
 वचन सिता से मन में धुलते, सामे स्वर्ग 'सँजोती है ।
 निजान्त. सलिला तब ज्योत्स्ना, जग की कुरूपता धोती है ॥

५:

कोटि हृदय, अनन्त प्राणों के सिंहासन की रानी हो ।
 शत साम्राज्य, अमित स्वर्गों की तुम अविश्वर वाणी हो ॥
 विश्व विभूति भारती की निधि, महिमा भारत जननी की ।
 तुम समाज की मेरु दण्ड, चिर कर्णधार भव-तरणी की ॥

६

आर्द्र न रखता नरता को यदि तवाचरण रस का स्रोता ।
 अखिल अलौकिक आकर्षण फिर इस संसृति का क्या होता ?
 निज स्वरूप में जहाँ न तुम, वह सृष्टि सिद्धियों से रीती ।
 प्रति युग में आस्तिकता, प्रभुता, नैतिकता तुम से जीती ॥

७

लडते भिड़ते घातें करते, चलते जो न्यारे न्यारे,
 तब विशाल मन की छाया में सुसङ्गठित होते सारे ।
 एक विन्दु में विनिमय करती सबके भिन्न विचारों का,
 विजयाधिक स्वागत करती हो सङ्घर्षों की हारों का ॥

८

दान, दया, तब भाव, चाव से धर्म, कर्म, क्रम जीता है ।
नर न राम रह पाया घर में नारी अब भी सीता है ॥
लोक सृजन का, लोक गठन का, लोक सत्य का जय नारा ।
लोक तन्त्र में- लोक हृदय में जगा रही तब स्वर्धारा ॥

९

मंगल मय-अकुतोभय पथ पर तब गति प्रगति पुनीता है ।
सदाचार व्यवहार सार मयि चलती फिरती गीता है ॥
ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सर्वोन्नत, सुन्दर, तृण सी सहज विनीता है ।
वाञ्छा कल्पलता-बिन माँगे देती जो मन चीता है ॥

१०

विजित, नियन्त्रित, अभिमन्त्रित है कीलित भव विष की व्याली ।
पुष्पित, फलित, पल्लवित, तुमसे नर तरु की डाली डाली ॥
ग्याय और विश्राम विश्व में केवल पास तुम्हारे है ।
बाकी तो फूलों से मढ़ कर खोले खड़े दुधारे है ॥

११

द्वन्द्व, क्रान्ति की ज्वालाओं में शान्ति सुधा की धारा सी ।
बहती बहती लख पड़ती हो दिग्भ्रम में ध्रुव तारा सी ॥
जो कुछ भी पाथेय पथिक की भोली में रख देती है ।
उतने से ही सफल यात्रा, लक्ष्य प्राप्ति हो लेती है ॥

१२

रस विभूति अवतरित न होती यहाँ न जो नारी आती ।
वाण भट्ट की, कालिदास की प्रतिभा किस पर जी पाती ?
क्या संस्कृति, क्या दर्शन होता, तुम बिन क्या करती वाणी ?
आतप मय मरु सा रह जाता सूखा सूखा सा प्राणी ॥

१३

प्रेम, माधुरी, रूप, गीत, द्युत, जीवन यौवन का स्रोत ।
तुम से बहता, तुमसे निकला, तुम में ही जब लय होता ॥
मूर्तिकार किसकी छवि गढ़ते, गीतकार फिर गाता क्या ?
तुम बिन चित्रकार चिर रञ्जित, कवि व्यञ्जित कर पाता क्या ?

१४

रस के पनघट से दृग पथ पर वृषा, वृत्ति, मधु की रानी ।
 चाहों की गगरी सिर पर ले चलती, छलकाती—पानी ॥
 तब गम्भीर उदधि निज तट से उछल मचल टकराता है ।
 कोटि अगस्त्याञ्जलि कवियो में मुक्ता विरला पाता है ॥

१५

अपनी सिकुड़ी सी लज्जा में भुवन समेट समाती सी ।
 अनहद गान सजाती सी, अग जग का मौन चुराती सी ॥
 अस्फुट पग के चाप चिह्न पर ज्योतिस्तम्भ उठाती सी ।
 लसित स्वरूपोचित सत्ता से सब का अह सजाती सी ॥

१६

ओज भरी, पर खोज भीत, रत सुधा उरोज छिपाने में ।
 मुख सरोज के दोज इन्दु से भ्रमर मनोज उड़ाने में ॥
 नटन, गमन, लख सहन, वचन में, स्वाञ्चल करने मे गीला ।
 लास रास मयि दर्शित होती—तुम लीला मय की लीला ॥

१७

परम सत्य की परम्परा सी, विश्व धर्म की चेष्टा सी ।
 त्याग, क्षमा की वसुन्धरा सी, इष्ट ईश्वरी स्रष्टा सी ॥
 छवि की स्वरप्सरा—रसेन्दिरा, सुख की मंगल वेला सी ।
 मानव के व्यक्तित्वार्णव की रत्न राशि के मेला सी ॥

१८

श्यामा ! निज नभ पर नव दिन की सघन घटा सी आती हो !
 शस्य श्यामला ऋतूर्वरा सी—कुसुमाभरण सजाती हो ॥
 शिरा शिरा मे प्लावन आया कूजन, कलरव छाया रे !
 रस स्निग्ध दृष्टि से जग का व्यथित मर्म दुलराया रे ॥

१९

आनत पलक, सकुच लज्जा से, पाणि बद्ध सुख संज्ञा में ।
 रह निष्काम, स्वसुख वाञ्छा तज, मन की प्रेम प्रतिज्ञा में ॥
 अर्ध बदन पर धूँघट काढ़े कुल की परम समज्ञा में ।
 प्रस्तुत, विनत, पति प्राणा तनु, सादर पति की आज्ञा में ॥

२०

नित नव नव न्यौछावर करती, नूतन राग सजाती है ।
 प्रियतम की रुचि पर निज श्रद्धा, सत्व, समत्व चढ़ाती है ॥
 भव गौरव गरिमा, महिमा मयि काम्त कण्ठ की माला है ।
 निज तम का विष, अमृत सत्व का, रज की द्राक्षा हाला है ॥

२१

आया श्रमित, व्यथित मानव तव, अभय दायिनी छाया में ।
 तुम उसका अभीष्ट शिव सुन्दर लायी निज शुचि काया में ॥
 भव अज्ञान तमोन्ध नयन की जानाञ्जना शलाका हो ।
 आराध्येष्ट आत्म मंदिर की तुम रंगीन पत्ताका हो ॥

२२

तेन, मन, धन, जीवन, यौवन की, जन की जो कुछ माया है ।
 राशि राशि अपनापन, सादर प्रिय पर पुलक चढ़ाया है ॥
 आत तृप्त चिर दीप्त पूत तुम कब किससे क्या लेती हो ?
 कोटिक कठिन कुघातो पर भी बस मंगल फल देती हो ॥

२३

कण कण प्रतिमा प्रतिमन मन्दिर, दर्शक अग जग सारा है ।
 मधुर पुजापे की थाली सा निखिल मिसर्ग पसारा है ॥
 क्षण क्षण नीराजन की बेला, श्वास श्वास मे पूजा री ।
 एक पुजारिन हो तुम, ले निज अग्रह धूम सा आपा री ॥

२४

पग पग पर सद्गति उन्नति के प्रगति कलश पधराती सी ।
 द्वार द्वार निज मुक्ताहल के बन्दनवार भुलाती सी ॥
 ऋद्धि सिद्धि दैवी सम्पद् के घर घर दीप जगाती सी ।
 है हरि की अहेतुकी करुणा हरि को प्रकट लखाती सी ॥

२५

पुरुष भाग्य चौपड़ की चिकनी सिद्ध चेतना गोटी है ।
 गौरव गगन, यशेन्दु चुम्बिनी-सुख सुमेरु की चोटी है ॥
 गई चेतना युग की इसके ही प्रयास से लौटी है
 मर का खरा खोट पन कसने नारी खरी कसौटी है ॥

२६

प्रिय-दर्शना देव-मानव-प्रिय, प्रियम्बदा, श्रद्धा पाली ।
 सत्य, दान, तप, सेवा में रत, सब विधि मर्यादा वाली ॥
 ध्येय, धैर्य, धर्मशीला तनु, शुद्धे शान्त, मति, व्युत्पन्ना ।
 विप्र, धेनु, गुरु, अतिथि परायण गृहिणी है श्रुति सम्पन्ना ॥

२७

नियम निभाती, व्रत, प्रण करती, देवी देव मनाती है ।
 पर पालना, पुष्टता, हित में निज मृदु देह सुखाती है ॥
 गृह जन मोद विनोद हेतु, दुख में प्रफुल्ल मुस्काती है ।
 करने शुभ-सन्तोष गृही का अपना कष्ट भुलानी है ॥

२८

कुल, समाज, परिवार-लोक की जन सङ्घटना की खूँटी ।
 तत्त्वान्वेषी प्रति मानव की सञ्जीविनी सुधा बूँटी ॥
 निज तरणी के प्रति यात्री का तीर स्वयं बन जाती है ।
 अभिगप्तों की रज समाधि पर स्वधारा सी आती है ॥

२९

जीवन के ऊँचे तथ्यों का जन समुदय का मेला है ।
 युगोत्कर्ष, युग का अति मानव, यहाँ धूलि में खेला है ॥
 अखिल आर्त की आर्द्र पङ्क्त पर यह पाथोज खिलाती है ।
 भूतल के कण्टक डगढल पर पाटल सी खिल जाती है ॥

३०

सतरङ्गे पल्लव का यह तरु - मुक्ता के फूला वाला ।
 शत वर्गी पद्मों का मणिसर कोटि धार कूलों वाला ॥
 छवि वसन्त की रस स्पन्दिनी मदनोत्सव वीणा वाली ।
 हस वाहिनी ने यह भावों - गीतों की प्रतिमा ढाली ॥

३१

पद्म वनोद्घाटन शीला श्रुति कलश उपा छलकाती है ।
 इन्दु मुखी, रवि आभा वाली, तनु पहले जग जाती है ॥
 पहले अलङ्कार वादन फिर विहग प्रभाती गाते है ।
 भीतर शोभा बाहर आभा एक साथ जन पाते है ॥

३२

लोक जागरण आभामव का प्रथम घूँट इसने पाया ।
मलयानिल ने प्रथम इसी का धानी अञ्जल फैलाया ॥
ध्यान मग्न हो हरि की छवि पर मङ्गल भाल भुकाती है ।
चुपके से फिर पति के आगे भाव भरी भुक् जाती है ॥

३३

श्वेतोत्पल तल पर बहु वर्णी नतित छायाएँ भीनी ।
गृह में तब तन की पाटलता कमल गन्ध बहती भीनी ॥
अञ्जल युक्त मदीला मन्थर मलयानिल गन्धोन्मादी ।
मधुवन में खग कलरव कृजन, घर में भूषण है नादी ॥

३४

पृथ्वी की रज मस्तक पर ले दर्पण के आगे आती ।
बिखरी वेदी अलक उठाकर सन्मुख गुरुजन के जाती ॥
वयोवृद्ध निज सास श्वसुर के पद की लेती धूली है ।
चिर सौभाग्य बती होने का वर पाकर सुधि भूली है ॥

३५

गाते बीते युग, न गा सके कण महिमा कुल शीला की ।
पार न इसके सच्चरित्र का थाह न हरि की लीला की ॥
पति के प्रिय को रुचती पचती आदर से दुलराती है ।
पति के मङ्गल शुभ चिन्तन से फूली नहीं समाती है ॥

३६

नन्द, जिठानी, दिवरानी का अभिनन्दन करने आयी ।
अनुजों ने, शिशुओं ने उसकी निश्छल प्रेम सुधा पायी ॥
पति के नियमित नित्य कर्म का कर प्रबन्ध क्षण में सारा ।
दैनिक कृत्य सभी शिशुओं के पूर्ण हुए उसके द्वारा ॥

३७

गौ दर्शन, गौ रस मन्थन, अरु गौ आस देने वाली ।
अद्भुत भाँकी होती जब खग चुगा सीचती शेफाली ॥
कोमल पद्म पाणि से रवि को सादर नीर चढ़ाती है ।
तुलसी, शालिग्राम समर्चा करके अति सुख पाती है ॥

३८

भृत्य, चेटियों को आवश्यक कार्यादेश किये सारे ।
 जो परिवार जनों जैसे ही होते है प्रतीत प्यारे ॥
 गृह-मार्जन, सङ्कलन, नियोजन, आदि अन्य सब तय्यारी ।
 शीघ्र व्ययस्थायें, सुविधायें करली करवालीं सारी ॥

३९

अङ्गराग, आप्लव कर पहिनी शुचि पोशाक नई नीली ।
 फिर शृङ्गार करे आनख-शिख सती सुहागिनि गर्वोली ॥
 पूजा गृह मे देवार्चन युत नृत्यवती स्तव गाती है ।
 गृह मीरा की मग्धु वीणा ध्वनि मुग्ध पवित्र बनाती है ॥

४०

नारी रत्नाकर में रत्नों के बहु भण्डार भरे न्यारे ।
 जिन्हे निकाल रसिक सज्जन जन पाते सुख जग के सारे ॥
 कामुक डूब वासना जल मे निजास्तित्व संज्ञा खोते ।
 गृहिणी की करुणा से सबके सिद्ध मनोरथ है होते ॥

४१

षड्रस व्यञ्जन स्वयं सिद्ध कर हरि के भोग लगाती है ।
 गौ, द्विज, अतिथि भाग अर्पण कर थाल परोस बुलाती है ॥
 शिशु, वृद्धों, फिर अन्य जनों ने भृत्य आदि सबने खाया ।
 गृह देवी ने सर्व अनन्तर पति प्रसाद युत ही पाया ॥

४२

अभिमन्त्रित, कर्पूर मिलित जल, प्रोक्षण कर आले द्वारे ।
 साँझ, सकारे अग्रह धूम धूमित करती घर में सारे ॥
 हेम शलाका सहित स्वकर से सान्ध्य प्रदीप सँजोती है ।
 कृत्य मुक्त, नव छवि, सुवेश से, श्री सी शोभित होती है ॥

४३

कर्त्तन, सीवन, वयन, कर्पणा अतिथि अध्ययन, लेखार्चा ।
 सखि - वार्त्ता, योजना, मन्त्रणा, स्वर्ग, मर्त्य की सच्चर्चा ॥
 नृत्य, वाद्य, गीत, चित्राङ्कन, काव्यास्वादन, सञ्चिन्ता ।
 प्रियतम की आगमन प्रतीक्षा सन्ध्या तक करती कान्ता ॥

४४

शुचि साचरण प्रेम शिक्षा दे, आत्म विभूति जगाती है ।
श्रुति स्वधर्म की सोपानों पर चढ़ती हमें चढ़ाती है ॥
सत्प्रवृत्तियां-सच्चिन्तन दे, शुभ सत्कर्म कराती है ।
यह सर्वोच्च कीर्ति ईश्वर की महि माहात्म्य बढ़ाती है ॥

४५

श्राम्त, शिथिल प्रिय के आने पर शुचिस्मिता मुस्काती है ।
नवाभ्यर्थना, नव स्वागत से सारी श्रान्ति मिटाती है ॥
करती है अनुकूल आचरण, समयोचित हो जाती है ।
पति रुचि के अनुरूप सभी कुछ करती वस्तु जुटाती है ॥

४६

मन, क्रम, वचन, कर्म से करते पति न कलत्र अवज्ञा है ।
श्रद्धा से शिर धर करती यह पालन पति की आज्ञा है ।
पति, भर्त्ता, स्वामी, सेवक है, दयित, सखा, रक्षाकारी ।
पत्नी-पति की सखी, स्वामिनी, प्रिया, सचिव, अनुगा, प्यारी ॥

४७

माँ सी, भगिनी, गुरु, दुहितासी, शिष्या, प्रेयसि, सी भार्या ।
सखी, कामिनी सी गुण वाली शोभित है गृहिणी आर्या ॥
फिर प्रभात सा क्रम चलता है सब सम्हालती एकाकी ।
पाल रही उत्साह, ध्यान से तनु शिक्षा अपनी माँ की ॥

४८

ब्रह्मवादिनी मोह सुख विरत कर्तव्योन्मुख करने में ।
भक्तिमती यह प्रियतम का मन भाव रसों से भरने में ॥
एक साथ एक वपु मे यह शत सम्बन्ध निभाती है ।
एक रूप मे विभु ईश्वर सी सबको भिन्न लखाती है ॥

४९

असन्तोष, आरोप, विमति, रुचि, सबके भिन्न विचारों का-
श्रवण-सहन कर ध्यान न करती जग के कटु व्यवहारों का ॥
अलसाते ऊबते, खीभते, कहते कठिन मृषा वाणी ।
कुढ़ते, चिढ़ते, क्रोधित होते लखी न किञ्चित कल्याणी ॥

५०

सुख, सुविधा, सन्तोष, शान्ति की, क्षेम, क्षमा, क्षम की दानी ।
 स्वर्ग सृजन की चिन्ता, चेष्टा, चाह चेतवाली रानी ॥
 आती मलय प्रभात वात सी नव जलजात खिलाती सी ।
 जाती सन्ध्या सी जग नभ पर नव से नखत उगाती सी ॥

५१

समाधान कर तोष यथावत् कामो से छुट्टी पायी ।
 चली चापने सास चरण फिर श्रद्धान्वित अति हर्षायी ॥
 कर आमोद - प्रमोद ननद से सबसे समुदाज्ञा पाके ।
 छम, छम, रुन भुन करती स्व शयन कक्ष चली तनु हर्षाके ॥

५२

शयनागार मदन मन्दिर सा, रंग पीठ रति का दोला ।
 रस शृङ्गार विहार कुञ्ज सा मधु विभूतियों का डोला ॥
 ऋतु शोभन सैश्वर्य, सावरण, कुसुमार्चित सजा वाला ।
 अग्रह सुवासित, बहु रस सिञ्चित, द्युत, सज्जित रखती बाला ॥

५३

पुलक प्रतीक्षा, श्रान्त कान्त की आगे बढ़ अगवान्नी की ।
 सवित हुई फिर कवि कण्ठी सी स्रोती स्वागत वाणी की ॥
 द्विरद गुण्ड सी प्रिय बाँहों की स्वीकृत तनु ने की माला ।
 पद्म स्तवक सदृश शोभित अति जिनमें उलभ हुई बाला ॥

५४

क्षण स्पर्श, शुभ दृष्टि प्रणय से विगत श्रान्ति चिन्ता सारी ।
 मन उमंग, तन की तरंग में, मग्न हुई मुद में नारी ॥
 मुखर हुआ संगीत प्राण का श्वास सुरा बरसाती है ।
 प्रियतम के रस की पावस में विद्युत् सी मदमाती है ॥

५५

शकुन्तला दुष्यन्त, मदन रति, नल समेत दमयन्ती सी ।
 शची इन्द्र सी, इन्दु रोहिणी, सावित्री पतिवन्ती सी ॥
 समरिण द्युति-रसाब्धि-तम अहि पर विष्णु रमा शोभा बाँकी ।
 एकासनासीन दम्पति की शम्भु-पार्वती सी भाँकी ॥

५६

ताम्बूल गोष्ठी, रहसि वार्त्ता, मृदु विनोद, रुचि रागार्चा ।
चौसर केलि, रसोक्ति रञ्जना, मधुर स्मृतियों की चर्चा ॥
विविध वाद्य वादन, सह गायन, मधु विलास रस लीलाएँ ।
गृहिणी सपति स्व गृह में करती विविध स्वर्ग की क्रीड़ाएँ ॥

५७

प्रियम्बदा, सुखदा, वशंगता, प्रजावती, भव मूला है ।
साध्वी सुपटु, कृपालु, विनीता, रसवन्ती अनुकूला है ॥
सद्गुणसदना, विदुषी, सुभगा लक्ष्मी मी भार्या वाला ।
है न गृहस्थाश्रम सम जग में चारों फल देने वाला ॥

५८

अन्याश्रम के सब साधन फल पाने तपी स्वयं जाते ।
किन्तु गृहस्थाश्रम में प्रति फल पास गृहस्थी के आते ॥
सब आश्रम, सब तप, साधन श्रम, चिर आश्रित गृह यत्नी के ।
श्रेष्ठ गृहस्थ, जहाँ हरि श्री से चिर दर्शन पति पत्नी के ॥

५९

अन्ताश्रम सिद्धों का जहाँ न प्रायश्चित्त कृत पापों का ।
अर्थ, कीर्ति, षड्रिपु है जिसमें हेतु निरय के तापों का ॥
इस गृहस्थ में सब खप जाते समाधान सबका होता ।
पति पत्नी का मिलित कर्म शुभ महज त्रिविध अथ को धोता ॥

६०

इस गृहस्थ में भक्ति भाव मय दम्पति प्रेम प्रतिष्ठा से ।
पद पद पर सुख दुख में करता हरि स्मरण अतिनिष्ठा से ॥
जिनसे डरते बटु, मन्यासी, योगी वानप्रस्थी है ।
निज त्रिविधोन्नति का साधन कर भोगे उन्हें गृहस्थी है ।

६१

निश्चय वाञ्छा सुरतरु गृहणी सुर, नर, मुनि जिसके द्वारे—
साँझ सकारे हाथ पसारे स्वेच्छित निधि माँगें सारे !
प्रति उपकार नृ धर्म कर्म को स्व नय सूत्र से बाँधे है ।
निखिल स्वार्थ परमार्थ दान से गृहिणी अथ तक साधे है ।

६२

न्याय प्रिय संयत सात्त्विक शुचि, दम्पति सुनियम आस्था से ।

सदाचरण से स्वर्ग बनाते घर को सुविधि व्यवस्था से ॥

गृहिणी का आदर कर जग में सम्भव वस्तु न क्या पाना ।

गृहिणी की ड्योही पर रहता देवों का आना जाना ॥

६३

गृहिणी कर उत्सर्ग, समर्पण, शुभाचरण प्रेम स्पर्धा ।

पति पद पर टिकवा सकती है गर्वोन्नत अग जग मूर्धा ॥

निश्च्रेयस्, अभ्युदय, शान्त गति, जन्म सफलता प्राणी की ।

मिल सकती बस मुधा, कृपा से सदगृहिणी कल्याणी की ॥

६४

घर में प्रेम नदी गृहिणी की, गौरव की गिरि छाया है ।

इसकी शान्ति-सिद्ध आश्रम है, मन्दिर कञ्चन काया है ॥

गृहिणी की संकल्प सिद्धि सह रहते ऋषि सद्भावों के ।

प्रत्यय के भगवान विचरते हरते असुर अभावों के ॥

६५

श्वामो से सङ्गीत सरसता, आँखों से रस की धारा ।

होठों से आनन्द छलकता, भालोदित मंगल तारा ॥

पद गति से आलोक विखरता, स्वर विवेक बरसाते है ।

गृहिणी की छवि के वसन्त मे प्राण पद्म खिल जाते है ॥

६६

कोष प्रेरणाओं का देती ललित भावनाओं द्वारा ।

कला कलश पति का भर देती ललित भावनाओं द्वारा ॥

यौवन का चैतन्य दान कर, जीवन का मधु देती है ।

गृहिणी निज सौभाग्य पुण्य की शश्य श्यामला खेती है ॥

६७

अनावरण होते रहस्य सब, उद्घाटन निज ध्येयो का ।

विस्तारित करती शत सत्पथ, हर्ष प्रसारण गेयो का ॥

संस्थापन करती श्रेष्ठों का उद्यापन सत्श्रेयो का ।

संयोजन करती उचितो का, गृहिणी संग्रह ज्ञेयो का ॥

६८

एक ओर सुत अपर ओर पति, दोनों पलडे भारी हैं ।
 इधर सूर्य, शरदिन्दु उधर लख, सन्ध्या सी बलिहारी है ॥
 एक मूर्त्ति निश्श्रेयस्, दूजा निखिल अभ्युदय धारी है ।
 वात्सल्य शृङ्गार उभय के मध्य मुगोभित नारी है ॥

६९

जीवन के साफल्य साधनों के संग्रह की प्रेक्षा सी ।
 स्वेच्छा सी स्वतन्त्र ईश्वर की अन्वीक्षाचिदपेक्षा सी ॥
 उसकी सत्ता सी, साक्षी सी, मीनाक्षी, तद् आस्था सी ।
 जीवन जन-जग की, युग युग की गृहिणी, मुकृत व्यवस्थासी ॥

७०

जिसके दर्शन से विचार, व्यवहार प्यार से संसारी ।
 भीतर बाहर स्वस्थ शान्त शुभ स्वभाविक है आभारी ॥
 लिये विना उतरायी सबकी नाव पार तक खेलायी ।
 वृष्णा का मरु सीच कृपा से नृमिलता है फैलायी ॥

७१

नर होता आहूत ढालता बहु बिधि सामग्री ला ला ।
 स्थूलांश भस्म करती मख-शाला में नारी ज्वाला ॥
 प्राप्त उपाजित के 'शुभाश की करे विभाग सुरक्षा है ।
 नर संचालक मुतनु विभाजक तन्मिथ उभयोपेक्षा है ॥

७२

नर वेत्ता समस्त विद्या तनु, यह मायी वह माया है ।
 नारी मुक्ति, पात्र जिसका नर, तनु प्रकाश नर छाया है ॥
 नारी गीत अनादि अनश्वर नर शाब्दिक स्वर काया है ।
 नर कवि—जिसने छद्म छन्द में नारी का रस गाया है ॥

७३

सकल समुज्ज्वल कान्ति प्रदर्शित गृहिणी के मिष नारी की ।
 सीमा है सद्भाव प्रेम की करुणा शिष्टाचारी की ॥
 गृहिणी की मधु वाणी में 'मधुमती' मधुर तद् वीणा में ।
 कुछ भेद न जान पड़े उसके अन्तर मुख में मधुपीड़ा में ॥

७४

गृहिणी गृह में उदयाचल सी रवि शशि उदय करी प्राची ।
 समुत्थान भूमिका सब की जीवन पोथी की साँची ॥
 हाला, अमृत, हलाहल त्रय की तीन द्वार वाली शाला ।
 इष्ट पथों के चौराहे की चतुर्मुखी ज्योतिर्माला ॥

७५

गृहिणी प्रहरी लोक हृदय की प्राणों की जीवन बूँटी ।
 सिन्धु तीर पर प्लवन रक्षिका सुदृढ़ नर तरी की खूँटी ॥
 संयोजिका निखिल उत्सव की प्रति रुचि, रस, यश की मेदी ।
 साध्वी सती शिरोमणि गृहिणी अखिल योजना की वेदी ॥

७६

‘सत्’ साक्षात्कार की दीक्षा’ ललित कला मति की भिक्षा ।
 रक्षा कर अघ दुस्तापों से देने भावों की शिक्षा ॥
 नव उत्कट, उत्प्रेक्षा प्रभु की, दिव्य दृष्टि की श्री सारी ।
 स्वेच्छा से आई सदसद् की स्पष्ट समीक्षा सी नारी ॥

साध्वी

नवम सर्ग

१

अचञ्चल प्रकृति की, सदाचार की सिद्ध सुदृढ
सूति भावना की, आत्म निष्ठा की ज्योति सजग ।
अनघ, अपराजित, अनन्य प्रेम साधिका,
साध्वी - जयति - दैवी शक्तिमयि मानवी ॥

२

व्यापक जिसकी अरित्र चिन्तामणि, किरण
 सतेज व्यक्तात्मा, मंगल विभूति मती ।
 स विलक्षण व्यक्तित्व, विचित्र अग जग में,
 भारतीय संस्कृति की देन यह अद्भुत ॥

३

पतिव्रता, पति स्थिता सविशेष, दुर्लभ,
 स्व व्यक्ति में पूर्ण, निखिल यज्ञ फलवती ।
 जिसके भय काल भीत, मृत्यु तप्त पाश शिथिल,
 अग्नि दग्ध, सूर्य्य, अखिल तेज मलिन ॥

४

अयुत कोटि वर्ष स्वर्ग सुखदा स्व पति को,
 जिसकी शुचि पदरज से पावन चराचर ।
 धन्य पिता, प्रसू, गेह, काल, धरणी,
 जिनमें विराजती साध्वी नारी सती ॥

५

देव, सिद्ध, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर,
 साध्वी स्पर्श से प्राप्त पूत होते नर ।
 पाप, शाप, ताप सकल के द्रुत विमोचित,
 सतवन्ती का प्रभाव प्रकट अग जग में ॥

६

मूल गृहस्थाश्रम की, मेरु प्रति सुख की,
 धर्म आदि फल प्रदा, कारण सुसृष्टि की ।
 अतिथि, देव पितर की, तुष्टि करो-हरि की,
 तीर्थों की तीर्थ, पुण्य करी सुरसरि की ॥

७

स्व इहि लोक, परलोक स्वार्थ, परमार्थ सब,
 सहज बने इसके संयम से सुतप से ।
 भक्ति से ईश्वर की, स्व सुकृतों-पुण्यों से,
 प्राप्त होती सती वधू भूरि भाग्य से ॥

८

रोग, राग, कर्म भोग, मिटते दुरित सब,
पातकी होते पात्र सहज विष्णुधाम के
बसते समस्त तेज मुनिगण के इसमें,
निखिलाखिल शक्तियाँ सेवा रत रहती ॥

९

तपस्वियों का तप, व्रत, फल, त्रिबल, सम्बल,
दाताओं के दान का प्राप्य, यश सकल ।
हरि, हर, विधि का, त्रिकृत्य लोक मङ्गल पथ,
सदृशलाभ्य, सत्त्व विग्रह है साध्वी ।

१०

सती चरण नख नखत संसृति मस्तक मार्ग,
निज त्रिकुल, त्रिपीढ़ी तारती त्रिवर्गदा ।
अकुतोभय रहते पति सुत प्रसादित हो,
रवि शशि किरण सभय तन छूती सती का ॥

११

तुहिनागिरि से गिरिजा, विष्णु से गङ्गा,
सिन्धु से शशिकला, शिव शिर विहारिणी !
नभ से प्रसूत ज्यो उषा तेजस्विता,
त्यों ही निज सदन कन्या सती जन्मती ॥

१२

स्मरण, दर्शन, श्रवण, स्पर्श, गन्ध से जो,
रसा नन्दार्णव उदेल दे अन्तर मे !
साध्वी तनु के अतिरिक्त भुवि - मण्डल में,
ऐसी न अन्य मणि रचना विधाता की ।

१३

धरती पर कामधेनु, वाञ्छा कल्प तरु,
स्यमन्तक, पारस, चिन्तामणि, रत्नाकर ।
प्रत्यक्ष इष्ट मूर्ति, विभूति विभु आत्मा,
है साध्वी धरा की अक्षय यशोधरा ॥

१४

पूजनीय, आदर्शणीय, वन्दनीय चिर,
लोक लक्ष्मी यह, सरस्वती गृह की शुभ ।
स्वधर्म की आश्रय, आलय सद्गुणों की,
सञ्चय पुण्यों की, सुकर्मों से सप्रभ ॥

१५

वैराग्य मार्गी जो मूढ़ता बश करें,
गुण गण विहाय केवल दोष गण, निश्चय
वे अविवेकी, छल कर ढकते स्व निबलता,
नारी निन्दा से कर लेते नष्ट आत्मा ॥

१६

दृष्टि मे जिनके विषय मदिरा विधूर्णित,
मेधा मे मोह का तिमिर तोम छाया ।
दीखती जिन्हे बस काया बिन आत्मा की,
नारी स्वरूप की उन्हें पहिचान कहाँ ?

१७

उदरदा, दुग्धदा, अन्नदा, विवेकदा,
रसदा, शक्तिदा, स्वरूप - सौन्दर्यदा ।
जीवनदा, धर्मदा, कर्म - गुण - प्रकृतिदा,
जन जन को नारी पौरुष, पुरुषत्वदा ॥

१८

साध्वी, सृजनमयी सिद्ध पीठ जाग्रत,
दैवी सम्पदा की निभृत कोष अक्षय ।
स्व मानवीय 'ज्योत्स्ना' की दीप अमर,
सर्वोच्च शृंग मानव श्रेय सुमेरु की ॥

१९

परम अमृतत्व की अनन्त अनुभूति अनिश,
प्रस्थान त्रयी की सुसार मूर्ति; कविता-
मयी ऋचा, ऋजु संगीत मय साम् की,
प्रकट अन्तरिक्ष की पृथ्वी रसोमयी ॥

२०

विभु कर्त्तृत्व, सकल की कर्त्ता क्रिया,
अन्तर्क्षेत्र की कर्मठ, कर्त्तव्यपरा ।
यह वरद मुद्रा में, प्रसन्न आकृति में,
करे मांगलिक रुचि से स्वस्ति नित वितरण ॥

२१

कान्ता सम्मित सर्व मान्य स्वर सृष्टि में,
कौन कर सकता उल्लङ्घन आदेश का ।
उपमा न इसकी, प्रभुता भी इसके सम,
प्राणी का स्रोत-सेतु पोत है येही ॥

२२

धर्ममय इसके आचरण से समुन्नत,
प्रोत्साहन, साहस, प्रबोधन से सुस्थिर ।
जग है इसकी शोभा से सुन्दर सुखद,
पति-पुत्र वश कर अजेय त्रिभुवन में ॥

२३

मयङ्क मुखी हरती आतङ्क-रङ्क भय,
निश्शङ्क रसा-सी, संसार लिये अङ्क में ।
आनन्द रस मे बुभा लोक ज्वालाएं,
मंगन अपाङ्ग से हरती विघ्न बाधा सब ॥

२४

आत्म विष्णु नाभि की पद्म सी स्व नारी,
सृजन की जननी, विनाश की पितामही ।
भगिनी पालना की, प्रेयसी विवेक की,
कर्म अधिष्ठात्री, नियति अग जग की ॥

२५

इङ्गित से एकता संहार-शिव ताण्डव,
दृष्टि से नवारम्भ होता संसृति का ।
मृत्यु के तामस तम मय मृत्यु लोक मे,
स्वर्ग की मूर्त्त जीवन ज्योति सी दर्शित ॥

२६

जन में नव जीवन भरती, सिन्धु मै ज्यों
सरिताये क्षण क्षण नूतन निज मधुर जल ।
मानव का पीकर क्षार, नये मेघ सी,
बरसाती अमृत शशि उसके हृदय पर ॥

२७

गृह की रङ्ग - भूमि निज प्रति सुरक्षित कर,
बाहर की कर्म-भूमि पति सुत को देती ।
बाहर पुरुष करते तत्पर कर्म कठिन,
भीतर छिप करे शक्ति सर्जना जिनकी ॥

२८

कर्त्ता ईश्वर, निमित्त पुरुष, क्रिया प्रकृति,
क्षेत्र संसृति, कर्म चेतना नारी है ।
यह संसृति की प्रगति मति, इसके बिन जग—
अचल हो रहता एक पत्थर सा, रुक्ष सा ॥

२९

तन्मात्र, निसर्ग, जाति, नाम, गुण, रुचि की—
कल्पाश्रय, जिनमे ये, माँ सहज उनकी ।
नारीत्व घनीभूत, नारी है शाश्वत,
सब कुछ हो शून्य मात्र, शून्य हो सब कुछ ॥

३०

सूक्ष्म, स्थूल, ज्ञात, अज्ञात, सर्वस्थल,
प्रतिष्ठित प्रत्यक्ष व स्वप्न मूर्ति तनु की ।
सब में व्याप्त समर्पण वृत्ति साध्वी की,
भाव सम्बन्ध अमित एक एक के प्रति ॥

३१

सत्ता सृजन-करती, सुशोभित सत्य को,
प्रकट करती आदर्श, जन्मती मानव ।
निखारती स्वरूप निज निर्मल रूप से,
कोमल कर-हृदय भाव विधिया सजाती ॥

३२

अतिशय विराट, विशाल मना सुतनु सहज,
 सुलघु हो रहती समर्थ सब सहने में ।
 पञ्चभूतों में इसकी स्वभाव किरण,
 वृण सी विनत सहज उन्नत जो शैल सम ॥

३३

पति में 'पूर्ण स्थिति' उसकी आत्म संज्ञा,
 'एकान्त निष्ठा'—उपासना वृत्ति परा ।
 पति में 'भगवद्भाव'—दृष्टि यह योग की,
 'सधर्मा विरुद्ध काम'—स्वरूप यह हरि का ॥

३४

ज्यों ताम्र पात्र में दधि होता घोर विष,
 त्यों आत्महीन पुरुषेन्द्रियों में तनु—
 होती उत्तेजक; मणि घट में अमृत सम,
 होती उपशामक साधुओं के हृदय की ॥

३५

निन्दा की सन्त ऋषि मुनि ने उस पथ की,
 सम्भव जहाँ अयश, काम, मोह, अधः पतन ।
 साध्वी अवज्ञा की कहाँ ? किसने ? जो स्व,
 पारस द्युति से करे हेम पुरुष तम को ॥

३६

स्व को सुरक्षित आप रख सकती यह
 पुरुषों द्वारा किञ्चित रक्षा न सम्भव ।
 वह स्वयं निज की सुरक्षा न कर पाता,
 सुतनु को होता जब पतन इष्ट उसका ॥

३७

कौटुम्बिक शान्ति, सङ्गठन की शृङ्खला,
 कटि में, चरणों में, तूपुर मिष सबका हित ।
 कङ्गन में ध्यान, सबका श्रेय हार में,
 माँग मिष मानव सम्मान लिये शीघ्र पर ॥

३८

तपस्या कर चाहती प्राप्ति पति पद की,
 प्रसन्न पति देते स्थान उसे शीघ्र पर ।
 कल्याण करते सुपति आर्य्य पत्नी का,
 वह भेटती सादर समुद्र सर्वस्व निज ॥

३९

पर गृह निवास, एकाकी प्रवास गमन,
 कुमंग, कुपुरुषालाप, कुसमय पथ भ्रमण ।
 कुचिन्तन, कुशृंगार, खान-पान कुपठन,
 साध्वी न भूल करें आचरण अनैतिक ॥

४०

स्व पौरुष को कृत कार्य्य निज सहयोग से,
 करती, यह दैवी प्रवृत्ति की सात्विकी ।
 अपूर्व रागानुग प्रेम की चूड़ामणि,
 चन्द्रिका सी महि पर विलसती-चिलकती ॥

४१

साध्वी का प्रेम कभी घटता समय से न,
 एकसा एकाकार रहे सुख दुख में ।
 जरा मिटा पाती न रसानन्द इसका,
 वयावरण परे शेष स्नेह सार सा ॥

४२

करती निर्माण, संवर्धन, संरक्षा,
 स्व धर्म, कर्त्तव्य स्थित श्रेय संयोजन ।
 साधु सहधर्मिणी, सहधर्मो उभय के,
 प्रीतिमय योग मे सत्ता संसार की ॥

४३

बुद्धि, मन्द, प्राण, कर केन्द्रित पति मूर्ति मे,
 प्रतिष्ठा, भावना, ईश्वराभिन्न कर ।
 पति परिचर्या में ब्रह्मानन्द पाती,
 ब्रह्मानन्द सहोदर देती स्व पति को ॥

४४

न कर प्रतिकूल उन्हें, अनुकूल रहे कर
स्व पति को निज में, निज को पति में स्थापित ।
हुई एक प्राण, पति - प्राणा को बना
अर्धाङ्गिनी 'अर्धनारीश्वर' पति हुए ॥

४५

मर्यादातिक्रमण कर सुतनु विकृत ज्यों
तटोल्लङ्घन कर विनाशिनी बने नदी ।
यह कौमार्य, यौवन स्थविर में सरुचि
रहती अधीन पितु, पति, सुत के स्वतः ॥

४६

गार्हस्थ्य रक्षण, अवेक्षण का भार ले,
देती सदवकाश पति को उपार्जन का ।
साध्वी स्व शक्ति भर जीवन के समर में,
होने न देती कभी पति को पराजित ॥

४७

प्रतीक्षित सुख की मूर्ति सी रहती निकट,
निश्चित तपोनिष्ठा की दृष्टि सी अमिट ।
अभीप्सित स्वर्ग की निधि सी गृह में प्रकट,
साध्वी लखे स्व लज्जा के पट में समिट ॥

४८

पति के प्रकाश, विकास, उन्नति, प्रगति में,
श्री वृद्धि, आदर्श, यश, कुशल, शुभोदय में ।
उनके अनुराग, सन्तोष, सुख, शान्ति में,
साध्वी है करती परम गौरवानुभव ॥

४९

चेतना पुञ्ज पुरुष को ज्ञाता - वार्त्ता,
स्रष्टा, पालयिता, मंहर्त्ता करती तनु ।
नारी को पाकर - अपनाकर - अपनी कर,
होता नर सुशक्तियों का मंगमोदगम ॥

५०

गिराते दुख दे जो स्त्री के अश्रु यहाँ,
 कुपित करते स्पर्श केश काया जो ।
 भग्न होते भाग्य नक्षत्र उनके सब,
 पूजा से व्यष्टि, समष्टि का अभ्युदय ॥

५१

अन्तर में देखली, जानती, समझती,
 सुनती, खोजती, प्यार करती उसे चिर ।
 शरीर के मोह, व्यवहार, प्रभाव विवश,
 हनन न करती आत्मा का साध्वी कभी ॥

५२

अध्यात्म चेतना मयि, जाग्रत, समुद्यत,
 नारीत्व इसका शुद्ध, बुद्ध, अमृतमय ।
 कुभौतिक, विषयों, पदार्थों से उपेक्षित,
 चाहती अमर तत्व, अमर प्रीति पति से ॥

५३

रुचि, स्वभाव, विश्वास, कर्म, कल्पना में—
 सत्य में स्वप्न में विराजती सु साध्वी ।
 स्वपति के हृदय में, प्राण में, नयनों में,
 श्वास, श्वास, लोम लोम आत्मा में अनिश ।

५४

साध्वी सिन्धु की थाह तृण से मिले कब ?
 जान सकता वही जिसने उतारा हो—
 निज व्यक्तित्व मन्दराचल तल में कभी,
 ग्रह की बल्ली टिक सकती न वेग में ॥

५५

वियुक्त भले हो चन्द्रिका चन्द्रमा से,
 किन्तु साध्वी हृदय न पति से विरत हो ।
 तस्मीवन वीणा पर जो राग बजता,
 उसकी मूर्च्छना पर मोहित है अग जग ॥

५६

लता वृक्षाश्रय, घनाश्रय दामिनी, अरु—
सरिताश्रय उदधि का, स्व पति आश्रय तथा—
सु साध्वी न बिचलित सम्पत्ति, विपत्ति में,
पतनाध्यात्मिक अनिष्ट कर न इष्ट उसे ॥

५७

दम्पति एक दूसरे के मंगल कुशल
प्रति-करते परस्पर प्रीति से व्रत, नियम ।
साध्वी भार्या, साधु पति रखते तन्मिथ—
शाश्वत देवी देव - भाव गृह स्वर्ग में ॥

५८

सु कन्या सुशील - शिष्ट जननी जनक की,
स्वश्रु स्वसुर की सु कुलीन, शालीन वधू ।
अमृत सुत की माँ, बहिन महा मानव की,
यह नारी है साध्वी पत्नी स्व पति की ॥

५९

गेहाजिर की मख बेदी सधूम चिर,
अक्षय कोष, रत्न कञ्चन, अन्न घृत का ।
रवि शशि सी उदित संतति से निभृत गोद,
छीन सके साध्वी सौभाग्य न काल भी ॥

६०

रंग रूप मिला, गत जन्म के पुण्य से,
किन्तु सञ्चरिष सद्बिचार से छवि में
लोकाभिरामता लाती साधुमति से,
ऋभवा सी दिव्यता सदाचरण करके ॥

६१

क्लीव, श्री हीन, कृश, कुरूप, वृद्ध, दुर्बल,
अन्ध, बधिर, पंगु पति मिले यदि दैव वश ।
स्व आत्म बल से, सतीत्व, सत्य निष्ठा से,
कर लेती देव कुमार सा दिव्य उसे ॥

६२

धरा धीर, तरु सहिष्णु, तृण विनत, गिरि सी
 सुदृढ़, मर्यादित सिन्धु सी, नभ सी विशद,
 सती के हृदय में न भाँक पाते कभी,
 ईर्ष्या, द्वेष, रोष, काम, कलह, भय, घृणा ।

६३

पुरुष घट, नारी जल, तन्मिथ उपयोगी,
 जल हीन घट व्यर्थ बिना घट दूर सलिल ।
 घट की उपयोगिता भरले निज में जल,
 जलोपादेयता घट में सपाने की ॥

६४

अलग शक्ति निष्क्रिय - बिना स्व क्रियाश्रय के,
 क्रियाश्रय जड़ शक्ति रहित, अतः शक्ति निज—
 सक्रिय क्रियाश्रय युक्त कथित नारी, अरु
 शक्ति केन्द्रित क्रियाश्रय शक्तिवान् पुरुष ॥

६५

पुरुष की अहमन्यता ने अनेक बार,
 आक्रमण किया है नारी इयत्ता पर ।
 पर महत्ता बढ़ी है, घन वन तिमिर में—
 सर्प मरिण होती ज्यो अधिकधिक दीपित ॥

६६

तदमुक्कलीतां स्वर्ग, निरय प्रतिकूलतां,
 स्व विविध रोगों की राम वाण औषधी ।
 रोति, प्रीति, धर्म, कर्म, यश की स्वामिनी,
 सती प्रसन्नता से पूर्ण सब मनोरथ ॥

६७

पुरुष शौर्य का, शाश्वत सौन्दर्य नारी,
 चैतन्य की संज्ञा, प्रज्ञा स्फूर्ति सहज
 पारावार शुचिता की अमलीन, अमल,
 अभिव्यक्ति साध्वी मानवीय आत्मा की ॥

६८

गुण कोष का रक्षक, प्रीति का पालक,
होने से 'पति', भरण करने से 'भर्ता' ।
समाज में नारी स्वरूप सम्मान शुभ,
पूजा कर्म करके पुरुष हुआ कर्त्ता ॥

६९

बैठे न द्वार पर, भोंके गवाक्ष पर,
अकारण न हँसती, सम्मुख किसी के यह ।
न आप करती कुवार्त्ता, सुने न पर की,
धीर गम्भीर शान्त लज्जा नत रहती ॥

७०

आदर्शोत्कर्षों का प्रात सुतनु वपु,
जीवन सुधा निर्भरी के निनाद मुखर ।
अन्तर तमिस्र भेद जिसका कृपा रवि,
नवोद्योग क्षमता नव भरता पुरुष में ॥

७१

साध्वी सतीत्व के प्रभाव से टिका,
निखिल भुवन मण्डल, बल त्रिदेव का सकल ।
जननी त्रिभुवन की मानवी गौरव मयि,
जिसकी चरण रज से प्रयत हो चराचर ॥

७२

इसमें है प्रेम प्रतिकार न क्षोभ तनिक,
इससे किसी का सम्भावित अहित नहीं ।
पाता प्रति प्राणी सुफल इसके तपका,
सबमें जगाती ज्योति दिव्य जीवन की ॥

७३

विधि, हरि, हर समस्त तीर्थ सेवित,
मिखिल लोकाश्रय, मुक्ति पथ द्योतक, द्युत ।
मधुर रसार्णव स्नात, जल जात कोमल,
जय साध्वी की स्वरूपाभिव्यक्ति सुखद ॥

७४

मानव इतिहास, वाडमय, रस कला की,
 व्यष्टि, समष्टि के उत्थान की सृजन की ।
 आत्मा, तन, बाह्याभ्यन्तर क्रान्ति की है,
 नारी जन्म जात जन मनकी 'नायिका'

७५

उत्पत्ति स्थिति, प्रलयकारिणी, भगवती
 सुविलसित नारी के मगल अपाङ्ग मे ।
 निखिलाखिल शक्ति का विलासोल्लास सब,
 नारी चरण नख दर्शन से अभ्युदयित ॥



नायिका

दशम सर्ग

१

नर-गन्धर्व-देव सत्त्वा, शुचि, सुरत सात्विका, मृदुस्मरा, स्थिरा,
उत्तमा, श्लेष्म शीला, श्यामा, मृगी, साधुभावा, रति मधुस ।
शुभानुकूल पतिका, सुकिशोरी, धीरोदात्त-विदग्ध-प्रेमिका,
सती. स्वकीया, जयति पद्मिनी, ललित नागरी, स्निग्ध नायिका ।

२

अनिश हर्ष, उत्कर्ष-अमित है, रूप अमृत, सङ्गीत अतुल है,
महिमा, गरिमा, स्थिर-यौवन है, प्रचुर भाव, अनुभाव विपुल है ।
प्रभु, विभु, सार्वभौम सुन्दर है, अपराजित प्रसार है मन का,
ममता में मानव, करुणा में—है इसके भगवान् भुवन का ।

३

पद्म-कान्ता, पद्म-कोमला, पद्माशुका, पद्म सी विकसित,
श्वास, सुरत पय, स्वेद, छीवन, आनखशिख सब पद्म सौरभित ।
शुद्धा, श्रद्धामयि, मित निद्रा, मितभाषिणि, मितभुक्, सुलक्षणा,
है सदगुणा, सुखद, शुक्ला यह, पद्मा सी, पद्माङ्ग, दक्षिणा ।

४

अधर अधर की देह देहली, इसके स्मित दीपों से चर्चित,
हृदय हृदय का अजिर राग की, मधुर फाग किशुक से रञ्जित ।
सबके मृगमय पर अपाङ्ग खिच, कनक कोट केयूर सजाते,
इसके युग गति हंस दृगों में मुक्ता के तोरण दुलराते ।

५

कीर्ति धवल शिर, भ्रू निष्पान्वित, दृष्टि शुभा, लोचन पुण्योत्पल,
अधर सात्म द्युति, रद विवेक सित गिरा सत्य ऋजु, मुख प्रेमोष्ण ।
उरभावोन्नत, बाहु कृपायत, पद सलक्ष्य चेष्टा कुलीन चिर,
गति विनीत, मति निश्चल, कृति शुचि, प्रकृति उदार चरित रत्नाकर ।

६

नये वर्ष की नव जीवन की, नये विश्व की, नव मानव की,
नवल सृजन वेला नव युग की, नयी प्रकृति यह नव माधव की ।
चिर नवीन यह, अभिनव रसमयि, नव दर्शन की नई प्रेरणा,
नूतन निशा का नव चन्द्रोदय, नव प्रभात की अरुण चेतना ।

७

ललित कला, कौशल, क्रीड़ापटु, कर्म कुशल, रस रहसि-कोविदा,
रीति नीति निपुणा, रति पेशल-काल-स्थिति, पर हृदयगति विदा ।
निःश्रेयस्, अभ्युदय-उभय मयि, रक्षा, पोषण, सृजन, पारगा,
श्रुति शिक्षा, विनोद दक्षा—है—गृह्य चतुर, सर्वार्थ सौभाग्य ।

८

जीवन ज्ञान हर्ष यौवन चिति रस सन्तोष सुधा सुधि का भव,
प्रेम प्रभा छवि प्रतिभा, मन का स्वर्ग, मर्त्य, यश का शरदुत्सव ।
जीव-प्रकृति, ईश्वर-आत्मा की, सत् चित् की, रति की अनङ्ग की,
तत्त्व समन्वय की धरती यह, कोर किनारा भव तरंग की ।

९

मादनाख्य की, उज्ज्वल रस की, महाभाव की कल्प त्रिवेणी,
श्रमोत्साह साहस संघट की, सत्प्रवृत्तियों की शिव श्रेणी ।
है इसके संगीत सृष्टि में, सप्रणय दृगमीलन उन्मीलन,
मौन समर्पण, शान्त ग्रहण पुनि, धीर गमन, गम्भीर आगमन ।

१०

नव शृंगारवती श्यामा यह, हसित हसित कर्षित लसता है,
मन मे रति-रति सी रमती है, रस शृंगार रुनक रिसता है ।
वय कमला, चपला सी कुटुकिनि, रूपनदनु, सुर धनु रँगती है,
नख शिख कान्ति, नखत शशि वर्षिणि, अलंकार त्रयि में रमती है ।

११

चोंसठ कला स्तम्भ शिविका पर, सदा विराजित, कवि कुल वाहित,
इसकी शोभा यात्रा का पथ, जन मन रुचि चन्दन से चर्चित ।
स्वर्ग मर्त्य के मध्य अमृतमयि, मुक्तामयि केवल यह सरिता,
सौंभ सुहानी में रसिकों का सोत्सव भ्रमण पोत है बहता ।

१२

सब पर कुहक मदन मादन का, सब निहुरे कर नयन निहोरे,
शिञ्जित पायल की रुनभुन ने किसके स्वप्न न है भकभोरे ।
किसका दर्प, अहंता किसका, जयी कौन है इसके सम्मुख ।
चित्ताजिर-चिति की चौखट पर, मोहावलि बखेरते नख शिख ।

१३

प्रियंगु स्पर्श, अशोक पदाहत्, कुरवकाश्लेश, चूतक मुखान से,
वकुल मुखासव, तिलक दृष्टि से, चम्पक हास्य, नमरे गान से ।
कर्णिकार नर्तन, सुखतरु में-नर्म-वाक्य से होता दोहद,
मानव मे तनु की स्मृति भर मे रिसते रस निर्भर-भावाम्बुद ।

१४

रज चन्दन, कण अक्षत, जिनमे द्युति कपूर, वृण अग्ररु मुहाते,
चरण द्वन्द पर चार चरण के-द्वन्द धकित, नव रग दुलकाते ।
इसका चिर माहात्म्य महार्गाव अविदित, अगम, अनिश, अपराजित,
कवि कुल की हे सिद्ध भारती । वरदो मै गा सकूँ उसे मित ।

१५

अंग अंग अणि के चिन्मय मे, निखिलात्माओं का ज्योतिर्मय,
विलस रहा नारी मे विह्वल, रूप विलाम, प्रकाश भावमय ।
एक रूप, भिन्न सत्ताएँ, सबको अपने की प्रतीति भर,
गवकी प्रतिभा मे, प्रतिमा मे, छवि विहार कितना विस्मय कर ।

१६

अंगुष्ठाङ्घ्रि सुगुल्फ, जानु मे, जघन नाभि, उर, उरज, कक्ष मे,
गल, गण्डाधर, हग, लिङ्ग, गिर तक क्रमशः श्वेताश्वेत पक्ष मे ।
दक्षिण तन मे ऊर्ध्व, वाम मे-निम्न रमण करता तिथित स्मर,
तथा सितासित मति मे जन भी उत्पत्ति पतन प्राप्त करता चिर ॥

१७

स्वस्थ, स्निग्ध, सौम्य, सुन्दर, मृदु सुगठित, कान्त, मौरभित, विकचित,
सम शीतोष्ण यथा ऋतु शोभन, भाव वलित, रस ललित अरुण-सित ।
लास्योचित, सोत्सव, गीतस्फुट, सज्जित, सजग, सलज शोभाश्रय,
हिम-कपूर्-इन्दु-इन्दीवर, इसका सुरधनु वपु-हिरण्यमय ॥

१८

इस सर्वज्ञा, कान्ता सम्मित, आज्ञा की सम्भव न अवज्ञा,
रस के सूक्ष्मान्तर दर्शन की, मूर्तिमती यह सज्ञा-प्रज्ञा ।
शुभ का शोभा का निमित्त अरु, उपादान यह ही पदार्थ निज,
आत्मंगत विवेक मे विकसित विश्व प्राणमय यह सुख सरसिज ।

१९

सुरचि सकुच, नव विकच, कुचांकुर भ्रूखिचाव, चर्चित कच नीले,
शैशव गमन, उदय यौवन का, कहते सस्मित नयन लजीले ।
नव वय की सुरम्य सीमाएँ, छवि की अमित अमृत धारो पर,
लज्जल हो उठती चाहों से बाँहो में मधु की लहरे भर ॥

२०

किया कलाग्रों को जीवन मय, जन-जीवन को मधुर कलामय,
जीवन और कला की इसमें, एक रूपता, एक समन्वय ।
इसके मन की दश धारों से कला, शिल्प, श्रम, सिक्त, सरस, प्रति,
छवि की रंग पीठ पर नर्तित-पहिन धूर्धरु अग जग की चिति ॥

२१

स्वप्न सँजोती, सुरुचि रूप की, सत्य सजाती-रूप साधना,
मुक्त न मन को रहने देती, रूप रञ्जना, रूप वासना ।
मोह रूप का मर्म भेदता, चैन न पाती प्राण मोदिनी,
अनिश कोधती है विजली सी शिरा शिरा में रूप मोहिनी ॥

२२

दृष्टि मुपित निद्रा का मृग मद, रसिक नयन मधु के मोहाकुर,
इन्द्रनील मादन यौवन का, मन की मस्ती के मदिराक्षर ।
रूप चषक में तीव्र मदीला, तरुणी के तन का नव रस धन,
मिष लावण्य, अतृप्त अतनु सी, चिलक रही, लुक ललक वृषित छन ॥

२३

लगन उपा किरणों के कर से, छूकर रस का सिक्त समीरण,
नव लावण्य कान्ति कमला का जिसमें मुक्त मुकुल अवगुणधन ।
वयः सन्धि की दीप्ति सरसि में राज हम सा तिरता यौवन,
जिस पर चढ़ शोभा मरम्बती करती भव मन वीणा वादन ॥

२४

यह हिरण्य गर्भा, पूर्णाक्षय, धरा, उर्वरा सी समस्त धृत,
इस तटस्थ में प्रतिजन पाने, निज रोपित, गोपित, कर्मप्लित ।
पाप, पुण्य, शुचि, अशुचि न इसमें, इसके मुकुर स्वयं के बिम्बित,
यह महान् चुप कर महलेनी-हित-अहेतु कर, खल आक्षेपित ॥

२५

विविध बिम्ब से भाव झलकते. हाव मीन शैवाल रुचिर से,
मित वक रेखा, कल प्रवाह सी विकसित हिला भँवर निकर से ।
शिरा-शिरा माधुर्य सरित् सी, मह प्रगल्भता के हिलकोरे,
चमक रहे औदार्य धैर्य के शुक्ति, शङ्ख छवि जल में कोरे ॥

२६

ललित, चकित विचिछन्ति कुतूहल किलकिञ्चित्, विव्वोक कुटुमित
हसित, विलास, मुग्धता विभ्रम, लीला, तपन, विह्वल, मोटाघित ।
मद विक्षेप केलि, तरुणी के, अलङ्कार भी चिर आयुध भी,
धन्य कभी होते अन्त्य बन, कभी व्यथित, क्षण होते बुध भी ।

२७

श्रद्धा प्रत्यय, और समर्पण-गठित स्व के स्वरूप चेतन से,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मय विभु से अवगत भव समत्व रस घन से ।
निजोपयोगिता, निःशस्त्रत्व के, सत्य-श्रेय, शिव के प्रति निश्चित,
निज अविनाशी को नश्वर को-पृथक् लोक हित में रखती रत ।

२८

जृम्भा, स्वेद स्तम्भ, स्वर-क्षत, अश्रु पुलक बेवर्ग्य प्रलय नव,
उत्सुकता, स्वप्न स्मृति, धृति, मति, ह्री विबोध श्रम, सञ्चारी सब,
हासोत्साह, रौद्र, विस्मय, मय दुःख, शम घन, श्रवणादिक नवधा,
चित्तोन्मादोद्वेग दशादिक-जिसकी अनुग सुरत गति विविधा-

२९

समदन-मधु-मोदन-शाद्वल रति, मरकत ऋतु निसर्ग उद्दीपन,
नीलम निशि सङ्केत निकुञ्जित, श्यामाश्रय श्यामा आलम्बन ।
प्रेम हरित फल, जलदोषमसुर, जिसका निलय-नील नभ सा मन,
रस शृंगार, जलधि कुरल द्युत, तनु के नलिन नयन का अञ्जन ।

३०

दान, धर्म, रण, दयोत्साहिका, वीराङ्गना निडर दृढ रमणी
माता, बहिन प्रेयसी, शिष्या मित्र सुता गुरु वधू सुगृहिणी ।
मर्यादित संयत, सुशील, शुचि, सदातिथ्य-सेवा प्रिय तरुणी
है नायिका पूर्ण तम नारी-आप्त, दीप्त सबला, भव तरुणी ॥

३१

छवि, यौवन, मन, भार श्रमित यह, कुसुम कोपलो पर पग धरती
स्वप्न मरालों के मानस पर चलती जब मुक्ता बखेरती ।
स्वर्ग वरस जाते धरती पर, हो जाता कण-कण ज्योतिर्मुख
सबके दृग के मेघ मलय पर इन्द्र धनुष से जगते नख शिख ॥

३२

अति मानव, अति मानस, इसमें, है अति मुक्त, अतीन्द्रिय साश्रय
उनमें इसकी सह सत्ता है-प्रति सुन्दर-शुचिका सारोदय ।
निश्चेतना तिमिर से जग के-डूबे जीवन को उवारती
चेतन का जड़ फोड़, सेतु बन, ज्योतिर्मय के तट उतारती ॥

३३

अहिकुल कौतुक-मलय कुसुम सा मणि सा सुन्दर, शुभ शिर शोभित
नील कमल वन मे श्री, तम मे ऊपोदय सी माँग है लसित ।
कुसुमार्चित नागिन सी कवरी-श्यामाप्सरा अलक का नर्तन
मुरभित, कृष्ण, मृदुल, शीतल है दीर्घ स्निग्ध केश कुञ्चित घन ॥

३४

शून्य भेद कुरण्डलिनी प्रकटित नव रस अण्ड कला कर्मा का
जूड़ा भुवन बीन का तूम्बा, श्याम तेज मण्डल श्यामा का ।
सहित बाल रवि-विन्दु नवोदय, शशि शेखर-शेखर शशि अर्चित
स्वर्ग मुकुर सा-हेम पट्ट सा भाल अष्टमी-शशि सा है सित ॥

३५

मदन शरावलि कृश कुञ्चित भ्रू, है नर्तित छवि वन की मधुपी
वधू ध्राण है भुवन मोहिनी, शुक चंचुल तीखी, तिल पुहुपी ।
उठे भरे-किरणों में विहरे, नव अनुराग, राग रस निखरे
हेम कमल, श्री सर के, श्री के-केलि कुंकुमा, गण्ड मधुर रे ॥

३६

मुक्ता से दाडिम से-रश्मिल, स्वच्छ-मुलघु, शोभा के कोरक
पद्म पराग, कुन्द सौरभमय, रद शृंगार, सुधा के-पूरक ।
अञ्चल दोला-रसना रमती-जिनमे शरदाम्बुद चपला सी
कैरव कुल में उषःकला सी, दन्त पयोदधि मे कमला सी ॥

३७

विरल स्फीत, शु तिल, हिम शीतल, अमृत चपक, दुर्लभ बिम्बाधर
मचल रहा जिनमे चञ्चल हो, निज अतृप्ति, तनु छवि का सागर ।
भूँगा की झिलमिल रेखा सी, भाँक रही मधुर स्मित लुक छिप
रीझ रहा जिसकी लक्ष्मी पर, शरद प्रभात किरण का आतप ॥

३८

मुरा, अमृत, विषमय, उत्सवमय, नव वय के पराग से ऊर्मिल
अरुण, असित, सित, तृप्त, तृषामय, स्वप्न-नींद, जाग्रति से झिलमिल ।
जीवन, हर्ष, चेतना मुख के गीत, रूप, रस, रति के नन्दन
मृग चकोर, खंजन, सरमिज से पाटल से, शशि से है लोचन ॥

३९

नवल राग मयि कोर कलश मे पुतली के संकेत न सुलभे
वरुणी घन खण्डों सी जिसमें मोह कुहक मुक्ताहल उलभे ।
पलकों का मीलन-उन्मीलन, अनबूझे रहस्य की रचना
रेखाङ्ग, निल, मदिर दृष्टि की शुभ शोभा की कही न तुलना ॥

४०

रस विभोर, दृग कोर लांघते, मृग बाधे ताटङ्क छोर से
मुक्ता मिष मुक्त्यङ्कित करने, पलक पीजरा के चकोर से ।
मीनागेही-मीन डगते, खञ्जन नर्तन के अनुरागी
कार्तिक चन्द्र चौथ से है श्रुत रक्तोत्पल वन कान्ति विरागी ॥

४१

वापी, कम्बु, कपोत, शङ्ख 'सी, चिबुक लसित, जिसपर तिल पट्पद,
पद्मानन, मृणाल ग्रीवा यह, घोर गहन अद्भुत रस की हृद ।
"उपमा रहित, आप अपने सम, प्रति युग के प्रति कवि से कीर्तित
रस विभूति मय, निखिल रूप ले कवि की श्रद्धा मे चिर जीवित ॥

४२

पद्म मञ्जरी, अमृत फेन सी, द्वितीया की मृगाङ्क लेखा सी
जोभाद्रव सी उडुधारा सी, चपक तटोर्मिल, मद रेखा सी ।
उदित उपा सी, मदनाकुर सी, सान्ध्य सुरसरी की लहरी सी
प्रात किरण सी मुख की विकचन, है सब छवियों से निखरी सी ॥

४३

ललित कफोणि, मुडौल, सुगुम्फित, लसित कलाची इन्द्र रश्मिकृत;
शुभ चिह्नित, मंगल रेखान्वित, लिखे कमल से करतल शोभित ।
विद्रुम वृन्त सदृश मृदुलांगुलि, इन्दु कुन्द से नख हैं भास्वर
प्रिय के कण्ठाभरण अरुण है-सम-सुकुमार वरद सुन्दर कर ॥

४४

विस्तृत, पारङ्गु, सुदृढ, उन्नत, घन, अविषम, कठिन, वस्तुलाकृत प्रिय,
मुकुलाकृत युयुत्सु लोक स्थित मदन वसन्त शिविर तम्बू द्वय ।
भुवन पोषिणी, दिव्य सुधाके, पुण्य कलश, मधुरस के निर्भर
बाला के उरोज, ओज मय, वय मनोज के स्फुटित नवाकुर ॥

४५

पर्वोत्सव - पुगाण - पावन-शुभ महातीर्थ, चेतन रत्नाकर
परम कलाकृति, विधि शिल्पी की, सर्वोदयकारी तुच्छोदर ।
रोम राजि लघु, मित केशर भी नाभि दक्षिणावर्त्त, सोमिमद
नारी शोभा के मदुजल के सरस कमल द्युति के पूरित हृद ॥

४६

शोभित कृश, कोमल, केहरि कटि, मदन राजधानी, लीलापट
पृथुल नितम्ब, कदम्ब, कल्प सी, रंग पीठ, पद्म पुष्कर तट ।
शीत स्निग्ध, कान्त, जघन स्थल, मनु सुरतोत्सव, कदल यूप नव
गजकर ऊरु, जानु अति गुम्फित, चारु पिरङ्गरी, निरूपम अवयव ॥

४७

द्युमणि कात तल, अरुण नखत नख, गुम गुल्फ, अङ्गुली, लघु सस्थित
अग्र विरल, सच्चिह्नित, उन्नत, सम, उपचित, सित यावक रजित ।
जपास्निग्ध, किसलय मृदु, रश्मिल इन्दु सरस मन्दार सौरभित
हंस यास गज गति मद शिञ्जित चरण द्वन्द अरविन्द ज्योति नित ॥

४८

प्रकति मोदिका ऋतु विनोदिका, खग मृग, द्रुम की मधुर चाहिका
गृह जन रुचि, अनुरोध पालिका, निज चरित्र, धृति, आत्म रक्षिका ।
गुरु जन के प्रति-भीति, भक्ति-मयि, प्रभु की प्रीति, प्रतीति साधिका
लास्य-हास्य-रस भाव रता यह, है अनन्य रति वती राधिका

४९

आनख शिख, अभिराम रसवती, नव प्रणयातिथि, रति मन्दिर की
प्रथम मिलन की सिहर पुलक यह, नव दर्शन के निकट प्रहर की ।
मुकुर समीप सलज सकुचाती, पुनि प्रिय रुचि कल्पना भीतिरत
पार्श्वगत प्रिय ने निसार हो-वेश प्रशस्ति गान की कविवत् ॥

५०

वय शृङ्गार, अंग की प्रथम वसन्त बहार, रूप की बेला
भूषण गमक, मार के मोदन का भण्डार, प्रणय का मेला ।
पटोपचार, धार का अधर अवन्ध कगार, भँवर का भागी
पीता सुतनु, प्यार का उच्छल पारावार, हृदय का रागी ॥

५१

नील साटिका, पीत ओढिनी, अरुण कञ्चुकी, असित उपानह
प्रकटित करते प्रति प्रहरो का, सारी रस ऋतुओ का आग्रह ।
मादक मधुर लोम रन्ध्रो से पी घनसार कणो का परिमल
लहरा लहरा कर मधुराञ्जल, छलका रहा सुरभि मलयानिल ॥

५२

खिसके पट की मसृण ठसक से वेणी में बेला इतराती
हरसिंहार, भड़े भरना से कुन्द घात चम्पा दुलराती ।
भ्रमर भीत लुक रही जपा यह, कमल भ्रमित निज नये मोल मे
सिहर रही माधवी केतकी, वकुल स्पशित मदन दोल मे ॥

५३

स्वाति कणों की बदली काया, परिचित भी पहिचान न पाते
होठों पर ही खड़े मानसर प्यासे के दुख पर इतराते
मुक्ता का शृंगार, अजाने पारावार तृषा का रुलता
छिप मम चाहों के पङ्खो मे चातक का संसार कलपता

५४

तप्त हेम तन पर रत्नावलि जटित हेम भूषण, हेमाम्बर ।
हेम कुसुम स्रग उर कवरी में, अङ्ग अङ्ग मनु हेमेन्दीवर ॥
चाहक दृष्टि तरी सी तिरती, लहर लहर मीनों की हेला ।
रम वर्पा की सान्ध्य सुनहली, मुर धनुषी तन मागर बेला ॥

५५

नव वसन्त के नव पराग कृत, नई सर्जना की नव धरती ।
अलकों की सुन्दरी स्वप्नमयि, नभ के नव स्वर्गों से भरती ॥
तैराती अनुराग अरुण घट, आती उषा चुपाती तारा ।
मुखरित करती नव स्वर में तव रस सङ्गीत सुधा की धारा ॥

५६

लोध्र पराग, तिलक मृग मद का, माँग हेम रज, शिर की बेंदी ।
पद यावक, नयनाञ्जन, नख दृव, भ्रू गoroचन, कर की मेंहदी ।
उर कुंकुम, बहु पुष्पसार गण, तन पर के सब अङ्गराग रस ।
अधरो की ताम्बूल रंजना, क्यों न करेगी आज भुवन वश ॥

५७

कवरी स्तवक, रत्न मय टीका, चूड़ामणि—मुक्ता की झालर ।
भुज केयूर, करो के कङ्कण, कण्ठ हार, कर्ण के भूमर ॥
कटि किङ्किणी, चरण के नूपुर, मुद्रांगुलि, नासा नथ, बेसर ।
नव यौवन शृङ्गार, मधुर यह मचल रहा नव छवि का सागर ॥

५८

कला शिल्पता, निखिल नव्यता, मौलिकता, उत्तम उर्वरता
समुची सुरभि, समस्त मधुरता, तन्मात्रा, सब सार, सुधरता ॥
विधि पटुता, निसर्ग की रसता, भावो की भवकी चेतनता ।
तव रचना मे देवि ! चुक गई, मदन, फल्गु, सुर, नर की निजता ॥

५९

संस्मृति मे नित नवोन्मेष मय, पद पद पर वह परम पुण्य प्रद ।
होता नारी मन नन्दन के, प्रेम कल्प तरु मे नित दोहद ॥
जीवन को चैतन्य, कला को लक्ष्य, भाव को स्वर, रस को गति ।
तुम देती आचरण धर्म को, जग को सुख, प्राणी को परिणति ॥

६०

अशकुन, अशुचि, अभद्र, असंयत, कु-स्वभाव, अघ, अस्वाभाविक—
अकुशल, घृणा, कुदृष्टि, कुपथ गति, स्वार्थ, व्यसन, अनुचित, अमानुषिक-
निद्रालस, लिप्सा, षाड्विपु, तम, अहित, अभाव, अरुचि, दुश्चिन्तन-
द्वेष, ईर्ष्या, कलह, कुयश, भय, दोष, कुगति, कटुता, न दुर्वचन—

६१

भ्रम, सन्देह, तर्क, शङ्का, लघु, द्वैत, अनुपकृति, त्वरा, उपेक्षा—
चञ्चलता, अधैर्य, आकुलता, क्षौद्र, अनिष्ठा, क्लेश, अशिक्षा—
असहयोग, अपकार, अशोभन, पश्चात्ताप, अभक्ति, जल्पना—
इस विचित्र तनु में न अल्प भी, अकृपा, असद्, अनर्थ, भर्त्सना ॥

६२

इमका कुशल तटस्थ तू निज भावुकता में भूल पावता ।
सुन्दर की मुकलना में लय लेखना सुनना कुछ न चाहता ॥
निज स्वरूप सुधि में रत इसकी प्रति पल पूजा का क्रम चलता ।
मागर यह अनुसार स्वगुण के मंत्रको अमृत-मुरा-विष मिलता ॥

६३

रीति, कला, रस, भाव, रतिवती, पूर्ण रता, पूर्वानुरागिणी ।
प्लुत कटाक्ष, मधान श्रमस्वन, सहज स्वप्रिय उर विजय रङ्गिणी ॥
मुतनु विश्रब्ध नवोद्धा, मुग्धा, अप्रगल्भा, यौवनाकुरा ।
प्रेम गर्विना, मुदिता, स्वकुला, वनी अनूद्धा है स्वयम्बरा ॥

६४

नयन चपलता, गरुड पीनता, जघन पीनता, कुच कठोरता
मुकटि गहनता में मदनालस गति में सह रति की विभोरता ॥
अङ्ग अङ्ग से, रोम रोम से छलकित शत वसन्त शोभाएँव ।
वर्ष रात्रियो के अग्नि गण की विभा पूत इसका दर्शोत्सव ॥

६५

विरह कथन-विनय स्तुति, निद्रा, मिलन, बोध, पटु, दूति उत्तमा—
मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ, परिहास परा, सब सखी सत्तमा ।
हित कारिणी, सुव्यग विदग्धा, वहिरंगिणी, व अन्तरंगिणी,
सहज स्वयदूती प्रिया कभी प्रिय रुचि-रति-मुख की रसस्विनी ॥

६६

विप्रलम्भ, सयोग उभयत प्रेम वृत्ति में क्रमशः परिणत—
जो व्यवहार अवस्था स्थिति में, नव सज्ञा, नव लक्षण अन्वित—
भाव प्रकाशन के स्वरूप में रूप भिन्न, रस भिन्न लखाते ।
जिनको रसिक सभेद सावयव, ललित कलाओं में दरसाते ॥

६७

लख पति शिर अरुणाङ्ग-भ्रमित तनु, सान्द्र भाव गुम्फित-लीला वद्ध ।
थकित, कुपित, विस्मित हो प्रिय का, पोछा भाल, श्रमित हो साध्वस ॥
नयी खण्डिता-नव कौतुक से चुटकी ले ईषत् मुस्कायी ।
करुण हुई कह—“दोष न तब कुछ-मैं न तुम्हारे हूँ मन भायी” ॥

६८

प्रेम वती, अति मान वती हो किञ्चित् प्रणय कलह कर आयी ।
पछताती अब अपराधिन सी, स्वमति बोसती अति अकुलायी ॥
यहाँ अनस्थिर, पर चलने में उस पथ शिक्षित पद सकुचाते ।
कलहान्तरिता के पीड़ित दग रह रह मुक्ताहल बरसाते ॥

६९

गयी प्रीति मयि प्रिय मन्दिर में भरे नयन में विपुल याचना ।
शून्य कक्ष, रिक्तामन लग्य कर, सहमा सह न सकी स्ववेदना ॥
रुकी पराजित सी, पीड़ित भी, प्रिय अप्राप्ति से अति दण्डित मन ।
लगे विप्रलब्धा में चुभने काँटों से गृह के सुख-साधन ॥

७०

मजल, निमीलित, खोज, श्रमिन् दृग, शिथिल अंग गति अचपल, विह्वल ।
भूषण अल्प, वेश परिमित मित, निष्प्रभ राग, असाधिन कुन्तल ॥
कहण दृष्टि, मुख मलिन, मौन, कृश, चिन्तित, निभृता, विरहवती चिर ।
प्रोषित पतिका, पति परायणा जीती स्मृति में छवि लिख गाकर ॥

७१

पथ निहारती, उडुगण गिनती सजग द्वार पर दीप सजाती—
शुक को मन की पीर सुनाती, पलकों पर सपने दुलराती ॥
प्रेषित करती वृत्त पवन में वातायन पर अश्रु गिराती—
तनु प्रवत्स्य-पतिका-सुधि तन्मय-निशा-जाग-दिन विगम विताती ॥

७२

पत्र आगमन तिथि का पाकर, उत्सुक मन अतिशय उत्साहित ।
हुआ प्रतीक्षा पल अति दुर्वह कर शृङ्गार खड़ी वह उग्रत ॥
बीते प्रहर न आये प्रियतम—सूखी धार अधर के रस की ।
नवोत्कण्ठता की उत्कण्ठित भग्नाशा बूँधट में सिसकी ॥

७३

प्रिय आगमन प्रिया पुलकित मन, लोम लोम में खिले पद्मवन ।
हुआ भाल में नव अरुणोदय, शत शरदिन्दु मुधा पूरित मन ॥
रूप सिन्धु उच्छल, गति सिन्धुर मद के शीधु लगा बरसाने ।
आगतपतिका का सुख सौरभ लगा बसन्त विभूति जगाने ॥

७४

नव शृङ्गार, नवीन प्यार युत, तनु सुकुमार सभार हेरती ।
मूँक यातना, मूर्त्त विनय सी, सलज दृष्टि, तन, मन, सहेजती ॥
राका मे राका सी विलसित, वदन इन्दु पर रच घन घूँघट ।
सुख, विहार, अभिसार हेतु यह अभिसारिका चली प्रिय के तट ॥

७५

स्वागत और मिलन उत्सव के कर पदार्थ एकत्र निराले ।
रङ्गो से फूलो से बहु विधि रच पच के गृह द्वार सम्हाले ॥
आनख शिख सखियो के द्वारा रागाचित, सज्जित, शोभित हो ।
वासक सज्जा खड़ी सामुनय स्वपति प्रणय, लालसा लिहित हो ॥

७६

स्वर्गिक छवि, लावण्य, नव्य वय, प्रकृति, प्रीति, भाव, कृति, रस से ।
सद्गुण राशि, कुलीन वपु-श्री, मङ्गल वेश, गिरामृत, यश से ॥
नट, गमन, एकान्त समर्पण, केलि, कला पटुता, परमा से ।
मुग्ध स्ववशपतिका ने प्रिय को सहज किया अपनी महिमा से ॥

७७

नारी मधुर वारुणी तम की, रज की रम्भा, रमा सत्व की ।
निखिल सर्जना की सरस्वती, उमा नाश के सञ्छिद्यत्व की ॥
ज्योति शिखा भव स्वात्म दीप की प्रकट मूर्ति ईश्वरीय तत्व की ।
मानव के ससार सार मे, देवि ! सृष्टि हो तुम महत्व की ॥

७८

भीनांशुक, शशि मणि, मुक्ताञ्चित, कुसुमापित, चन्दन लेपित उर ।
सरसि, हिमोत्स, चन्द्रिका, जपवन, सरिता में नौकारोहण कर ॥
गृह उशीर पद, मलयाचित महि; गन्ध सिक्त शीतल तल्पोत्तम ।
गान वाद्य युत प्रिय संग करती बहु विहार लख नव ग्रीष्मागम ॥

७९

खग, मयूर, उत्सव मय, निर्भर कल रत उमड़ रहे सरिता नद ।
मृदु फुहार, घनघोर मुखर घन, नर्तित विद्युत के विभोर पद ॥
नव रसाल तरु के दोला पर, जुही, मालती वकुल, गन्ध बश ।
बर्षा की सुहास बेला ने सिरजा दम्पति मे मादक रस ॥

८०

काशांशुका, कमल वदना, परिणत धानाङ्गी, हंम तूपुरा ।
शरद नव वधू विमुध भुवन को भेट रही निज रूप इन्दिरा ॥
मचली लख नव परिणीता की निज सरोज शोभा की कुरली ।
जिम पर मुग्ध विकल आ बैठी प्रिय मन की मृगण अलि अवली ॥

८१

तुहिन वसन, नीहार हार मय, मधुस्पन्दि—हेमन्त आगमन ।
उदित हुए सब में नव अकुर, रञ्जित हुए निखिल यौवन, मन ॥
पुलक छलक हो उठे रस विवश, पति प्रियानुनय कर, प्रमोद सन ।
नव शृङ्गार, प्रणय चिन्हो से विलस उठा तनु का सत्कृत तन ॥

८२

आया शिशिर पवन श-ासो से बरमाता मस्पन्द तुहिन करण ।
सिहर उठा दम्पति का नव मन, गीत भीत शशि किरण विद्ध व्रण ॥
द्वैत मिटा शय्यासन, रुचि का, एक प्राण होगये एक तन ।
बन्द कक्ष के हेम दीप मे लक्षित छायाओ के नर्त्तन ॥

८३

सजी निसर्ग वधू, कूकी पिक, नव परिधान पहिन द्रुम पुलके ।
भरे कुसुम कलशों मे मधु रस, मलयानिल मलयासव छलके ॥
नव बसन्त के मधुरागम से, मस्त हुआ संसृति का करण करण ।
चिलक उठा तनु के अन्तर मे नये राग का नया समर्पण ॥

८४

प्रेम साधना कर नारी की पुण्य श्लोक सुकृत हौ नायक ।
व्यक्त उसे कर निज गीतो मे अमर हुए धरती के गायक ॥
विषयी, मोही, लुक छिप चलते, प्रेमी ढोल बजाते गाते ।
पहले नष्ट तमोमय होते, अपर प्रबुद्ध, बुद्ध बन जाते ॥

८५

चैत्र सुखद, वंशाख मधुर है, ज्येष्ठ ललित, आसाढ समुज्ज्वल ।
श्रावण सरस, भाद्रपद सुन्दर, आश्विन शुभ, कार्तिक पुण्याल ॥
मार्गशीर्ष शुचि, पौष साभ्युदय, माघ मदिर, फाल्गुन विनोद मय ।
दिन, सप्ताह, द्विपक्ष, याम, क्षण, नित्योत्सव मय इसका आलय ॥

८६

स्वर न थमे, सङ्गीत न बीते, रहे लीन निज मस्ती मे मन ।
इसीलिये तुम निज मे पर मे करनी स्वत विग्रह मयोजन ॥
मिलन तुम्हारा अति सुखदायी है वियोग उगमे भी सुन्दर ।
निप्रणम्भ उर परप, दृष्टि मङ्गोच, वद्धता देता क्षत वार ।

८७

गर्भ प्रवेश, जन्म, रज दर्शन, परिणय, पति गृह गमन, सम्मिलन
शुभ नक्षत्र, लग्न, ग्रह, बेला, घड़ी, वर्ष, माह, वासर, क्षण—
मे सम्पन्न हूँ, दैवजो के मुहूर्त से, कुछ नैमर्गिक—
मधुर नायिका प्रति पल स-शकुन सिद्ध, सफल, दुर्भाग्य विनाशक ॥

८८

मानव जब चाहता पहुँचना प्रभु तुम तक तब उसकी यह 'मै' ।
अति ऊधम, उत्पान, मचाती, रोडे अटकाती प्रति पथ मे ॥
तभी कृपा करुणा कर नारी 'ग्रह' रहित निज 'तुम' छिटकाती ।
जिससे मेरी भँवर पड़ी क्षत नाव तुम्हारे तट आ जाती ॥

८९

गरम साधना मज्जित अपनी मुक्त चेतना की वीथी पर ।
तनु की जब गौरव्य मुधा का मणि प्रदीप देता पन्थी घर ॥
गहसा जानी है प्रकाश से तथ्य दिशाएँ भर छोरो तक ।
भीत भाग जाते न दीखते हिमक जन्तु, दम्पु दूरी तक ॥

९०

अविषम, तम, भ्रम, विगत, सुनिश्चित, मयम मय, पक्षोभय के क्रम ।
सुख से वह घरदिन्दु मुधा सी, दुख मे प्रात अरुण आनप सम ॥
जितनी जो अपेक्षिता रह कर तदधिक जब उपेक्षिता बनती ।
प्रतिकूलानुकूल दोनों की निकषा पर वह खरी उतरती ॥

९१

पूजा के गीतो मे पूरित, आराधना भावना मे रत—
बढ़ता रहता जिसका जीवन सुर प्रसाद सा जग मे सतत ।
देख दीप सी प्राणाजिर मे मुक्ता तोरण सी हृग मे द्युत ।
इष्ट देवता की प्रसन्नता सी नारी भू पर है दर्शित ॥

उपेक्षिता

एकादश सर्ग

१

प्रोषित प्रिया सी निकट प्रिय के सम्मुखस्थ वियोगिनी ।
अधिकार विहृता स्वामिनी - गेहस्थितापि प्रवासिनी ॥
निज शयन - गृह की विप्रलब्धा, प्रणय - रति निर्वासिता ।
पति युक्त दिधवा सदृश दर्शित - जयति वधू उपेक्षिता ॥

२

रस साधिका श्रुति के सवेरे के अधूरे गान सी ।
हिम पान मर्दित मुकुल मुख के मुखर शीत विहान सी ॥
अल्प स्फुरित नव विरहिता के स्वप्न की मुस्कान सी ।
तनु ! दीखती तुम भाव रस से रहित जन के ज्ञान सी ॥

३

परिवार सम्मत, निज पसन्द समृद्ध गेह, स्वजाति की ।
वय, रूप, गुण, कुल, शील, वपु, में आग अपनी भाँति की ॥
सविपुल यौतुक, सविधि परिणीता, सती शुभ लक्षणा ।
अनुकूल, प्रेम परायणे, तुम व्यथित लख पति की घृणा ॥

४

मणिमय ऋभव के कण्ठ की उद्धत करों से खरिडता ।
भू पर गिरी आलोक कुसुमित कोकनद की मंहिता ॥
अध्यात्म दीप स्नेह में चेतन गलाका हेम की ।
बुझती हृदय वर्त्ती उठाती लौ जगाने प्रेम की ॥

५

लौटा लिये अपने निमन्त्रण मलय मन्द समीर ने ।
खोये सभी परिचय प्रणय के मिलन कुञ्ज कुटीर ने ॥
जागरण दिन ने चुराया, नीद हरली रात ने ।
सुख-साध का मधुवन गला कर रख दिया हिम पात ने ॥

६

अमरावती का रूप, अलका का सुनहला राग ले ।
रस राजि मिहल द्वीप की, व्रज का विपुल अनुराग ले ॥
बलिदान पुण्य अरावली का, पञ्चनद का हास ले ।
अश्रुल तुम्हारे नयन क्यों ? काश्मीर का उल्लाम ले ॥

७

गृह कल्पतरु, निज स्वर्ग तुम, आराध्य सुर ससार की ।
युग पुरुष बलि पर, मुदित वामन भूर्ति तुम उपकार की ॥
दर्शन तुम्हारे पुण्यमय कर धन्य योग व याग हैं ।
जिस पर पड़े पग प्रणत उस महि पर अनन्त प्रयाग हैं ॥

८

मह दग्ध पावस के प्रथम घन की समुष्ण फुहार सी ।
स्वीकृत, प्रतिश्रुत, मूर्त्त तुम विस्मृत उपेक्षित प्यार सी ॥
खग्राम में लख इन्दु विकला कु ग्रह भीता पूर्णिमा ।
प्रमदोत्तमा प्रेमोद्यमा विरहश्रमा क्या हो उमा ?

९

तुम स्वर्ण, सौरभ मयि ! अमृत सौन्दर्य की रस रञ्जना ।
तव अति समर्पण मय हृदय की प्रेम ही बस वासना ॥
है जी उठे अवशेष जग के सज नये उन्मेष में ।
अद्भुत विभूति विराजती चिर, प्रति नये तव वेश मे ॥

१०

मानव शिराग्रों मे, मनो मे, अमृत रस उत्पादिका ।
तुम निखिल जीव समूह की जीवन विभा संवाहिका ॥
मन्तुष्ट है हम शान्त है, हों हर्ष मे या शोक में ।
आलोक ही आलोक है नागी ! तुम्हारे लोक में ॥

११

रोमाञ्च गदगद गिरा, नर्त्तन, गीत, स्वेद, व्यथा, हँसी ।
मूर्च्छा, समाधि, विरक्ति, पुनि आमक्ति, समुधि, विदेह सी ॥
तम्मय, प्रलाप, प्रमाद मयि, रस रीति रति की साधिका ।
प्रतिकार विरता अवतरित क्या कुञ्ज वन की राधिका ? ॥

१२

पाथेय पीड़ा का सम्हाले निज नवीन दुक्कल मे ।
जीवन मरण दो कूल उस प्रतिकूल नद उपकूल मे ॥
खोई हुई निज भूल में सनती हुई रुचि धूल मे ।
मुलभा रही हो फूल निज जो फँसा भाग्य त्रिशूल मे ॥

१३

निष्ठावती स्थित प्रज्ञ, निस्पृह, पद्म-पत्रमिवाम्भसा ।
कत्तव्य, रत, संयत, सुदृढ, क्षेमङ्करी, शुचि, सम दशा ॥
अकुतोभया, सम दक्षिणा, उपराजिता, सर्वोदयी ।
मरु परुष के अपराध से तम त्रस्त हो ज्योतिर्मयी । ॥

२६

किसके कमण्डल जात, किसकी पदी, किस लोकागता ।
 किसके मृतप से अवतरित, किस शम्भु शिर पर राजिता ।
 किस नगाधिप पर प्रकट किम भूमि पर निर्यान्दता ।
 किम सिन्धु की अभिसारिका तुम स्वधुनी सी येषिता ? ॥

२७

जो गिर गया निज ध्येय, धर्म, विचार शिष्टाचार से ।
 पुरुषत्व, न्याय, विवेक, प्रण, सौजन्य, पर आभार से ॥
 उस निज अबोध-निरीह को क्यों परखती व्यवहार से ?
 शोधो उसे करुणा अहिंसा क्षमा, शान्त्युपचार से ॥

२८

उन्निद्र तव दृग कोंपलों पर ऊँघती निद्रा परी ।
 प्रिय रहित शयनागार की निस्पन्द आज विभावरी ॥
 तुम स्वप्न मुक्ता के अवर में थपकियाँ देती जिसे ।
 चिर जागता सा वह तुम्हारी दीप की लों पर हँसे ॥

२९

गाती हुई करुणार्त पलके आर्द्र स्वर में लोरियाँ ।
 उड़ते हुए युग खञ्जनो की थाम लेती डोरियाँ ॥
 नव आँसुओं के व्याज खुल जाती हृदय की थैलियाँ ।
 कब तक छिपेगी विश्व से तव मर्म घातिनि चोरियाँ ॥

३०

बरसा रही है चाँदिनी चाँदी चतुर्दिक रूप की ।
 यह धूप बरसाती कनक नित भुवन वन्द्य स्वरूप की ॥
 नीहार में भड़ भड़ पड़े मुक्ता अनश्वर प्यार के ।
 पर पा सकोगे कण न मानव ! तुम इसे दुत्कार के ॥

३१

है फँस गये खञ्जन, रुके है हंस, मृग चूके विधे ।
 आकुल चकोर, कपोत बन्दी वागुरा मे तिमि बँधे ॥
 बैठा तनिक उठ कर हृदय जिसका पयोधि हिलोर सा ।
 जो रो पड़ा बस एक ही क्षण नाच करके मोर सा ॥

३२

निज क्रूरता के पत्थरों से पाट कर अवरोधके
अङ्गार के तोरण, गरल घट बाँध गुण दुर्वोध के
पथ गोक्षुरो से भर किया है बन्द द्वार विकास का ।
अनुरोध घोर विरोध क्यों इस पार दर्शि प्रकाश का ? ॥

३३

प्रति श्वास से गीले वसन सी लिपट रोती वेदना ।
प्रति अस्थि में कण्टक सदृश चुभ गुभ रही अवहेलना ॥
परिमाण क्या इस मूक मन का मोतियों के भार में ।
पाती न वली थाह मम तब आँसुओं की धार में ॥

३४

स्वेच्छा, निसर्ग, व भाव वश, तब हेतु तनु ने जो किया ।
उससे वलाद्भय से कराना चाहते अब वह किया ! ॥
अन्याय, अनुचित, फिर असम्भव, पात्रता भी है कही ? ।
होता स्वतः इसको कराया या किया जाता नहीं ॥

३५

रहती भुकी की भुकी प्रिय पद रेणु पर पद टेकने ।
द्रुत वच निलता वह, तड़फती यह उन्हे पल देखने ॥
उच्छिष्ट खाकर तुष्ट जो अति दीनता में भी धनी ।
गेह स्थितापि प्रतीत होती नव तरुण सन्यासिनी ।

३६

तत्सुख सुखित्व, दुखित्व, दुख जो सहज नारी स्नेह में ।
आत्मिक विभूति विशेष की सभभव न सबकी देह में ॥
चिर गेय महदाचरण - आदरणीय - अनुकरणीय है—
रे ! अति अलौकिक कृत्य क्या समुदाय का करणीय है ? ॥

३७

प्रिय सदन आते मिल न पाती दूर मर्म विरह सहें ।
तनु रमण - गमना सी प्रतिक्षण विवश पछताती रहें ॥
खाती हुई कुहु भाग्य शशि को लख पड़ी तम पक्ष में ।
पीछे किनारा दूर अति आगे न तट है लक्ष में ॥

३८

तनु यह विलक्षण आचरण की करुण रस की दामिनी ।
चिर वेदना वंशी तरल स्वर रागिनी की स्वधुनी ॥
मधुभाव सागर मग्न स्वप्निल कल्पनाभ्र विहारिणी ।
है अग्ररु सुरभित श्वास से उर व्यथानल सञ्चारिणी ॥

३९

यह मानवी अबला यही है षड् ममता पाश में ।
क्यों जान कर जड़ हो रही जकड़ी हुई विश्वास में ? ॥
आदर्श की, उत्कर्ष की, संघर्ष की अद्भुत नटी ।
प्रतिशोध प्रेरित कब बधू उत्सर्ग बीथी से हटी ? ॥

४०

‘कभी न घटती, कभी न पड़ती तनु की व्यथा पुरानी है ।
बढता ही जाता धरती पर दुखते दृग का पानी है ॥
जितना दूध पिलाती जाती उतनी बनी विरानी है ।
रही अनवगत कथा न इसकी घर घर विदित कहानी है ॥

४१

जब पाटल पर नभ से कोई राजित किये हिमानी था ।
नारी के पग पग पर उस क्षण जानु जानु भर पानी था ॥
नलिनी घूँघट खोल नयन के बन्दी मधुप उड़ातो है ।
ये अपने दोनो मधुपो को मधु में बोर फँसाती है ॥

४२

लो चलने को निशि सम्हालती निज अञ्चल तारों वाला ।
ओस कणों मिष रोक देती विदा उसे ऊषा बाला ॥
यह प्रभात का शीत समीरण कमल खिलाता आया है ;
सम्या के बिछुड़े प्रियतम को इसने अभी न पाया है ॥

४३

तन में शीत कम्प व्यापित है, मन में अति बेचैनी है ।
रह रह बातायन से पथ पर भाँक रही मृग नैनी है ।
बात स्पन्दित शृङ्खल रव से चोंक पड़े अब के आये ।
किसी पथिक की पहिचल भर से बढ़ मन की धड़कन जाये ॥

४४

दूख रहे थे क्षण क्षण ब्रण से शत संकल्प विकल्पों में ।
दुश्शङ्काओं के वृश्चिक-ग्रहि दंश चलाते पलकों में ॥
मोती बरसाती नयनो मे कलप गई करुणा रानी ।
ममता कोरों पर निचोड़ती निज कोरा अञ्जल धानी ॥

४५

तब भीगी सीठी बेला मे खुला द्वार धीरे धीरे ।
जिसकी पैनी स्वर नोंको ने हरे घाव मन के चीरे ॥
पिक की बोली मे जीवन का जो ममत्व उसने गाया ।
पति मन का पशु शृङ्गागे कर क्षुभित कुपित हो गुर्राया ॥

४६

जीवनधन ! 'प्रियतम' ! स्वामी ! प्रिय ! ऐसी मधुर पुकारों से ।
छम-छम रुन-भुन भङ्गारों से रस की मदिर फुहारों से ॥
प्राण चषक मे सौरभ भरती अपने तरुण तराने का ।
बदले मे हम यश करते है उसे कोस कलपाने का ॥

४७

वह दुत्कार तल्प पर लेटे, खड़ी रहे यह छाया सी ।
चरण चापती, मस्तक मलती, आर्द्र मोह की माया सी ॥
चर्पड़ पड़े प्रश्न पर-क्योंकर आये देव ! सवेरे है ! ।
कहती मन मे, मुझे न चिता मै उनकी वे मेरे है" ॥

४८

तुर्व्यसनो की नई भोक मे नये रग पति में जागे ।
धीरे धीरे शुभ दिन, गृह जन, मङ्गल आख वचा भागे ॥
शान्ति, तुष्टि की बात न अब कुछ, समय न उनके आने का ॥
पत्नी पर बस भार शेष है रोने और मनाने का ॥

४९

प्रतिदिन ताड़ित, दोषित होती, घृणित लाच्छना पाती है ।
योग क्षेम हृदय में प्रिय का, द्विगुणित प्रेम सजाती है ॥
चरण बाहु भर रो कहती वह-“अपने कुल को निस्तारो ! ।
समझो. मन समझाओ प्रिय ! यूँ सहज न अपने से हारो ॥

५०

अमृत पुरुष ! देवानां प्रिय तुम, देव तुल्य यश के भागी ।
 अमृत पुत्र ! तव अमृत सत्व मे क्यों तम की माया जागी ? ॥
 हे ! प्रकाशमय प्रियतम ! जागो मत अकीर्ति यह फैलाओ ।
 निज विभूति शाश्वत स्वरूप छवि प्रकृत स्थिति-मति मे आओ ॥

५१

हित, भविष्य, गति सोचो स्वामी ! मन में क्यों द्विविधा फैली ।
 होने दो न असित चिन्तन से पूर्व पुरुष करणी मैली ॥
 देव ! तुम्हारी शिक्षा, दीक्षा, उच्च प्रकृति निष्ठा स्पर्धा ।
 वच न सकेगी इस प्रकार तो मर्यादा नत हो मूर्धा ॥

५२

मैं अनुगत हूँ मुझे न इच्छा अपने कुछ आरामों की ।
 खलना नहीं मुझे क्षण भर भी दुख के दुर्वह यामों की ॥
 मुझे आपके सुख की चिन्ता मुझे आप में निष्ठा है ।
 आर्य पुत्र ! तुमसे मानव की मिटे न अमर प्रतिष्ठा है ! ॥

५३

क्या से क्या बनते जाते हो बदल रही उज्ज्वल मुद्रा ।
 प्रिय मेरे ! तुम ज्योतिर्मय हो जगो-उठो त्यागो निद्रा ॥
 सुख, सङ्गीत, सुधा, छवि के स्थल विष कटुता का क्यों भाया,
 दयित ! उपेक्षा मुझ हितैषिणी की कर तुमने क्या पाया ?”

५४

रस सिद्धा विराट नारी की अमृत भारती की वीणा ।
 नर के उर के कठिन अवर को द्रवित न कर पायी पीड़ा ॥
 गिरि के पत्थर भी रहते निज मादक मृदुता से गीले ॥
 क्यों न भीगते तब करुणा से मन की मिट्टी के टीले ॥

५५

निज जीवन के तूफानों से बच शत यत्नों से पायी ।
 कुपित प्रलय लहरो पर बड़ बड़ डग मग होती जो आयी ॥
 निज तट की अवलम्ब शिला से स्वर्ण तरी टकरायी है ।
 मर को वचा लिया पर नारी अपने नीर समायी है ॥

५६

उन्हें मनाने उन्हें रिझाने पाने उन्हे अधीरा है ।
 प्रियतम के मन्दिर मे क्षण क्षण नाच रही नव मीरा है ॥
 तन्त्री तन्त्री जिसकी गाती, रोती कसी विपश्ची है ।
 अपने गीले पङ्खु भाडती प्रिय के नभ में पंछी है ॥

५७

ठुमक ठुमक कर थिरक थिरक कर, अचक अचक ही आती है
 लचक लचक जाती तन्वी कटि, अलक अलक खुल जाती है
 अपलक पलक-भलक-भलकाती-मिसरी भी धुल जाती है
 विकल प्रार्थनाएँ आँखों से चिलक पुलक छलकाती है

५८

अब भी उसे स्व श्वाभ श्वाभ का शुचि आधार बनाये है ।
 पति के चिर मङ्गल पथ पर निज आत्म प्रदीप जगाये है ॥
 मन्त्र मुग्ध मणि पर अहि नतित गर्वित छली सपेरा है ।
 नारी के पवित्र वट तरु पर नर का प्रेत बसेरा है ॥

५९

वह कहता सम्बन्ध न कुछ मम, मेरे आगे से जाओ ।
 चाहे कुछ भी करो, रहो तुम, आश्रय जहाँ कही पाओ ॥
 यह कहती, सम्भव न मृत्यु से, मिट न चिता पर भी पाता ॥
 किस प्रकार कच्चे धागे सा टूट सकेगा वह नाता ॥

६०

अहङ्कार ने अन्धकार मे स्वात्मा सबल ढकेली है ।
 हुए कपाट कक्ष के मीलित, रोती वधू अकेली है ॥
 बाहर का यह तिमिर हृदय मे शशि नक्षत्र सजाये है ।
 पर चेतन प्रकाश भीतर का अपना आप बुझाये है ॥

६१

पति परायणा आई तो थी होकर इस घर की रानी ।
 पर सबके व्यवहार भाव से दासी होने की ठानी ॥
 सबके ताने सबकी कटुता हँस हँस करके पी जाती ।
 कोल्ह के पशु सी मजदूरिन निशि वासर जोती जाती ॥

६२

आज निरकुश जगने उसका मूल्य न कुछ पहिचाना है ।
 इस महान् के अमृत तत्व को हमने अभी न जाना है ॥
 पर रुचि, स्वार्थ, कामनाओं पर निज सर्वस्व चढा आती ।
 पर प्रशस्ति का-करुणा कण कब-किससे जग में है पाती ?

६३

नारी के साहस के आगे धैर्य तजा मर्दानों ने ।
 अमृत पिलाया युग मानव को नारी के बलिदानों ने ॥
 गूँज रही उसकी जय गाथा सब इतिहास पुराणों में ।
 मुखरित हो उसका स्वरूप शुभ युग के नये तरानों में ॥

६४

जितनी निभती और निभाती कटुता बढ़ती जाती है ।
 कुमुद कोमला इन्दु धवल तनु, घर में भार लखाती है ॥
 रत्नाकर देने वाली की अखर रही मोटी रोटी ।
 सावधान ! छूना मत उसकी अग्निमयी पावन चोटी ॥

६५

अतिस्निग्ध, कोमल अतिमादक, सुन्दर, शुभ, सुखकारी री ।
 अति सुरभित, अतिसरस, शुचिस्मित, प्रीति रस स्नुत नारी री !
 बलिहारी अग जग से न्यारी, निज तम तारण हारी हो !
 जय हो पूजित हो, सत्कृत हो, पूरी साध तुम्हारी हो” ॥

६६

गति शोध में प्रलयोर्मियो पर शिथिल शिञ्जित पद रुका ।
 तनु हो रही शतधा - त्रिधारा तैर हारा मन थका ॥
 मुख इन्दु कुहु से भीत वन की पिकी कुहु कुहु कूजती ।
 सकरुण प्रणाव रव पायलो में मर्म पीड़ा गूँजती ॥

६७

नारी तुम्हारे अश्रुओं ने आज नव निर्माण का ।
 आलोक मानव को दिया है नव युगीय विधान का ॥
 कटु सत्य से तुमने सँजोये तथ्य उस संसार के ।
 जिसमें विमर्शित गहन तब उन्मुक्ति के अधिकार के ॥

६८

ऐश्वर्य का आमूल चूल निचोड़ विग्रह सुप्रभे !
सम्पूर्ण रस माधुर्य का तुम सार संग्रह हो शुभे ।
सौन्दर्य का सङ्गीत का प्रत्युष तुम आनन्द का ।
ज्योतिर्पराग विकीर्ण तव सन्तोष घन अरविन्द का ॥

६९

यह युग लिये है हृदय में गान्धी प्रसादित प्रेरणा ।
जिसमें उचित उन्मुक्त आस्था, स्वस्थ, सत्ता चेतना ।
सम्मान गौरव श्रेय तव युग की प्रथम सद्भावना ॥
मम्पन्न हो घर घर सरुचि तव व्यक्ति की उद्भावना ॥

७०

हो प्राप्त जीवन को नई गति नव प्रतिष्ठा व्यक्ति को ।
युग मुक्ति मुक्ता शुक्ति सी तुम मुक्त करदो शक्ति को ॥
इस सृष्टि की सामर्थ्य का भण्डार तुममें है भरा ।
वह लुक रहा, ममता धरा के गढे में नीचे धरा ॥

७१

आह्वान करता आज जग युग का निमन्त्रण मान लो ।
श्रद्धावन्त मानव हृदय का सहज शुभ सम्मान लो ॥
उतरो धरा पर देवि प्रस्तुत समय की गति धाम लो ॥
शिर द्वार देहली पर धरे हैं स्व विनम्र प्रणाम लो ॥

७२

नारी नये युग में तुम्हारा भी नया अवतार हो ।
शाश्वत स्वरूप स्वदेश का जिससे सजग साकार हो ॥
सबको विकास, प्रकाश, नव उल्लास, पथ विन्यास का,
उपलब्ध हो मन को अनिश आवास प्रभु के पास का ॥

७३

आधीन, हीन, न दीन, तुम युग मौलि पर आसीन हो ।
मानव हृदय की स्वामिनी ! अब व्यर्थ क्षीण मलीन हो । ॥
हो राष्ट्र के प्रति - पर्व में चिर प्रथम सर्व अपेक्षिता ।
अब व्यक्ति और समूह में तुम अल्प भी न उपेक्षिता ॥

७४

बध कर सुतनु बल सिंह का तच्चर्म बाँधा अङ्ग में ।
 उपचार प्रति निज हिंस व्याघ्र किया सुतनु के संग में ॥
 कर परित्यक्ता उसे, घर में है मनुष्य मसान सा ।
 कर शक्ति का हिम दाह शिव शव सा लसित श्मशान में ॥

७५

नारी पुरुष के अहं पथ में भैरवी रथ पर चढ़ी ।
 गिरि भङ्ग करती सिन्धु तरती, सतत आगे है बढ़ी ॥
 रह लाज पट में मूँक कब तक सहन होगा शान्ति से ?
 युग का नया उत्थान सम्भव है तुम्हारी क्रांति से !

परित्यक्ता

द्वादश सर्ग

१

अश्रुल, आकुल, सकुचित, व्रीडित, निष्प्रभ, मित मीलित दृग ।
महा सिन्धु में बिन केवट की नौका सी चिर डग मग ॥
कम्पित, कातर, गति पीवर ज्यों मृगयु भीत घायल मृग ।
खड़ी परित्यक्ता चिन्तित मन, अविदित पथ, विस्तृत जग ॥

२

आहें भर - कराहती - आहत, गृह में ग्रहण निशा सी ।
 प्रलय समुद्र यान की आँधी, तम घन, लुप्त दिशा सी ॥
 सृष्टि सार, भगडार प्यार की हिम, हिरण्य मणि काया ।
 उस महि सी यह, काट कल्प तर अपहृत जिसकी छाया ॥

३

अपनी मूक वेदना पीती, अपनी तृषा तरसती ।
 अपनी ही श्वासों से जलती अपने आप बरसती ॥
 अपना तिमिर आप फैला कर, अपनी ज्योति छिटकती ।
 विवश परित्यक्ता के मिष वह पीडा स्वयं तड़फती ॥

४

सब ऋतुओं के फूल फलों की हरी भरी सी डाली ।
 सब कालों के पेयासव की चिर ताजी भृत प्याली ॥
 आशा, अभिलाषा, आग्रह, रुचि, निधियों की सुर भारी ।
 पांसु पङ्क पर लुलती फिरती काम धेनु सी नारी ॥

५

शिथिल, नियन्त्रित, रणित गमन में मन्द मन्द जो नूपुर ।
 सुन पड़ता है द्रवित सिसकता उनमे उत्पीड़ित उर ।
 घर की शोभा, शक्ति, प्रतिष्ठा फैकी है यह पथ पर ।
 भग्न असावधान के कर से शुचि सौभाग्य कलश गिर ॥

६

आज नयन के रङ्ग रङ्ग में धुल अनङ्ग रति क्रन्दन—
 लखता तनु उर में शिव दृग का मूर्त्त अनल विस्फोटन ।
 उमकी श्वास श्वास से निकला अति भीषण हालाहल ।
 नील हुआ आकाश, सिन्धु का चिर श्यामल खारी जल ॥

७

रवि के किरण जाल से फैला यह तम तोम निरुज्वल ।
 बुझती हुई दीप की लौ भी उगल गई है काजल ॥
 पर्वत के अन्तर से फूटा युग का संचित कलमष ।
 मानव की कच्ची पृथिवी पर पङ्क बना पावन रस ॥

८

मर्म व्यथा का नयन कोर पर अरुण सूत्र विलसित तनु ।
जल कर जल तट होने शीतल हाहाकार खड़ा मनु ॥
आँसू खींच चली जो पत्नी गण्डों पर लघु रेखा ।
इन्द्र धनुष के सतरङ्गों से चमक उठा विधि लेखा ॥

९

पलकों से ढुल चले स्वप्न शुचि मुक्त हुए तोरण पथ ।
पग पग पर पिसते चलते है मन के मधुर मनोरथ ॥
होठों पर सिकुड़ी बेठी है रद का लिये सहारा ।
नारी की लज्जा को किसने पण में आज पुकारा । ॥

१०

हम जीवन के निकट पहुँच भी खोल न पाये बन्धन ।
वह कर चली प्रलय धारा पर अपनी मूर्ति विमर्जन ॥
अमृत घूँट पी पी कर नर में जागी ज्योति न नूतन ।
वह पीकर जग का हालाहल शिव सी चली सचेतन ॥

११

जिसे खोजते चल मन्दिर मे जीवन और निधन में ।
व्रत समाधि संयम यम करके, शास्त्र कठिन साधन में ॥
जिसे खोजते अग्नि होत्र तप तीर्थ योग आश्रम मे ।
प्राप्त कर चुकी उसे वधू यह सहज यही प्रियतम मे ॥

१२

नारी के युख का कातर स्वर क्षत पडता है नभ पर ।
पृथिवी पर विखरा कवि का रस पाता नूतन कलेवर ॥
तुम सी महामहिम नारी का सुनते ही निर्वासन ।
मुखर हुआ ऋषि की श्वासों पर ललित कला का यौवन ॥

१३

जग में कटुता विधि रचता है निज में करुणा भरने ।
नारी दृग में जल भरता जग धुलने और उजलने ॥
नव दूर्वा पर दृग से छल छल गिरते दृग कण निर्मल ।
रुधिर विन्दु बन भू पर चलते वीर बहूदी के छल ॥

१४

जो देता भीषण दुःख, या सुख सुधा सुरा, विष के करण ।
जो तुम पर निज चथू चढ़ाता भरता या मर्म व्रण ॥
प्रेम युक्त करता नीराजन व्यक्त करे या पशुबल ।
मंगल मयि ! तुम सबका अविकल करती सम रह मंगल ॥

१५

ये आँसू हैं नही तुम्हारे निर्धन जीवन का धन ।
पृथिवी पर इनको विखराती धनिक बने हम चुन चुन ॥
क्षार पान करके सागर का घन देते मधु हँस हँस ।
संस्मृति का कल्मष तुम पीकर उगल रही हो नव रस ॥

१६

सन्ध्या समय नीड़ को जाते विहग वृन्द प्रसुदित मन ।
गृह सुधि जनित वेदना तुमको कर देती है उन्मन ॥
जिस घर पर सर्वस्व चढ़ाया वहाँ न अब कुछ तेरा ।
रात कटेगी तरु छाया मे सरिता तीर सबेरा ॥

३७

धन्य धन्य करुणामय मानव ! क्या करुणा दिखलाई ।
फूलों सी सुकुमार लता के काँटों पर फैलाई ॥
तुम विचित्र अद्भुत ममता मयि तव गति मति बिन इति अथ ।
जकड़ रहा जग तव त्रिवर्ग पद, खोल रही तू युग पथ ॥

१८

‘जग मे सुख-दुख, तुम मे है जग, आँसू मे तुम उज्ज्वल ।
जिसके उर मे आँसू है प्रिय, वह जाने छवि निश्छल ॥
जानकार मे जाग्रत है कवि उसमे सत्य चिरन्तन ।
उसी सत्य को बना रही तुम अपने करुणा घन बुन ॥

१९

बिना सहारे तुम चलती हो बिना गिरे उठती हो ।
अग्नि रहित दाहित रहती चिर बिना जिये मिटती हो ॥
दो धाराधर सतत बरसते पर तुम वृषित निरन्तर ।
शिशिर निशा, तरु छाँह, नदी तट धधक रहा फिर भी उर ॥

२०

तव अन्तर मे विरह व्यथानल कण कण दग्ध चराचर ।
कटुता शैल पुरुष मे तुम मे कल कूजित रस निर्भर ॥
निज में करुणा, करुणा में हित, हित मे जीवन की जय ।
जय मे मुख, मुख मे दुख, दुख मे खोज रहीं अपना प्रिय ॥

२१

आज दिवाली दीप जगे है घर के प्रति कौने पर ।
कर शृंगार मुदित नर नारी नृत्य गान मे तत्पर ॥
निज अंचल से मुख ढक आकुल मुख तल धरे हथेली ।
अन्धकार में वीहड़ पथ पर रोती तुम्ही अकेली ॥

२२

निष्ठुर की नृगंस क्रीड़ा के उपालम्भ की पीड़ा ।
अञ्चल मे अङ्गार सँजोती जल दुलकाती ब्रीड़ा ॥
पथ के बिखरे काँटो को चुन फूलों से दुलराती ।
तुम सहेजती घात, मान प्रिय प्रीति स्मृति की थाती ॥

२३

छायी दुख की घोर दुपहरी, पड़े विरह का आतप ।
क्रूर काल का हल चलता है कृपक तुम्हारा ही तप ॥
उर के मानसरोवर से शुचि दृग की गागर भर भर ।
मीच रही जीवन खेतों को व्यथा बीज बो बो कर ॥

२४

क्या परिणाम, प्रवाह किधर पथ, कब क्रम श्रम का उपशम ! ।
बहु उतराव, चढ़ाव, लोक छल छद्म न तुमको मालुम ॥
जहाँ पतन पर का, स्व प्रगति को पथ देती बाधाएं ।
तव अनन्त को विलसित करती वही सान्त सीमाएं ॥

२५

छुई मुई सी तुझ कोमल पर निर्दय हाथ उठाता ।
विश्व सिन्धु की तुझ लक्ष्मी को पैरों से ठुकराता ॥
दोषारोपण - तिरस्कार कर वह चिर तुम्हे हलाता ।
पर समर्थ ! तव नभ उसके शिर कल्प कुसुम बरसाता ॥

२६

तू पाटल सी स्वर्ग सुधा सी, बेग वती कृष्णा सी ।
 सबके प्राणों में अन्तर्हित अनिश तीव्र वृष्णा सी ॥
 तू धरणी पर है धरणी सी तुझसी है यह धरणी ।
 दोनों चुप चुप सहती रहती क्रूर करो की करणी ।

२७

शोभित होते है संसृति के सब तुमसे सब तुम पर ।
 इससे तुम अपने ही सम हो सब प्रकार से सुन्दर ॥
 कहाँ चराचर में तब उपमा, किसमें स्वल्प सदृशता ।
 तिल भर तुलना में न हो सके अग जग की सुन्दरता ॥

२८

तुमही पी सकती यह कटुता, गरल अश्रु घुट घुट कर ।
 गिरि पाहन भी अपराजित जब रोक न पाते निर्भर ॥
 स्वर्ग खोजती हो तुम भावुक पङ्क मयी मिट्टी पर ।
 जब कि स्वर्ग तुम, स्वर्ग तुम्ही में, स्वर्ग तुम्ही पर निर्भर ॥

२९

लक्ष्मी दीन, सखी दासी है, सावित्री द्युति हीना ।
 आज धरा पर पड़ी रो रही सरस्वती की वीणा ॥
 सनी खडी है निज शोणित में सकुच मानवी पीड़ा ।
 रुधिर क्रान्ति को रोक रही है उसकी करुणा वीणा ॥

३०

लोक काग दृग के मानस में चुग जाता मुक्ता सित ।
 लिप्सा खगी चक्षु से चुनती श्वास श्वास के अक्षत ॥
 परिधि तोड स्वार्थ पशु घुस कर कृषि उजाडता साकुर ।
 देख आरती में रत, लेता लूट देवता ही घर ॥

३१

तुझे अकारण क्रूर कठिन बन, ठेल चुका है बाहर ।
 सोता वह निश्चिन्त हिस्र की दंष्ट्रा पर तुझको धर ॥
 श्रान्त निशा के शत सपनों को नित प्रभात में खोना ।
 अरु तरु के नभ के नीचे पड़ शेष रहा है रोना ॥

३२

टूट चुकी प्राणों की वीणा, भग्न तरङ्गायित मन ।
फूट चुका भीगी पलकों में गिर पाताल स त्रिभुवन ॥
बिखरा स्नेह भग्न मृगमय रे ! कब तक रह वर्त्ती द्युत ।
सम्वहल, न कर देना तम मे चल, मणिमय प्रतिमा खण्डित ॥

३३

कोमल माखन के तन मन की, अङ्गारो से सज कर ।
कागद की नौका से करती पार प्रलय का सागर ॥
तुम्हे लख स्मृत होता निशि का लिपट उषा से रोना ।
ओस अश्रु मुक्ताहल चुगते उदय हस का होना ॥

३४

भूम रहे है आज न तेरी ड्योढी पर अहिरावत ।
दोख न पड़ते कुञ्ज द्वार के प्रहरी पिक पारावत ॥
आती शिखी नटी न, उडे सब रस गायक सारी शुक ।
अब दुलार पाने न घेरते चकित थकित मृग शावक !

३५

आदि महा कवि ! एक बार यदि पुनि तुम तक आपाएं—
निरपराध के कातर आँसू छन्दो मे ढल जाए ।
इससा निकट प्रकट तीर्थ तज जाता व्यर्थ त्रिवेणी ।
मङ्गल दृग की पुण्य त्रिधारा क्षण काटे भव बेड़ी ॥

३६

छोड़ चली जो मुख वैभव निज पति हित मे सतवन्ती ।
निर्जन वन मे खड़ी विलखती नल त्यक्ता दमयन्ती ॥
जन जन की ठोकर खाने अब युग युग से अचला सी ।
गौतम वधू खड़ी यह पथ पर मूर्छित एक शिला सी ॥

३७

आश्रय दो मेनके ! धरा पर शकुन्तला क्रन्दित चिर ।
प्रायश्चित्त, सुधार स्व का कर, पाये सभरत भू पर ॥
आज न कुछ अपवाद, न जनमत, किया व्यक्ति ने निष्कृत ।
तू सीता, पर राम न जो इस करणी पर हो दुःखित ॥

३८

केवल तुम न दुखी हो जग मे सब के दुख सांघातिक ।
 प्रकट कही अप्रकट बहता दुख कुटिया से महलो तक ॥
 सस्कृति शिर कलङ्क सा अङ्कित कर कठिन प्रति लेखा ।
 हिस्त्र कृत्य की रद नोको पर तुम लोहू की रेखा ॥

३९

पिछले युग का उज्ज्वल आँसू ताजमहल के जो छल ।
 नारी की विराट पूजा का अविनश्वर मुक्ताहल ॥
 उसके पहले का धरती पर महादर्श रामेश्वर ।
 जहाँ सिन्धु पर वधू प्रेम वश तैर रहे है पत्थर ॥

४०

फिरे निपट असहाय, रही जो सबकी सुदृढ सहाय ।
 एक भटकती लहर बनी जो कल तक रही किनारा ॥
 डूब रही है स्वयं खिबैया, हुआ लक्ष मे दिग्भय ।
 माँग रही रुक रुक कर धारा आज नाव का आश्रय ॥

४१

अब भी निष्ठुर के प्रति मन मे मधुर कल्पना रहती ।
 यह अवृत्ति है या निष्ठा जो आशा त्याग न करती ॥
 असन्तोष कुछ गिला न शङ्का तुझमे घृणा न जागी ।
 तुझमे तप करता रहता है कौन अमृत अनुरागी ॥

४२

कौन चितेरा जिसने आँका तब व्यक्तित्व महोज्वल ।
 किसके ब्रह्मानन्द सरसि का तुम परिणत आत्मोत्पल ॥
 सज्जन और असज्जन सबके चौराहे की दीपक ।
 रुकी हुई है दुर्घटनाएँ तुम जलती हो जब तक ॥

४३

भौंक रहे भुक नयन नीड़ से नीरव भावों के खग ।
 पर्व पड़ रहा - हिलमिल आते दल के दल दुख अध्वग ॥
 स्वप्नो के शरदाभ्र सुधा मय प्राण सिक्त कर जाते ।
 श्वासो के तुषार अञ्जल में चिन्गारी सुलगाते ॥

४४

इसे भुलाकर, इसे सता कर अग जगने क्या पाया ।
मरणा, पतन, असफलता, अपयश, निरय आसुरी माया ॥
जीवन मरु में सुतनु एक ही मीठे जल की पनघट ।
इसमें गरल मिला तो जग का पग पग होगा मरघट ॥

४५

चिन्ता की-किसने सोचा यह-तुमसी नव सुकुमारी ।
हिंस्र कण्टकित पथ पर फिरती छवि यौवन की भारी ॥
मख से चितारोह तक चलने के प्रण वाली साथी ।
भार बनी, शुक चुगा न पाया-भूम रहे घर हाथी ।

४६

पिकने प्रिय का मधु पी गया मिष्ट हुए तरु के फल ।
हालाहल पीकर यह रोयी बरस पड़े मुक्ताहल ॥
होठों की हिम छाया छूकर लाल हुए सब पाटल ।
आश्चर्य क्यों जन मन का तम सका न तनु मधु से धुल ॥

४७

पद्म सरसि ! चञ्चल सरिताओ ! हे ! निनाद मय भरना ।
तुम कोलाहल मय क्या समझो, सूक सुतनु की कण्ठा ॥
दावानल ! बड़वानल, पावक ! रवि आतप ! ज्वालाचल ।
नारी हृदयानल की समता कर न सको तुम शीतल ॥

४८

प्रलय काल के प्रबल प्रभञ्जन व्यर्थ तुम्हारी रचना ।
उर मे शत तूफान छिपाये प्रकट हुई जब ललना ॥
सुलभ न समता-जिस प्रति होती बिगड़ बिगड़ नव रचना ।
विधि के शशि ! तुम कर न सकोगे कवि शशि तनु से तुलना ॥

४९

बिखरा बिखरा ही फिरता था निराधार उत्पीड़न ।
कण्ठा कर विधि ने दे डाला आज उसे कोमल तन ।
तुमसे रोना सीख रहे है उडु चकोर पिक चातक ।
प्रति प्रयास सृजनात्मक है तब सब विचार रचनात्मक ॥

५०

लसित रही जिसके उर पर बन कला कुसुम की माला ।
बाला ! तुम जिसके अग्ररो की चिर अगूरी हाला ॥
पद्म पाणि मे अमृत कलश सा जिसने तुम्हें सम्हाला ।
पाला बना कुमुद वन का वह, तुम न बनी विष प्याला ॥

५१

करुणामय प्रभु की करुणा की तुम अनुभूति अनश्वर ।
उनकी प्रेम तरल आँखों की अश्रु मूर्ति चेतन चिर ॥
रस मय ललित काव्य चरणों से चलती तुम युग युग तक ।
तब अक्षय यश मय जीवन मे काल न होता बाधक ॥

५२

गिरि वधुओं के उर द्राव मे सप्नोदधि है भू पर ।
तुम्हें बनाने है री । कितने और नये रत्नाकर ॥
ताज धैर्य की मुट्ठ परिरधि मे रुद्ध हृदय की खोती ।
अपितु नियति की तिल सी रचना पल में बोर डुबोती ॥

५३

बिना मँजा स्व अह का मेला ताम्र कलश नर लाया ।
पय पीयूष क्षीरनिधि का तब उसमे भरा, जमाया ॥
नील गरल वह बना, पिया कुछ ठोकर से लुढ़काया ।
मूर्च्छित होने अधिवेकी ने तुम पर दोष लगाया ॥

५४

देवि ! अर्हिनिशि अलख जगाए कातर अश्रु सजाए ।
किसे सतृष्ण निहार रही हो अञ्जल मे दुलराए ॥
वह समाज हिसक पशु सा उठ दंष्ट्रा दिखा रहा है ।
शिवि सा तब उदार निज आभिष कण कण चुगा रहा है ॥

५५

श्वास श्वास पर रिम भिन करता पथ पर तुमुल छमाछम ।
ज्योतिर्मय का उदय सँजोता ओढ़ रेशमी घन तम ॥
मरु के कठिन सतृष्ण लोक मे ले अनन्त मधु धारा ।
शशि के किरण यान से उतरा निर्भर हृदय तुम्हारा ॥

५६

लौंटा दिये गीत लहरों को, किरणों को सम्मोहन ।
मधु भाषी पिक उड़े, गिरा के सूखे स्वप्नों के घन ॥
च्यवितामृत मणिघट नयनों का रंग पड़े सब फीके ।
अब जी के जंजाल बने सब जीवन जग के नीके ॥

५७

तुम निर्मल उजली, रस बदली, रसिक नयन की पुतली ।
गोधूली की मन्द्र मुखर सी मन मोहन की मुरली ॥
निज दशेन्द्रियो, असु, मन तन मे तब बहु अमृत पिया है ।
बदले में मित खारी पानी भर मंताप दिया है ॥

५८

हम चोराहे के पत्थर पर मीखे दूध चढाना ।
घर के प्रकट देवता तनु पर अगारे सुलगाना ॥
इसके मन, व्यक्तित्व, सत्य, मे ऊँचा, बड़ा न भारी ।
सबसे श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, सुन्दर है माय सकल की नारी ॥

५९

जहाँ निरन्तर भँकृत रहती मृदु पायल की छमछम ।
वहाँ फूँस के नीड़ बना कर करते बीट विहङ्गम ॥
तब अभाव मे स्वर्ग नरक सा घर घुम्रामित मरघट ।
तुम्हे त्याग उसमे रह सकता मनुज प्रेत ही दुर्भट ॥

६०

निश्चयेयस्, अभ्युदय उभय की भृत माणिक मञ्जूषा ।
नर भाग्योदित अरुण राजिता जय धरती की ऊषा ॥
अरु धूम सा घुमड रहा तब चिर चेतन अविनाशी ।
तुम में भाँक रहा है कोई द्रुत जय का विश्वासी ॥

६१

ध्रुव तारा सा अङ्कुस्थित तारापति सा दृग तारा ।
कुल नभ का मङ्गल तारा तारन हारा-सुत प्यारा ॥
अरु सुख की यश की धारा सी चित्रा उडु सी सश्रम ।
माँ के सङ्ग चले आत्मा सी दुहिता-छवि मे निरुपम ॥

६२

घोर धाम में इस वर्षा में शिशिर शीत में जननी ।
 तुम निरुपाय कहाँ जावोगी ज्वालाग्रों में नलिनी ॥
 रोता है भूखा वह नव शिशु सूख चुका तेरा पय ।
 आघातों से फूट रहा है धीर हृदय का मृण्मय ॥

६३

दो क्षण का विश्राम न भोजन कब से शुभे ! न सोयी ।
 रात रात दिन दिन भर भूखे शिशुओं के सँग रोयी ।
 मसृण गदेलों पर चल कर जो थक होते स्वेदित पद ।
 घायल, व्यथित, रुधिर सूत हैं वे कण्टक भाड़ी से छिद ॥

६४

कुल्ल न किसी से कहती, सुनती, अपनी धुन में रहती ।
 अपने व्रण की कोर कसक तुम मौन हृदय में सहती ॥
 निज निष्ठुर पति की मित निन्दा अधिक दुःखित है करती ।
 सब दायित्व, दोष निज पर ले उसको बुरा न कहती ॥

६५

जो सुकुमार तुम्हारी काया फूलों पर अकुलाती ।
 हिम आतप में, शून्य शिला पर लुण्ठित, विवश सुखाती ॥
 जो तनु निज छाया, पहिचल से शरमाती, सकुचाती ।
 जन जघन्य घूर्णा से दुःखित केवल नयन भुकाती ॥

६६

दो शिशुओं को पार्श्वस्थित कर विपदाग्रों की मारी ।
 तरु छाया में विकल पड़ी है व्यथित गर्भिणी नारी ॥
 प्रमव काल की कठिन कल्पना, दुःखों के शत सङ्गर ।
 चिलक रहे अमिल चिन्ता में नौका के क्षत लङ्गर ॥

६७

शक्ति मती ! हे ! सती ! शोभने ! तुम भव से उखतायी ।
 भव निमित्त युग दक्ष यज्ञ में पावन देह जलायी ॥
 नव जीवन दे तपी उसी के हेतु उसी को पाया ।
 धन्य तुम्हारा प्रेम न जिस पर द्वेष घृणा की छाया ॥

६८

सद्य प्रसूता मजदूरी कर ला पायी जो दाने ।
मानव का निर्माण किया है आज उसी से माँ ने ॥
विधि की कना, सुकवि की प्रतिभा धन्य जिसे दुलराके ।
क्यों न धन्य होने मेरा कवि उसको शीर्ष भुका के ॥

६९

तिरस्कार तब करने वाले खल विरक्ति के होंगी ।
बिना तुम्हारे पार लगेगी कभी न जन की डोगी ॥
पुरुष जीत सकता है तुमको अपना अहं मिटा के ।
नारी की स्वरूप सत्ता से निज अस्तित्व सटा के ॥

७०

श्वास पवन पर नीर भरे नव करुणा घन मरसाओ ।
देवि ! दिगम्बर इस अम्बर को नीलाम्बर पहिनाओ ॥
निज नवनीत स्निग्ध नयन से ज्योतिर्मय दर्शित हो ।
जिससे नैतिक नीति-मंगला शुचिस्पष्ट विकसित हो ॥

७१

पड़ जिसके पद पर श्वेतोत्पल यावक सा रँग जाता ।
जिसकी पद्म पाणि छाया पर इन्द्र धनुष बन जाता ॥
निजान्नपूर्णा, जिसके दर पर है भगवान् भिखारी ।
जल भरती, वर्तन मलती है, फिर भी क्षुदित विचारी ॥

७२

नवोत्साह, नव रस, नव द्युति है, नव जीवन, नव यौवन ।
नया रूप, नव मन, नव तन है, नये भाव, नव विकचन ॥
नारी सम्भव गुण विभूति सब भीतर, बाहर पावन ।
इसमें त्याग उपेक्षा का है कहीं न कोई कारण ॥

७३

कोमल, करुणोन्मुख नव शिशु को कैसे क्या दुलराए ।
भोली मति, विस्मित दुहिता को क्या कह कर समझाए ॥
‘गेह चलो ! घर किधर हमारा ? पिता कहाँ बोलो माँ !
मुँदते नयन मौन रह जाती ज्यो पत्थर की प्रतिमा ॥

७४

शुभ्र चाँदिनी में तुम चलतीं उसमें ही धुल मिल कर ।
किन्तु प्रकट कर देते जाना बज बज करके नूपुर ॥
भूमि समाश्रय सीता सा, शकुन्तला सा जीने का ।
शिव संकल्प जागता तुम मे लोक गरल पीने का ॥

७५

एक एक पग जब चलती रुक एक एक डग धरती ।
सहने में असमर्थ काँपती शेष फाँों पर धरती ॥
कर अतीत की याद हृदय के दुखने लगते है व्रण ।
और कड़कता निमक कनी सा गिर उसमें संसृति कण ॥

७६

लोक लक्ष्मी दीन हीन हो फिरती है क्षत विक्षत ।
निकट देख पहचान न पाते सहज मुहद चिर परिचित ॥
कोई कभी पूछने लगता सकरुण करुण कथा चिर ।
लज्जारुण नख गाढ धरा पर तुम रहती आहें भर ॥

७७

वह कपोल की पाटलता शुचि, अधरों की अरुणाई ।
नयनों का सरसिज विकास नव, मस्तक की सुधराई ॥
भ्रू की चञ्चलता, पिक सा स्वर, अलस भरी अँगड़ाई ।
अरी सुन्दरी ! कहाँ गई वह सुरा भरी तरुणाई ॥

७८

शिर पीड़ा होने पर पति के तज देती जो संज्ञा ।
सदा प्रतीक्षित रहती सादर पाने उनकी आज्ञा ॥
रुग्णा बूंद नीर को तरसे, बात न पूछे कोई ।
भाग्य कोस, बाहों में शिशु भर, सिसक सिसक कर रोई ॥

७९

जन जन निरत मनाता होली, घर घर मने दिवाली ।
इसके यहाँ वर्ष भर घिरती घोर घटाएँ काली ॥
जब मधुमास यहाँ आता है पीत विभा छिटकाता ।
काम कल्प तरु तब इसका मन पतझड़ पर्व मनाता ॥

८०

हे ! त्रिकाल दर्शी समाज के शुद्ध बुद्ध जन जागो ।
भीत रूढ़ियों से, रूढ़ों से मत यथार्थ से भागो ॥
आप्त पूत हे ! वृप्त दीप्त ऋषि । नव युग नई परिस्थिति ।
क्यों न बने फिर नव विधान जब नव विचार नव गति मति ॥

८१

शिक्षा योग्य हुए शिशु इस बिन जन्म व्यर्थ हो जाए ।
उच्च वंश के होनहार ये भीख मांग कर खाएं ॥
पुर में मेला लगता पितु सह सब शिशु सज धज जाते ।
मातृ अङ्क में विवश छिपे ये रोते उसे रुलाते ॥

८२

इसका जो कुछ धर्म ध्येय ये माने चहे न माने ।
विवश न कर सकता करने को कोई किसी बहाने ॥
नर नैतिक चरित्र से गिरकर किस मुख से कह सकता ।
सामाजिक ढकोसला आग्रह मूल्य न अब कुछ रखता ॥

८३

मदिरा पय के मत्त जहाँ मित जल को दीन कलपते ।
वहाँ लख पड़े छवि-यौवन यदि श्वान, काग से घिरते ॥
जब विसूचिका से मृत सुत के दुख में थी वह व्यथिता ।
उसे व उसकी सुताहरण की सोच रही थी जनता ॥

८४

भिषग् एक पुड़िया मिट्टी दे मांगे उसकापन, तन ।
दाता ने रोटी का टुकड़ा मात्र किया मूल्याङ्कन ॥
रस्ता चलते का चलता है उसे लूटने को मन ।
नगर - नागरिक इनसे अच्छा हिस्स जन्तुओं का वन ॥

८५

अपना दुहिता का, नव शिशु का, भार लिये शशि वदना ।
बचा रही निज शील-प्रतिष्ठा, सह कर भी दुख इतना ॥
कपिला सी ज्यों त्यों रह पाती आतङ्कित उत्पीड़ित ॥
जन बहुमत, समाज संस्कृति का भाव स्तर अभ्यवहृत ॥

८६

स्वयं शुद्ध-स्वच्छ बन करके दाल न निज गलने पर ।
साध्वी को पतिता कह लेना बहुत सरल, प्रचलित चिर ॥
ईश्वर है-यदि कही-न्याय है, शास्त्र न अगर मृषा है ।
नारी खल चर्चा निन्दा की केवल नर्क दिशा है ॥

८७

सिंहो के जङ्गल में जाना सहज और सुविधा मय ।
युवती के घर बाहर जाने में सबको सशय भय ?
कारण है 'कु प्रवृत्ति' उपेक्षा, दुष्ट हमारी शिक्षा ।
नारी के सम्मान, भाव की होनी उचित सुरक्षा ॥

८८

भाव ताव निज मूल्य स्थिर कर मिष विवाह नर बिकता ।
कभी स्वयं कुछ देकर वह निज कौड़ी सीधी करता ॥
कन्या पक्षी की लघुता का, यौतुक, श्रय, विक्रय का ।
हो दुर्भाव नष्ट, प्रचलित हो प्रीति परक विनिमय का ॥

८९

'सद्' का परित्याग कर किस ने सुख पाया जीवन में ।
'असद्' ग्रहण कर शान्त रह सका कही न कोई मन में ।
देवि ! परित्यक्ते ! तुम 'सद्' हो दैवी सम्पद् मयि चिर ।
जन को प्राप्त गरुण गति होती चरण रेणु तब शिर धर ॥

९०

तनया परिणय योग्य हुई, अब घर बर उचित अपेक्षित ।
उच्च वंश के बात न करते, जाल बिछाते कुत्सित ॥
जीर्ण वृद्ध धन से, छल, बल, से व्याह ले गया दुहिता ।
वह अयुक्त-पतिका चिर रोती जग ताली दे हँसता ॥

९१

नारी ! उठो ! नयी गति मति से, क्षेम प्रेम से उर भर ।
इस युग के अनुरूप रूप में उदित करो स्व सुधाकर ॥
मानवता का हृदय तुम्हारे नवोत्सर्ग का प्यासा ।
कुछ अभिनव चरित्र चिन्तामणि माँग रही है भाषा ॥

अयुक्तपतिका

त्रयोदश सर्ग

१

शुभ नव यौवन शृङ्गार युक्त,
पहली सुहाग निशि मे विषरण ।
जय तनु अयुक्तपतिका निदान,
अश्रुल सम्हालती हृदय क्षुण्ण ॥

२

बढ़ रही प्रलय की ओर भीत,
 आमरण पराभव से प्रणीत ।
 भन भना रही प्रति श्वास श्वास,
 हो गई पाप की अमर जीत ।

३

भर रोम रोम में दुख अपार,
 पग पग पर रुक रुक हार हार ।
 मन की बड़वा पर बूँद बूँद,
 ढुलती रहती टग से तुषार ॥

४

अग जग, डग मग, डगमग सहेज,
 भेदन कर सीमा दुर्निवार ।
 तरि जीर्ण पुरातन पर सवार,
 चिन्तित, हो कैसे सिन्धु पार ॥

५

संस्मित से ढक कर कसक दीन,
 अपनी अवृत्ति मे विवश लीन ।
 अवगुण्ठन से अवरुद्ध भाँक,
 लखती सम्मुख का भव मलीन ॥

६

अन्तर हृदका का उच्चारत्नाद,
 उत्पीड़ित प्राणों का विषाद ।
 युग शान्ति भंग कर सङ्घ बद्ध,
 छिड़ गया क्रान्ति मय नव विवाद ॥

७

कातर, कम्पित, करुणाद्र, दृष्टि,
 करती अत्युल्वण गरल वृष्टि ।
 जल रहा सृष्टि का कटु कठोर,
 गल रही एक सुकुमार सृष्टि ॥

८

अनुराग क्षेत्री अति विराग,
इस ओर नीर उस ओर आग ।
यह प्रणय- कि विषमय-उग्र नाग,
विश्व श्मशान चिति पर सुहाग ॥

९

किस ओर तीर, है कहाँ अन्त,
किसके कगार सीमा अनन्त ।
चुपचाप लिये परिणति अनन्त,
पतझड़ पर फूटा मधु वसन्त ॥

१०

गिर गया पङ्क पर खण्ड खण्ड,
स्वर्गङ्गा का सरसिज अनूप ।
अपनी समेट शुचि छाह, धूप,
ढुल गया जरा पर अमृत रूप ॥

११

स्वप्नों के साधो के विहान,
मधुर स्मृतियों के मंदिर गान ।
रह गये निरुत्सव मणि वितान,
सब व्यर्थ ग्रहण, निष्फल प्रदान ॥

१२

पीवर - पिंजर - पञ्जर विमुक्त,
फँस गया वधू का विवश कीर ।
घुट रहा प्राण, रुंधित समीर,
बह रहा रुधिर मर्मन्त चीर ॥

१३

अभिनव प्रयाण, शुचि वरण पर्व,
तर का देवों का सन्निधान ।
जीवित जन चिता निदाघ तप्त,
घूम्रायित प्रेतों का श्मशान ॥

१४

शत अलङ्कार-तन पर लपेट,
 वह जरा जीर्ण आवृत-अपूत ।
 बढ़ता समाधि पर सबल खींच,
 यम पाश बाँध द्रुत काल दूत ॥

१५

चीत्कार चेतना का अमन्द,
 हो गई कल्पना छार छार ।
 खरिडत दुलार, जर्जरित भाव,
 मन तड़फ तड़फ उठता पुकार ॥

१६

वह नृत्य, गीत, नोंबत, निनाद,
 कर चले रुदन का व्यंग गान ।
 अति धूम धाम से पूर्ण आज,
 तिल तिल मिटने का नव विधान ॥

१७

वह वह्नि कुण्ड आहूति होम,
 मग्न अग्नि शिखा का द्रुत विलास ।
 कर रहा दग्ध सत्वर त्रिकाल,
 धूम्रायित-जीवन का प्रकाश ॥

१८

चल पड़ी अन्त के साथ आदि,
 बस चली शून्य निर्जन समाधि ।
 रोने गाने को एक जीव,
 ले चला वृद्ध ज्यों आधि-व्याधि ॥

१९

लावण्य रूप का उग्र शाप,
 यौवन विष ज्वाला चूम चूम ।
 माँ के गोपुर पर स्रवित धूम,
 कातर श्वासों का द्रवित धूम ॥

रह गई वधू की चाकल लाज,
 पागोपहास मनु स्वाँग - कन्त ।
 ले चला गिशिर शिर पर लपेट,
 नारी नन्दन का रुचि वसन्त ॥

२१

कुस्वार्थ घटावृत् आत्म सूर्य,
 बज रहा निरंकुश दर्प तू ।
 नवनीत रसा पर कुलिश शौर्य,
 यह किसका किस पर दाय पूर्य ॥

२२

र चली माँग मिष रुधिर राग,
 मद-मदन दहन सुत्रिनयन आग ।
 उड़ गया रङ्ग-किशुक पराग,
 फुट्टार रहा सब ओर नाग ॥

२३

नङ्गल निधियों की राशि-राशि,
 घन सार सुरभिमय अङ्कवार ।
 आत्मा की शीतल तुष्टि-पुष्टि,
 पिच रही असहन यह शैल भार ॥

२४

भारती विकल खो निखिल वर्ण,
 अन्तर आमुख, मुख है विवर्ण ।
 बह गये गीत-रस-ध्वनि-प्रबन्ध,
 झड़ भाव विभवे के पर्ण पर्ण ॥

२५

भुवि की विभूति अस्तित्व हीन,
 कम्पित हाथों में बद्ध दीन ।
 बलि, अजा, यथा लख वध्य मञ्च,
 धर धर कम्पित-तन हर्ष हीन ॥

२६

रक्ताम्बर में लिपटी अचेत
जीवित शव सी करती विलाप ।
ले चला बाँध निज नाग पाश,
वह हाँप हाँप कुछ काँप काँप ॥

२७

ओ ! माँ क्या तेरा यह सनेह ?
क्या पिता यही कर्तव्य दिव्य ?
यह ही मङ्गल क्या सरल सत्य,
हे ! शुभ चितक गए धन्य धन्य ॥

२८

निज तथ्य, सत्य के विकृत व्यङ्ग,
सम्प्रति यथार्थ के असद् स्वप्न ।
तुम आज भग्न, प्रत्यक्ष नग्न,
हे ! मरण मार्ग के मूर्त्त विघ्न ॥

२९

आशा का मन्दिर छिन्न-भिन्न,
सब असम्पन्न त्यौहार वार ।
बुझ चला प्रहर का रत्न दीप,
पीकर इन श्वाँसों का तुषार ॥

३०

जग उठो प्रकृति के मूर्तिकार,
गा लो कुछ दो क्षण गीतकार ।
गुनगुना उठो कवि एक वार,
नारी के मन का शेष सार ॥

३१

फय फेन शुभ्र मृदु सुमन तल्प,
किसलय कृत तोरण मुकुल न्यास ।
करती विकीर्ण निज सुरभि सोम,
घुट रहा बधू का प्रति प्रयास ।

३२

यह राज्य भवन ऐश्वर्य्य दिव्य,
अत्याचारो का केलि मञ्च ।
क्या दे सकता मधु एक घूँट,
क्या कर सकता यह तृप्त रञ्च ।

३३

यह पाटल रस, यह इत्र गन्ध,
दुर्गन्ध उठा है मन कराह ।
वासना पिशाची ने न एक-
छोड़ी बचने की इधर राह ।

३४

अन्तःपुर का नूपुर निनाद,
कर रहा वमन क्षण क्षण विषाद ।
अति क्रूर कर्म की यह सजीव,
बन चली विजन मे अमिट याद !

३५

भय ग्लानि, आति, विक्षोभ, क्रान्ति,
छल, मौन, निराशा अश्रुपात ।
उर दाह, आह, शङ्का, विरक्ति,
कैसी यह पहली मिलन रात ?

३६

सखियो के शत शत मिलन वृत्त,
बहिनो का सुखमय शुभ गृहस्थ ।
कितनी परिचित जोड़ी प्रसन्न,
कर याद न रहता हृदय स्वस्थ ।

३७

ब्रह्म मृगयु गर्व युत वक्र व्यग्र,
आया भुक्त जर्जर गाति बृद्ध ।
अति सितश्मश्रु, क्षत दन्त, क्षाम,
बहु धन वैभव का तरुण सिद्ध ;

३६

करना चाहा अभिनय अपूर्व,
होना चाहा वह भूत पूर
सूखे अधरों पर रुधिर हास,
है प्रलय प्रेत का हिम रास ।

३९

मुख पर अवगुण्ठन, मुक्त केश,
वैठी स्वैदित अवनत ललाट ।
अवलोक रही अपलक अपाङ्ग,
जीवन का बिखरा ठाट बाट ।

४०

मुन पड़ा प्रिये ! सहसा समीप,
तिलमिला उठी, उठ-सकुच चोंक ।
तूफान लहर पर नाव तुल्य,
गिरती उतराती नयन नोक ।

४१

टूटे तन्त्री के तार तार,
हो गये स्वरो के पीत मग्न ।
जग के पाहन पर खण्ड खण्ड
निर्माण त्रस्त, निर्वाण भग्न ।

४२

उतरा कुम्भारपन, बसित गेह,
री री पूरी पिट गई लीक ।
पूर गया षोडशी का सुहाग,
नर पूज्य पितामह का प्रतीक ।

४३

प्रहरी समाधि का कर नियुक्त,
निश्चिन्त - शान्त होगा प्रयाण ।
रोकर गाकर प्रति वर्ष माह,
पढ़ कर ही देगी पण्ड दान ।

४४

पीयूष तरल, सुर धेनु क्षीर,
क्षत घट में ढाला नयन रूप ।
हो रहा स्रवित स्वर्गीय शीघ्र,
पङ्किल पृथ्वी पर बूँद बूँद ।

४५

ओ नीरव अम्बर बोल बोल,
अपना विद्युत विध्वंश खोल ।
तनु उर पर बजता रह न और,
मानव के मद का विरस ढोल ।

४६

वृश्चिक के दंशन, लुक्ष लक्ष,
दे रहा भेदना शयन कक्ष ।
जीवन का रुंधित प्रति विकास,
फँस गंगा हेम पक्षी अपक्ष ।

४७

अपने विराट को बोर बोर,
भर गई नयन की कोर कोर ।
मिल सका न नारी को धरन्तु,
अपने पन का कूछ ओर छोर ।

४८

निर्बल, कम्पित, रस हीन दीन,
स्वालङ्कन वो दो प्रकट बाहु ।
वह सिकुड़ गई यह क्या अनिष्ट ?
शशि भीत हुई लख निकट राहु ।

४९

उसका सब कुछ क्षण में व्यतीते,
बह खोज थीकी स्वर्णिम अतीत ।
आरम्भ मध्द-कब क्या समाप्ति ?
हो सका न तनु को मित प्रतीत ॥

५०

उसके यौवन का किधर मोल,
 उसकी छवि पाया कौन तोल ।
 रवि-सशि-उडु में चिर आर पार—
 नारी जीवन की व्याप्त पोल ॥

५१

नारी नर की आलोक राशि,
 नारी नर की चिति का प्रसार ।
 दोनो का न्यायोचित समत्व—
 उन्मीलित करता स्वर्ग द्वार ॥

५२

उज्ज्वल युग का आरोह शृंग,
 मत भग्न करो-समूहलो समाज !
 अन्याय, पक्ष - वैषम्य त्याग,
 समता से समुचित करो राज ॥

५३

स्वामित्व त्रुटियों का मुझे खेद,
 कल्याण मूर्ति, जय कीर्तिधाम ।
 हे ! परम - भक्ति प्रभु सन्निधान,
 नारी ! तुमको शत शत प्रणाम ॥

५४

चुग चुग कर तेरा रत्न हास,
 पोषित होता नर प्यार हंस ।
 पल गया कपट से, खेद देवि !
 पिक नीड़ मध्य वायस नृशंस ॥

५५

गम्भीर सिंधु सह विपुल भार,
 क्षत नाव, दिशा भ्रम, द्रुत वयार ।
 चपू हत् दुर्बल कर्णधार,
 नव तरुण चढ़ी बाँकी सवार ॥

५६

जब खोल कभी गृह का गवाक्ष,
विस्मृत पथ करती वधू लक्ष ।
मन की अतृप्ति उठती कराह,
नव तरुण युग्म को लख समक्ष ॥

५७

घर के पड़ोंस में नव प्रविष्ट,
दम्पति का मुखरित कलित हास ।
भर रहे वहाँ दो हृदय स्वर्ग,
कर रहे प्राण दो ललित लास ॥

५८

घर में देवर की नव कलत्र,
कितनी प्रफुल्ल, कितनी प्रसन्न ।
माँ के घर भाभी तुष्ट-तुष्ट,
यह नव परिणीता छिन्न भिन्न ॥

५९

वे चलती हैं निर्वन्ध चाल,
निर्भय उनका आलाप लाप ।
इसकी गति पर प्रतिबन्ध-दृष्टि,
संदेह सृष्टि करता कलाप ॥

६०

घर के बाहर के गीत वाद्य,
पथ से वर यात्रा का निकास ।
तरुणी सहचरियों का विनोद,
उसके पन का कटु दुरूपहास ॥

६१

पर किसको चिन्ता, ध्यान अल्प,
स्वार्थान्ध हृदय में कब विवेक ।
स्वार्थी समझाता धर्म ग्रन्थ,
नारी सतीत्व गाथा अनेक ॥

६२

तनु मर्प्यादित, संयत्, ससीम,
 मिकुडी सकुची, नैष्ठिक असीम ।
 शृङ्खला बद्ध भी व्यक्त - मुक्त,
 वह निर्वल, उमका सत्य भीम ॥

६३

है भूल चली प्राकृत प्रकार,
 तम, नष्ट, निबलता कटु - विकार ।
 कामना वासना से निवृत्त,
 लखनी लीला मय का प्रसार ॥

६४

उस आत्म लीन का देख हास,
 तनु के उदार का देख लास ।
 असमर्थ वृद्ध के तन्त्र क्षीण,
 शङ्का भ्रम की लेते उसांस ।

६५

करता कृत्रिम, पौरुष, प्रणोद,
 करता युवकों से शत वित्तोद ।
 अपनी दुर्बलता का प्रतोप,
 हँसता कर कुत्सित धृष्ट मोद ।

६६

नारी ! अमृतार्णव की हिलोर,
 थामे संसृति का सरस - छोर ।
 धोले अपने उत्ताप ताप—
 मेरे कवि तू हो ले विभोर ।

६७

नारी कब किसके दूर पास,
 पतनोन्नति का, उसमें तू हेतु ।
 वह तो संस्कार निसर्ग निष्ठ,
 भवोदधि पर, संयमन सेतु ॥

६५

वह वीतराग, वह मूर्त त्याग,
अनुराग मात्र उसका सुहाग ।
उसकी आँखों का अश्रु अश्रु,
आत्मेन्दीवर का अति पराग ॥

६६

पा सकते जिसको नर न देव,
वह खोल खड़ा निज बाहु पाश ।
चिर स्वप्नों का नयनाभिराम,
कर रहा नयन मे रस विलास ॥

७०

गृह युवक सुतों का भी प्रवेश,
आँखों में खलना है विशेष ।
माँ की पावनता भी उलीच,
पति लगा देखने पङ्क शेष ।

७१

विश्राम न तनु का तनिक शेष,
पाथेय व्रथा का ले अशेष ।
निज के करुणा मय के समीप,
वह रही छलकती निर्निमेष,

७२

जो पीने किञ्चित् क्षार नीर,
आई निज तट पर चल विभोर ।
वह भी समूल्य फिर क्यों अहेतु,
दी भरी भँवर में नाव बोर ?

७३

मुक्ताग्रों से दृग तुला मध्य,
नारी ने तुमको लिया तोल ।
तुम धूलि कणों को ही समेट,
आँको कुछ उसका भाव मोल ॥

७४

नव परिणीता दुहिता हटात्,
 मौतेली अति प्रिय तत्समान—
 के विधवा होने का उदन्त,
 तनु सह न सकी अति व्यथित प्राण ॥

७५

करतार्पित तव महिमाब्धि तीर,
 यह लघु पूजा का पांशु दीप ।
 ज्योतिर्मयि, करुणामयि, उदार,
 हों परुष पुरुष के क्षत प्रतीप ॥

विधवा 

चतुर्दश सर्गे

१

नीलम यमुना का सैकत तट, ज्वलित चिता का आवृत धूम ।
किसी तरुण की प्राण ज्योति ले रहा स्वर्ग तोरण पथ चूम ॥
नर नारी से धिरी नव वधू - व्यथा वेग में आर्त अचेत ।
त्याग रही ज्वाला पर शिथिलित मन के शुभ सुहाग संकेत ।

२

अन्तर्शय्या पर अन्तःपुर का दाहित अपूर्व अभिराम,
अङ्गारों की हेम हाट पर, बढ़ा नीर मुक्ता के दाम ॥
मधुर अङ्गना के आँगन का काम कल्प तरु अन्तर्द्वानि ।
रे ! चुटकी भर राख बन रहा रत्न भरा सोने का यान ॥

३

जिसकी मूक अचेतन आँखें दुख का पीकर पारावार ।
प्रकट कर रही दो बूँदों में भग्न हृदय का हाहाकार ॥
चिन्ता की चेतन रेखा सी विधि कटुता की सजग स्फूर्ति ।
चित्र लिखी सी यह विधवा है पीड़ा की प्राणान्वित मूर्ति ॥

४

यह वैधव्य कु भाग्य, देव गति, दुर्विपाक, अभिशाप कठोर ।
विवश मीन का जीवित रहना अङ्गारों पर आत्म विभोर ॥
खाली खारी जल पी कैसे मन के चञ्चल झिझु रह शान्त ।
बँधे पङ्ख काँटे से अलि के जब पाटल में नया वसन्त ॥

५

कीर्ति शैल कुल की वज्राहत, राघव दलित सिन्धु की थाह ।
राहु ग्रसित नभ की मूर्च्छित द्युति, विधि कृत आत्मा का मृदु दाह ॥
तुहिन पात मर्दित पद्माभा, क्षत उड्ड की आभा द्युस्फीति ।
विधवा मिथ यह मख की शुचिता असुर तिरस्कृत खड़ी सभोति ॥

६

निकषा पर कस, लोक तुला पर तोल रहा नारी का सत्व ।
विषम परीक्षा की ज्वाला में पिघला शुद्ध हेम नारीत्व ॥
मानव बिना विषरण मानवी, प्रिय बिन आज प्रेयसी चूर्ण ।
पति के बिना विलखती पत्नी, नर बिन नारी हुई अपूर्ण ॥

७

विधवा की क्लेशित करुणाकृति, उड़ा अङ्ग का किशुक रग ।
बाह्य वसन्त श्री तुहिनाकुल, भीतर जलता स-रति अनङ्ग ॥
दैत्य प्रताड़ित स्वर्ग कीर्ति सी नयनों की शुभ कान्ति मलीन ।
तप्त ग्रीष्म की सूखी सरिता तड़फ रहे है जिसमें मीन ॥

८

नारी की दुर्बलता, उसका शुचि स्नेह अपराजित मोह ।
 उसकी दृढ़ता कर सकती टिक उनके हेतु काल से द्रोह ॥
 तन्नैतिकता, मानवता के सुख, दुख उभय सनातन सद्य ।
 हिम, ज्वाला दोनों पर खिलता उसके अपनेपन का पद्म ॥

९

मति विक्षिप्त, आत्म विस्मृति सी, तेज नशे सी गति विधि हीन ।
 उजड़ी मधुशाला सी सूनी, क्षय ग्रस्त नाड़ी सी क्षीण ॥
 अनभ्यस्त विद्या सी निष्प्रभ, टिट्ठिभ दल विनष्ट वन प्रान्त ।
 किसी सकाम कर्म की द्रुति सी विधवा मन में अमित अशान्त ॥

१०

नारी की रस रुचि अबला है, उसकी मति सबला, स प्रकाश ।
 इन दुर्बल चित्रों में केवल विलसित मन का मृदु विश्वास ॥
 व्यक्ति विन्दु के तन्त्र चक्र में रस उपासना इष्ट गृहीत ।
 आराधना साधना-मूलक, उसके हास रुदन उपनीत ॥

११

श्वासों से जो तनिक छूट कर सहसा गया कण्ठ में फूट ।
 अन्तर में क्षण एक सहम, रुक, आकर गया अधर पर रुठ ॥
 चिर अतृप्ति का अमिट अपरिमित गया तृप्ति के पल में बीत ।
 स्वयं सृष्टि की लघु गागर से छलक बहा ! जीवन संगीत ॥

१२

कर शृङ्गार अतों भावों से, तन, जन मन की ममता तोड़ ।
 शीतल चिता रचित चिन्ता की जड़ताओं का ईधन जोड़ ॥
 जलती व्यक्त वियोग अग्नि कर आत्म योग से विधवा शान्त ।
 बार बार दुलराती - ध्याती, हृदयस्थित सतत स्मृत कान्त ॥

१३

अधरों पर अतीत मदिरा का ढल मल मुक्ताहल अनिमेष ।
 है अनङ्ग पूजन का चन्दन नयन कोर में अब तक शेष ॥
 दीर्घ तृषा सी, दुर्बलता सी, अगम उपेक्षा सी निरुपाय ।
 एक विवशता सी विधवा है युवती, जीवित भी मृत प्राय ॥

१४

गा पायी थी अभी न जिनको कितने ही ऐसे सङ्गीत ।
 असम्पन्न कितने उत्सव है, अनुपलब्ध वय पर्व पुनीत ॥
 कितने अमृत कलश है बाकी लिया न जिनका कण भर स्वाद ।
 अभी न इस तक आ पायी मधु सुख के दिन सपनों की रात ॥

१५

इसके मन की कामधेनु रे ! चढा न पायी पय की धार ।
 निठुर पुजारी बन्द कर गया शिव मन्दिर का काञ्चन द्वार ॥
 कल्प हेम बल्लरी सु जिसका जिस सुर पर चढ़ने को फूल ।
 भङ्ग हुआ वह उसकी इसके किसलय पर मुट्ठी भर धूल ॥

१६

मिट्टी पर यह ज्योति फेकदी कुहु ने कर राका शशि भग्न ।
 ग्रह निगलित दिनकर की द्युति यह कण्ठ छिद्र सूत गिरी विषण्ण
 मुसङ्गीत का सौंदर्य से रस के क्षण मे विषम वियोग ।
 विछड़ गई है लहर सिन्धु से, नष्ट स्वर्ग सौरभ-संयोग ॥

१७

काँटा तिलक, रज्जु बहनी है अश्रु बाट, भ्रू आश्रय वेत्र ।
 धर्म तुला कलत्र की जिसके दोनों पलडे है दो नेत्र ॥
 तोल तोल निधियाँ का करती सुर बाजारो मे व्यापार ।
 उडु मुद्राओं से नभ भरती-धरती पर माणिक नीहार ॥

१८

अन्य भजन, अष्टाङ्ग योग से कठिन साधना विषम वियोग ।
 निर्वासित होता समस्त से रस उपासना का न सुयोग ॥
 प्रति रस, लय, भावों का विनिमय अविकृत निज में करता शोक ।
 मधुर लोक सम्पुट मे विधवा पीती रहती वह आलोक ॥

१९

उर नभ पर शत शरद इन्दु सी चितवन किरण कदम्ब बखेर ।
 प्राण कुमुद वन विकसित करती आर्त चकोर नयन की ढेर ॥
 उन्नत जीवन की आश्वासित परम तुष्टि अव्याहत शान्ति ।
 सङ्घर्षों की मणि चोकी पर विधवा संस्कृतियों की क्रान्ति ॥

२०

दे पाते कङ्काल न हम, तुम चेतन भी कर रहीं प्रदान—
मधुर समन्वय शक्ति भक्ति का निज में कर तुम बनी महान ॥
प्रलय और परिवर्तन में भो रहती अविकल आत्म विभोर ।
अग्नि धारा पर वह चलती हो अविदित अग्नि दिशा की ओर ॥

२१

शकुन्तला सा भाव, तेज भैमी सा जिसमे रति सा अनुराग ।
सावित्री सा सत्य, सती सा त्याग, ऊर्मिला सा अनुराग ॥
विवश उत्तरा सी प्रिय के सह ले न सकी जो अग्नि समाधि ।
भव उपाधियो से घिर कर भी रहती निरुपद्रव निरुपाधि ॥

२२

विधवा को प्रफुल्ल जीवन के मित मंगल पल है अनुभूत ।
रखती प्रिय प्रसाद सा जिनको निज मधुर स्मृतियों से पूत ॥
इसने उस प्रिय में पाया निज आत्मा का सम्पूर्ण प्रकाश ।
वह तो गया सुरक्षित इसमे जाने वाले का विश्वास ॥

२३

नारी की यह करुण मूर्ति है अर्धक्षत इसका अनुराग ।
विधवा की टूटी वीणा में मिल कर रोते चौंसठ राग ॥
घातों, आघातों प्रतिघातों सघातों की भंभावात ।
अभिशापो से उत्पीड़न से रँग देती है काली रात ॥

२४

उसकी हँसी छीन कर जाने कहाँ ले गया है दुर्देव ।
जग सप्रीति यदि रुदन छीन ले आत्म लीन वह रहे सदैव ॥
प्रभु में मिल पति देव ! विभु हुए यह करती अपना विस्तार ।
रुग्ण, दरिद्र, अपाहिज निर्बल में करती उनका सत्कार ॥

२५

एक छोरे उलझा है भू पर बँधा एक अम्बर से कोर ।
ऋर ग्रहों की कर्म कील से बँधी बधू स्व नियति की डोर ॥
लौट रहे धन बरस बरस कर यह निराश सी पल्लव पसार ।
स्वाति बिना यमुना पर प्यासी खड़ी गगन की ओर निहार ॥

२६

सु संस्कार, शिष्टाचारों का सदाचार का शान्त प्रकाश ।
 इसके शुभाचरण में रहता आत्म बोध मय व्यक्ति विकास ॥
 आर्द्र चीर सी पीर लपेटे खड़ी धीर विरहाणव तीर ।
 जितना नीर नयन में बढ़ता उतनी यह लखती गम्भीर ॥

२७

आरोहावरोह संसृति के जीवन के उतराव चढ़ाव ।
 निखिल लोह धेरे समाज के जन के मन के भाव प्रभाव ॥
 सह कर बात धात पद्मिनी खिली लोक गज गुण्ड गृहीत ।
 उसमे बन्दी अलि गाता है आत्म विभोर मुक्ति का गीत ॥

२८

हम विराट चेतन विग्रह में कर न सके पूजा सम्पन्न ।
 इसने खारी अश्रु कणों का अर्थ चढा हरि किये प्रसन्न ॥
 हम न जिन्हें उनही के वपु में जान सके रह निकट निदान ।
 मानव की नश्वर काया में उसने पहचाने भगवान् ॥

२९

हँमने वालों का कोलाहल राने वालों का कुहराम ।
 धूम धाम आने वालों की जाने वालों की गति क्षाम ॥
 ऊँचे भवनो के बेभव पुर, निर्धन कुटियों के लघु ग्राम ।
 स्वप्न स्वर्ग के सत्य धरा के दे पाते न इसे विश्राम ॥

३०

होठों में ही स्वर बन्दी है घूँघट में ही सीमित राज ।
 अभी कहाँ सङ्कोच हुआ कम, हटी न मित मुख पर से लाज ॥
 हार जीत की, मिलन विरह की, मधुर प्रणय की रस अनुभूति ।
 प्राप्त कर सकी अभी कहाँ वह गृहिणी पद की परम विभूति ॥

३१

युग के कपट घूँट में लगते स्वर्गिक रस निधियों के दाव ।
 इसकी दिव्य सुधा का करते ग्राहक मदिरा लय में भाव ॥
 कण कण को पत्थर कर पथ जब लेते दुष्ट चतुर्दिक रोक ।
 तब तनु का प्रकटित प्रति कण से कोटि नृसिंहों का आलोक ॥

३२

करते समय प्रेम माखन सी उसे निभाने में है लोह ।
होता ऊर्ध्व ध्येय पर उसके प्रति पग का अखण्ड आरोह ॥
खेल खेल में उत्पन्न सा कर कर से पकड़ प्रपरिचित हाथ ।
भारत की ही विधवा है जो तजे न मरने पर भी साथ ॥

३३

कला मान करने की उनको शीघ्र मना लेने में दक्ष ।
हुई न थी वह मधु अपाङ्ग से भेदन कर लेने में लक्ष ॥
अभी अपटु थी वह करने में हाव भाव लीला व विलास ।
इन्द्रजाल फैला सकता था अभी न उसका कोमल हास ॥

३४

जटिल जटाग्रों के संघट सी सिल पर विकट घटाएँ घेर ।
आती सदा गिराती बिजली जाती शिर पर शिला बखेर ॥
जग का प्रेम माँगता आता जाता करता प्रबल विरोध ।
प्रेम अनिर्यासित इस तनु का लेता निखिल भुवन को शोध ॥

३५

कुञ्चित कुन्तल घन कोरक की कोरों पर है प्रलय कृशानु ।
आतप छोड़ हुआ अस्तङ्गत तम में अरुण विन्दु का भानु ॥
रोम स्पन्दन, मन की धड़कन, नयनोन्मीलन में निष्प्राण ।
अपने पग पग पर करती है वह अपने शत शत निर्वाण ॥

३६

सूख रहा है बिन माली के विधवा के मन का उद्यान ।
खिची चतुर्दिक इसके जल की-ज्वाला की रेखा अम्लान ॥
अति दुरूह दुस्तर पथ पर चल आदि अन्त तक एक समान ।
सुतनु सृष्टि में अमृत वृष्टि मयि सभी दृष्टि से पूर्ण महान् ॥

३७

अविनश्वर अन्तर चेता का चिन्तन मय चैतन्य अथाह ।
इसकी रुधिर शिराग्रों में है जीवन मय निखिलात्म प्रवाह ॥
इसके ही पोषक तत्वों से पुष्ट प्राणियों के व्यक्तित्व ।
प्रलयङ्करी प्रसन्न रहो तुम, तूमसे सबके सत्त्व महत्त्व ।

३८

रत निष्काम कर्म यह करती, इसका है वैराग्य यथार्थ ।
है विधवा में ज्ञान भक्ति मय, मङ्गल मय सात्विक परमार्थ ॥
आस्था मयि-मर्यादा में रत आत्म - निष्ठ आनन्द विभोर ।
अपनाती करुणा मयि विधवा आध्यात्मिक पथ रस में बोर ॥

३९

कुछ दिन पहले एक अपरिचित लाया सहसा शैशव छीन ।
आज एक अज्ञात गया रे उसका यौवन बना मलीन ॥
वह न बधू है अब न सुता ही, माँ का पद भी हुआ न पास ।
एक मानवी की संज्ञा में उसके मन का शेष प्रकाश ॥

४०

सोख न जाती धरा, न पीती पवन, न करती ज्वाला दाह ।
किसकी बल्ली ले पाती फिर इसके व्यथा सिन्धु की थाह ॥
तूफानों के सान्ध्य वेणु में सुन बाधाओं के मधु राग ।
उच्छ्वासो की बाँध बुण्डली नाच रहा इसवा सुधि नाग ॥

४१

परम सत्य था प्रेम उभय का ज्योतिर्मय, सुखमय संसार ।
प्रिय में था सङ्गीत अपरिमित, इसमें रुचि, सौन्दर्य, अपार ॥
कोमल कान्त-कल्प प्रतिभा का श्रुति रहस्य गायक रस सिद्ध ।
कवि तो रहा न, उसकी चेतन कविता सी यह लोक प्रसिद्ध ।

४२

एक ओर फूजी सन्ध्या है, एक ओर सुर धनु अभिराम ।
पड़े फुहार चमकती विजली, इधर उधर फिरते घन श्याम ॥
एक ओर उडु-भाँक रहा शशि, भरे सरसि कूजे खग वृन्द ।
वर्षा सी विरहिन विधवा के आर्द्रानिल भूले अरविन्द ॥

४३

यह अमृतियों के मेला में, चाहों की प्रदर्शिनी मध्य ।
विषय वासनाओं के पण में, मदनोत्सव, खेलों में बाध्य ॥
फिरती उस दर्शक सी जिसका मुषित दृव्य, खोया मणि हार ।
विधवा का सब ध्यान समिट कर है केन्द्रित पथ पर अबिकार ॥

४४

मेघ सुरों की चपलाञ्जलि में संकल्पार्थ ओजता नीर ।
मन्त्र पठित धारा-प्लावन से होते मग्न धरा के तीर ॥
इसकी आँखों के जल में है किसका पुरश्चरण, अभिचार ।
उर में जितनी आग धधकती दृग में उतना जल का ज्वार ॥

४५

अन्धे पति के परम भाव में रही सदा लोचन कर बन्द ।
वनवासी पति की सेवा में वन वन भटकी विगतानन्द ॥
जीवित रही प्रवासी पति के पथ आजन्म विछा दृग कोर ।
मृत पति की एकान्त साधना करती है अब आत्म विभोर ॥

४६

इन्दु बदन के कोरे धूँधट पट के उद्धाटन का पर्व ।
नष्ट हुआ रे ! जीवन घट का चिर सञ्चित ताजी रस सर्व ॥
व्यर्थ धूलि में डुलता जाता अतिथि अर्चना का मधुपर्क ।
स्वर्ग प्राप्ति के शुचि प्रयास में हाथ पड़ा यह कैसा नर्क ॥

४७

लोह पुरुष आतङ्कित जिनसे, जहाँ शस्त्र शर कुरिऊत प्राय ।
अडिग हिमालय सी सहती सब अल्प आयु की यह मृदु काय ॥
तिमिर आगमन पथ पर जिसके दृग सजते दीपों के द्वार ।
चिर विश्वास मयी की ममता क्षण क्षण थकती उसे पुकार ॥

४८

धूलि उड़ रही, पङ्क जम रही, भग्न भवन मिट्टी के ढेर ।
उगी वन्य दूर्वास्मृतियों की दुख वट रहा अश्रु दल गेर ॥
पड़े एक दो भिक्षु हृदय के आशा के चीथड़े लपेट ।
पुण्य प्रणय का दीर्घ खण्डहर निज में विधवा खड़ी समेट ॥

४९

विधवा के कपाल पर किस विधि लिखा वज्र से उग्र विधान ।
किया ललित माखन निर्मित पर आच्छादित अङ्गार वितान ॥
मलय लता अहि मध्य, पङ्क पर विकसित करने का राजीव ।
जपा खिलाने का कण्टक पर, विधि की यह रचि बड़ी अजीव ॥

५०

बाकी रहा विश्व में, घर में, अपना कहने को जन कौन ।
 शत शत नापों स्वर संकुल में उसका एक अकेला मौन ॥
 यहाँ न जीने का आश्रय है वहाँ न मरने के आसार ।
 इधर समर्पण पन्नगी निशा है उधर घघकने दिन अङ्गार ॥

५१

श्वासों के मन्दार, पलक के पारिजात से पन्थ पगार ।
 कुंकुम का अभिषेक मोतियों का आनख शिख कर शृङ्गार ॥
 प्राणों के सङ्केत, खोजती प्रिय पग चिह्न दृष्टि सुकुमार ।
 अर्चित करती प्रति स्मरण पर अनुरागावर्ण रस कल्हार ॥

५२

दो दिन की प्रवास यात्रा मे प्रिय विरहित होती प्रियमाण ।
 दृग'पर नीद, अधर पर जाग्रति, क्षण क्षण मूर्च्छित रहते प्राण ॥
 वाट जोहते दृग पथराते, खड़े खड़े पद होते श्रान्त ।
 आज सृष्टि के प्रति स्पन्द मे निज छाया मे रहती भ्रान्त ॥

५३

योग क्षेम, प्रेम मय, हिम मय, हेम कमल सा सक्षम रूप ।
 नव यौवन, लावण्य सुधानिधि भुवन विमोहन अंग अनूप ॥
 अन्तर ज्वलित पड़ी उसकी रुचि जैसे बिना खड़ग की मूँठ ।
 प्रेमी, रसिक, हृदय की मीठी लगन पी रही विष का घूँट ॥

५४

व्यथित मलिन वदना कृशांगना, पाण्डुर वर्णा, बिखेर केश ।
 अलङ्कार से रहित अंग सब, अस्त व्यस्त घूसरित वेश ॥
 मुख सिन्दूर रहित सूना है, विरस चरण बिन यावक लेख ।
 बिना चूड़ियों के कर खलते, विरस नयन बिन अञ्जन रेख ॥

५५

मानव के विशाल मन्दिर में इष्ट देव की चेतन मूर्ति ।
 वितरण करनी जो दर्शक को दर्शन भर से दिव्य स्फूर्ति ॥
 जिसमें आनख शिख बहती नव सञ्जीविनी सुधा की धार ।
 आज उसी के इलक्षण मर्म पर कसक रहा है विधि का वार ॥

५६

संस्तुति के हित में है नारी विधि की सर्वोत्तम-प्रिय सृष्टि ।
इसकी रचना से प्रकटित है उस विराट की व्यापक दृष्टि ॥
नारी शुद्ध-शक्ति है, शिव है यह जग उसका व्यक्ति विलास ।
उसके सुन्दर को वह जाने जिसमें उसका जगा प्रकाश ॥

५७

सावन भादों की सरि नाविक अलबेला मन में अति चाव ।
सन्ध्या के भुरमुठ में हीरक चप्पू ले सोने को नाव ॥
इसके जादू में खोया सा क्रमशः खे लाया मग्नधार ।
इबा वह, यह खड़ी धार पर बाँध हृदय से उसका प्यार ॥

५८

निर्यासित, निष्काम कर्म का-करना-परहित में परमार्थ ।
सरल कहाँ है निजोत्सर्ग से साधित करना पर का स्वार्थ ॥
निखिल शक्तियों की निकषा है-परम-प्रेम-अन्तिम पुरुषार्थ ।
नारी ही उनसे कृतार्थ है नारी से ही वे चरितार्थ ॥

५९

मरु के तृषित अधर को देकर स्वर्ग सुधा हिम चषक स्पर्श ।
महोत्कर्ष है दिया तृषा को पिला प्राण का सब निष्कर्ष ॥
रवि किरणों की मञ्जूषा में मिलन निशाओं की सौगात ।
कौन ले गया सबल बन्द कर इन्दु पिटक मे मंगल प्रात ॥

६०

नारी हृदय तड़फ तारों से पूछ रहा अनिमेष अशेष ।
मेरे मन भावन की छवि का नभ के किस पथ पर उन्मेष ॥
दोषा-दिन की धर्म तुला पर अपना बिखरा वैभव तोल ।
नव वसन्त से पूछ रहा मन अपने नव यौवन का मोल ॥

६१

जब समीप था प्रिय अलबेला भीतर बाहर था बस एक ।
जब से दूर हुआ आँखों से बिखरे उसके रूप अनेक ॥
धरती पर अम्बर के नीचे प्रतिमा सा वह लघु आकार ।
आज समाया सा लगता है उसमें यह विराट संसार ॥

६२

इसका सुख दुख महा काव्य का कवि का सृजन पदार्थ महार्घ ।
है पूजार्ह सुतनु के तन मे मानवीय पूजन का अर्घ ॥
यह अतीत प्रिय की स्मृति मे चिर आप शेष है अपने पास ।
अपना दे अस्तित्व सजाया उसके जीवन का इतिहास ॥

६३

दंशन कर पलटा हो अहि ज्यों पय फेनिल वह तल्प प्रसार ।
ज्वाला के विस्फोट लिये शत खुला पड़ा है शयनागार ।
द्वार घोर हिंस्र मुख सा वह तिमिर उगलता सा लघु दीप ।
महि पर वह विधवा है लुगिठत जैसे बिन मोती की सीप ॥

६४

अति उत्सुकता, वह अजस्र सुख, वह अदम्य मन का उत्साह ।
लुक छिप कर वह सकुच लाज मय आने जाने का सुख बाह ॥
कितने स्वागत शत अभिनन्दन, जीवन का संगीत अशेष ।
प्राज व्याघ्र वन मे सुरभी सी शयन कक्ष मे करे प्रवेश ॥

६५

पृथिवी का तमिश्र घूँघट जब देता है दिन नायक खोल ।
कंकुम किरणों से रँग जाते दिग्बाला के अरुण कपोल ॥
अग्नि मिस 'श्री' उडु के अन्याक्षर करती निशि स्वपत्र सवाह ।
पढ प्रभात पुलकित विधवा की सरस्वती भर उठती आह ॥

६६

सूक्ष्म, स्थूल, विदित, अविदित, की ज्याताप लये हे इसके नेत्र ।
घर के भीतर घर के बाहर व्यापक है नारी का क्षेत्र ॥
मधुर बाह्य, भीतर सुन्दर है, निम्न धवल, ऊपर अति स्वच्छ ।
हम इसकी महिमा गरिमा से बनते महिमावान् व तुच्छ ॥

६७

प्राण वही भंकृत, उत्प्लावित, यही पहुँच हम आत्म विभोर ।
चिदानन्द घन रस मे देती हमे हमारे पन को बोर ॥
नारी की अनन्त शोभा का कण कण मे है अमृत विलास ।
इस प्रकाश दर्शन की सक्षम आखे दिव्य न मेरे पास ।

६८

जब अरण्य वासी ने पाया इस प्रमत्त प्रमदा का प्यार ।
निज अच्युति के दृढ़ घेरे में उठा दिये ऊँचे अम्बार ॥
नये नये सुख में वे रुचि कर मोहक थी उनकी दीवार ।
दम घुटता नारी का ऐसे आज बने वे कारागार ॥

६९

सुख, सहयोग, विनोद सु दुर्लभ, उत्सव सत्कृत्यो से दूर ।
हँसने की है इसे न अनुमति, गा सकता न हृदय भर पूर ॥
खाने, सजने का निषेध है, कहने सुनने का न विधान ।
रोक लगी आने जाने पर, मिलने जुलने पर है बान ॥

७०

जिसे मानने की न निज स्थिति, लोक परिस्थिति, जन मत शुद्ध ।
जो समष्टि के लिये असम्भव, आत्मा, रुचि, मन, प्रकृति, विरुद्ध ॥
उसे त्याग संगत, विवेक मय गठित करो तुम नया समाज ।
प्रति अधिकार मयी, स्वतन्त्र हो जीवन, जाति, देश में आज ॥

७१

मधुर मानवी का धरती पर अभिराजित चरित्र मन्दार ।
सन्त हृदय के अलि दल के दल जिस पर घिर करते गुञ्जार ॥
आत्म विवेक सूर्य किरणों से नव पराग परिमल पट खोल ।
रहा भाव मलयानिल उसकी सुयश सुरभि श्वासों में घोल ॥

७२

मयी सर्जना, नया संगठन, निखरे शुद्ध, समृद्ध स्वरूप ।
सांस्कृतिक शृङ्गार नया हो, नव जन नव युग के अनुरूप ॥
दिध्य व्यक्ति की सीमाओं का निखिलाखिल में हो विस्तार ।
देवि ! तुम्हीं से उद्धारित हो नयी क्रान्ति का सिंहद्वार ॥

७३

विधवा का यह भाव व्यक्तिगत, आध्यात्मिक, निज का अभिराम ।
यह अनन्य आचरण प्रेम का प्रकृत, असाधारण का काम ॥
नित अनुकूल प्रतीप केलि मयि है विचित्र लीला, लय धाम ।
नारी ! तुम अथाह सागर, मैं तट से करता तुम्हें प्रणाम ॥

७४

स्थिर स्वधर्म पर, दृढ़ स्वशील पर, शुभ स्वरूप मे रही विराज ।
जितनी शान्त, तपोमयि, है वह उतना ही अनुदार समाज ॥
नारी की साधना-श्रेय के पथ पर कर उत्पात हटात् ।
अवसर पा कतिपय खल छल से अपहृत कर ले गये बलात् ॥

७५

सबका समुचित मूल्याङ्कन हो, सब पर पड़े समुज्वल दृष्टि ।
सभी प्रेम के अधिकारी हौं जन जन पर करुणा की वृष्टि ॥
जीवित रहें शान्ति से सुख से, लगे किनारे सबकी नाव ।
योग क्षेम वहन करने निज नारी का है आविर्भाव ॥

अपहृता

पञ्चदश सर्ग

१

निविड निशीथ, नगर पथ निर्जन, नीरव निखिल नृलोक ।

दूर सघन-उपवन के गृह में किये क्षीण आलोक ॥

अलस गात, उन्निद्र, नत नयन, सजी सेज के पास ।

सिकुड़-मही पर सभय अपहृता - बैठी - विवश, - उदास ॥

२

धैर्य वृषभ, प्रणगिरि, धृति हरि पट, कच अहि, कुल वट मूल ।
छवि रज, वय मृग अजिन, क्षेम शशि, दुख सरि, ताप त्रिशूल ॥
शुचि डमरू, भय भूत, मौन यति, लाज उमा अमिताभ ।
काम दहन - त्रिनयन दर्शन का जय जन पावन लाभ ।

३

मुरभाया अवगुणित सित मुख कुञ्चित दोलित केश ।
शिष्ट कुलों का शुभ, स्वाभाविक, सादा, सुन्दर वेश ॥
शुचि, शालीन, शील, शोभा मयि, सात्विक, सलज, कुलीन ।
असम्भाव्य - अनुचित घटना कृत, निरुल्लास, लय हीन ॥

४

दीप्ति, कीर्ति, आयु धन, बल मति, श्रेय प्रेय के योग्य ।
लखने, सुनने, अनुभव करने, चिन्तन में उपभोग्य ॥
गन्धस्पर्श, रूप, रस, वपु, वय, सात्मा, सगति, सयास ।
लोह वेष्टन में मनु चिति का चित्र ले रहा श्वास ॥

५

सुस्पन्दित - आकुलित, हृदय का अञ्चल रहा पसीज ।
रोम रोम में हुए अकुरित दुश्चिन्ता के बीज ॥
लहूँ चाटती रही चिपक कर जोक भीति की फूल ।
कान्ति कुरल चञ्चल छवि जल में तैर रहे शत शूल ॥

६

ऋषि घृत तृप्त, दग्ध खाण्डव कर, त्रियुग प्रतीक्षा लीन ।
मन्त्र पूत, कर अर्चि सम्बरण, कृश तन, धूम्र विहीन ॥
श्वासस्पन्दित - द्युति लहराकुल, रद क्षीरोधि हिमानु ।
सुमधुर अधरो पर त्रेता की सोती यज्ञ कृशानु ॥

७

नख से लिख, कर से तृण क्षत कर, बलि रेखा खिच भाल ।
रसना कढ़ कढ़, श्वास दीर्घ हो, भुक भुक, कर धर बाल ।
खिसक शीर्ष पट, रणित वलय हो, रद अधरों को रेत ।
नयन अनल-जल मय खुल मुँद कर करते कुछ सङ्केत ॥

८

सौभग शशि, छवि रम्भा, गुणमणि, वयमद, गति मातंग ।
तन तरु, शान्ति सुधा, स्वभाव गौ, यश कज, दृष्टि कुरग ॥
आत्म हनन कर सके न विष भी लिया साथ ही छीन ।
है जलाग्नि मयि मथित हतश्री, यह समुद्र सी दीन ॥

९

एक कुहक सी-चल छलना सी, कलना सी पी ताप ।
इन्द्र जाल सा फैला देती अरुण राग मयि भाप ॥
माया सी छाया सी चञ्चल, अञ्चल सी खुल डोल ।
रही कोर काजल मे मन के घन खण्डों को घोल ॥

१०

ज्योहर दग्ध अमर रूपसिन्धों की हिरण्य छवि कान्ति ।
बलिदानों के पुण्य रुधिर से नवस्नात युग क्रान्ति ॥
योग सिद्ध-तप पूत-मखोज्वल, ऋषि आश्रम की श्रान्ति ।
वह मजीव मनु धर्म युद्ध के मृत शूरो की शान्ति ॥

११

श्वासों ने जितना पाया था चिर नूतन निर्माण ।
आँखों मे पारहे आज वे यह दुःखद निर्वाण ॥
उत रातो मे चमक उठी थी जिन प्रातों की जीत ।
भुलस रहे इन घातों से उन बातों के संगीत ॥

१२

मथित क्षीर सागर से जिसने लिये तीन अवतार ।
लक्ष्मी रम्भा और वाष्णी सबके श्रेय विचार ॥
प्रथम सत्य को अपर रजोगुण तम के लिये तृतीय ।
दैत्य पुरी मे विवश बन्दिनी है क्यों यह स्वर्गीय ॥

१३

त्रिगुण भेद से नर नारी है विभु के कदु मृदु रूप ।
सृजन और संहार रजस्तम, पालन सत्य स्वरूप ॥
प्रथम युग्म नर की विगेषता, वधू अपर की खान ।
पुरुष शम्भु-विधि, सुन्दर नारी हरि की मूर्ति महान ॥

१४

स्निग्ध रेशमी पट सा जाता साहस खिसक निदान ।
 पकी मञ्जरी सा भड़ पड़ता मन का धैर्य अजान ॥
 शिखरों से प्रयात सी फिसली आशा खाकर चोट ।
 तड़फ उठा विश्वास विकल हो सजल पलक की ओट ॥

१५

सुख दुख की गहरी घाटी को पाप पुण्य की धार ।
 अभय, सजय, जो उल्लंघन कर जन्म मरण के द्वार ॥
 जीवन को पा सकी सहज ही दे अपना अस्तित्व ।
 इसका सत्व विरोध विघ्न में पाने खड़ा महत्व ॥

१६

कुल देवो को द्रवित पुकारा, कुल शपथो का गान ।
 धर्म दुहाई दे - हारी कर घर वालो का ध्यान ॥
 आश्वासन की ग्रन्थि काट कर खुला प्रतीक्षा पाश ।
 शिथिल नाश की इस सीढ़ी पर धीरे चरण विन्यास ॥

१७

बिना इन्दु, उडु, बिन दीपो की, साँभ रहित, बिन प्रात ।
 यह न उजेली और अँधेरी, ऋतु विहीन, बिन वात ॥
 प्रेम, प्रतीक्षा, आशा, सुख, दुख, मिलन, विरह अज्ञात ।
 फँस गई इसके सपनों पर यह किस युग की रात ॥

१८

श्रद्धा का ममता का रस घट मुग्ध प्रणय का पार ।
 प्रतिभा का वैभव, प्रभाव, भव आभा का आगार ॥
 सान्द्र विभा वय की भावों की शोभा का आधार ।
 लुटा जा रहा प्रेम मयी की महिमा का भण्डार ॥

१९

काँप उठी पहुँचल सी सुन कर बाहर द्वार समीप ।
 सिहर उठा रोमाञ्चित तन ज्यो वायु विकम्पित दीप ॥
 धीरे से खुल पड़े अर्ध पट, उठा हृदय में झूल ।
 ध्वस्त यज्ञ वेदी में जैसे पदाघात से झूल ॥

२०

ऊपर प्रेत, धरा शव नीचे, धूम्र असित, घट - वन्त ।
मरघट के सूखे निशि तरु की अल्प हरी सी वृन्त ॥
भटके जीवन की जीने की तरस रही सी श्वास ।
वह नर की इस नैतिकता का सहमा मा उपहास ॥

२१

कटि का सिंह, चिकुर का मणिधर, आकुल लोचन मीन ।
है अचेत ग्रीवा का शुक शिशु, गति मराल अति दीन ॥
वाणी की पिक मौन, वक्ष के चक्रवाक पर हीन
विलख रही अन्तर की कुररी, मन के मोर मलीन ॥

२२

सन्ध्या जहाँ वरण शशि करती भर तारो में गान ।
जिसके स्वर्ण कलश से करते प्रात निशा मधु पान ॥
अमलताश जिस नृत्य पुलक से पाता कुसुम विकास ।
उठी सशङ्क यथा वारिद कण छू धरती की बास ॥

२३

जान सका जो इसे न जग में वह सबसे अनजान ।
तमोगुणी आसक्त जीव को कब इसकी पहचान ॥
पदक्षेप पर ऋतु, कटाक्ष पर गीत, गन्ध, रस रंग ।
उसके धवल पुण्य के सुख की छाया मात्र अनंग ॥

२४

चिता बना कर दहक उठा मृत आँखों में उद्दास ।
होठों पर निज अस्थि चुन रहा दुख से विह्वल हास ॥
रूप नदी के तीर बनाता यौवन गहन समाधि ।
दीपक सी जगने को जिस पर बैठी मुख तल व्याधि ॥

२५

वीर इसे पूजित कर पाते मणि काञ्चन संयोग ।
पुरुष अधोगामी होते कर पशु बल यहाँ प्रयोग ॥
स्वयम्बरा की वर माला है हमें बनाती धन्य ।
सबल वरण का सबल हरण का करते पाप जघन्य ॥

२६

कामुक की आँखों से फूटी विष की मैली धार ।
 विषयोत्तप्त श्वास से बिखरे नारी पर अंगार ॥
 इस कुदृष्टि की गरल वृष्टि में कलप उठी 'शुभ दृष्टि' ।
 स्वर्ग द्वार कर भंग घुसी मनु घोर निरय की सृष्टि ॥

२७

सजग ऊर्ध्वगा कुण्डलिनी सी अगम शून्य के पास ।
 स्वरस्फोट कर महा बिन्दु का करती सहज प्रकाश ॥
 खोल सुषुम्ना, प्राणस्थिर कर, अन्तरमुखि गत द्रोह ।
 व्यक्तात्मा यह निरख सकुचती-बद्ध जीव का मोह ॥

२८

मधुर प्रलोभन, प्रोत्साहन शत, प्रणय वचन मधु हास ।
 भय, ताडन, कटुता, कुयत्न भी, जब ला सके न पास ॥
 उद्यत हुआ बलात्करो से करने वह उपनीत ।
 क्रोध ज्वलित, अति क्षुधित, आर्त वह बोली आर्द्र, विनीत ॥

२९

हे ! महान् पूर्वज के वंशज, हे ! अग्रज ! हे आर्य्य !
 मस्कृति स्रष्टा, अग जग द्रष्टा, तत्त्वों के आचार्य्य ॥
 तुम पिचाच वन रहे पुरुष से कर मर्यादा भग्न ।
 नारी के स्व आत्म चिन्तन में मानव बनो न विघ्न ।

३०

लाज वधू की कुल का गौरव, नारी का सम्मान
 जिस अञ्चल में छिपा हुआ तुझ मानव का निर्माण
 लोक प्रतिष्ठा, जन की निष्ठा, युग का नीर क्षार :
 उसे विषैला करने हे ! तुम मत हो व्यर्थ अधीर ॥

३१

प्रधर मुक्त कुछ कहने-जब रद दर्शित-सित अरुणाक्त ।
 मनु स्वस्थिता-गिरा कान्ति प्रभ-हंस सान्ध्य नभ व्यक्त ॥
 सुर सतरङ्गे धनु प्रत्वञ्चा पर कर चञ्चु निपात ।
 लोक सत्य को नूतन स्वरों से करता हो प्राणिपात ॥

३२

अनुनय - विनय - भर्त्सना क्रन्दन, बन्धन, भीति, प्रकाश ।
 विफल हो गये नारी सम्भव कोमल कठिन प्रयास ॥
 क्रूर वृत्ति निश्चरियों में बहु खोज थके लघु प्राण ।
 त्रिजटा दीख पड़ी न एक भी दे सकती जो आण ॥

३३

ज्वाला की प्रतीक धूआव्रत, चिंगारी का राग ।
 कपूररङ्कित गृह कपास का, अङ्गारों से फाग ॥
 जिसमें बडवानल, दावानल गिरि ज्वालास्थिति मूक ।
 जूझ रहा मृणाल कर से निज मनुज मधुज का टूक ॥

३४

बीते दिन अतीत की राते ऋतुओं के आनन्द ।
 शैशव का यौवन का विस्मृत गत जीवन स्वच्छन्द ॥
 आई याद पुरानी बाते हुआ किसी का ध्यान ।
 निकली आह ठेम खा मूर्च्छित हुआ आत्म सम्मान ॥

३५

जीभ लपलपाते खाने को काम - धेनु का मांस ।
 हाथ उठ रहे कर देने को कल्प लता का नाश ॥
 सुर पूजा के स्वर्ण थाल को चले चाटने श्वान ।
 मबल रहे दानव करने को देव सुधा का पान ॥

३६

हिन्द - महा - सागर की देवी, विन्ध्याचल की साध्य ।
 गंगा यमुना धौत चरण चिर हिमगिरि की आराध्य ॥
 काश्मीर कुंकुम से अर्चित - महि कृत छवि से पुष्ट ।
 सर्ग - विसर्ग - संस्कृति वन्दित नारी सर्वोत्कृष्ट ॥

३७

छवि पर क्रुद्ध, रुष्ट यौवन से क्षब्ध भाग्य को कोस ।
 असन्तुष्ट जीवन से, जग से, स्वस्त्रीपन पर रोष ॥
 विरत निशा पर, खीज मार से, परवशता से स्तब्ध ।
 हरी घृणा कर व्यक्त, पुरुष प्रति घोर अवज्ञा दग्ध ॥

३८

धन के मद में दृष्टि न रहती, सुख के मद में ध्यान ।
 कुल के मद में दया न रहती, जन के मद में कान ॥
 यौवन मद में भावी चिन्ता, छवि के मद में ज्ञान ।
 विद्या मद में विनय - शक्ति के मद में पर सम्मान ॥

३९

शम्भु शीर्ष पर, विष्णु हृदय में, जिसका नित्य स्थान ।
 नत हो - जय कह - जिसे मनाकर होता रण प्रस्थान ॥
 जिसकी भाव विरल रेखा पर बने लोक परलोक ।
 शोक ! तड़फता वधू कोकनद क्षय नर का आलोक ॥

४०

उलभे कर कपित कुञ्चित कच, क्षत भूषण परिधान ।
 उर पर नख रेखा रुधिरान्वित, युग कपोल व्रणमान ॥
 कपित कर, निर्जीव चरण मृदु, तने रोम बन मेख ।
 अंग अंग पर उभड़ चले सब क्रूर कर्म के लेख ॥

४१

नाविक, नाव, लहर-सरि, तट सी, भँवर कभी आधेय ।
 पथिक कभी पथ, श्रान्ति, पथ भ्रम, लक्ष्य कभी पाधेय ॥
 वह लख पड़ी, तेज सी, तम सी, अतनु कभी सहगात ।
 क्षत संघर्ष ज्वार में प्लावित दोलित तन जलजात ॥

४२

गमन पर्व, आने के उत्सव, रहने के त्योहार ।
 प्रहर मिलन का, तिथि वियोग की, मधुर प्यार का वार ॥
 हँसने की बेला, रोने के अवसर सुख संयोग ।
 गान मुहूर्त, कल्प शान्ति के, नष्टोत्कर्ष सुयोग ॥

४३

शीघ्र फूल, सीमन्त खनक कर, रो रो थके पुकार ।
 हृदय हार में चिलक रहा चिर उसका हाहाकार ॥
 करकी भटक वलय सिसके, पद पायल लठीं कराह ।
 कदि कुँहनी की ठेस किङ्किणी मौन हुई भर आह ॥

४४

भरती जो अशोक में स कुसुम नई वसन्त वहार ।
स्वर्ण बना पाया न लोह को पारस चरण प्रहार ॥
उस पिशाच के पशु बल से थक वज्र करों से छूट ।
गिरी यथा द्युति रेख खीचता तारक जाता दूट ॥

४५

यौवन की अचेत निद्रा सी विषम त्रास से भग्न ।
चिन्ता की हिम कुलिश रात्रि मे इन्दु कला कुहु मग्न ॥
शत सुर धनु युत अष्ट दिशा मय वर्षा का दिवसान्त ।
इम मिष पतित हुआ स्व नियति के नक्षत्रों का प्रान्त ॥

४६

युग की थाती, देव धरोहर, संसृति की सौगात ।
मानव का चिर ग्रहण, समर्पण नारी का अवदात ॥
यौवन का उल्लास, लास छवि का, जीवन की जीत ।
गिरने की आहूँ से उसकी क्षत अखण्ड सझीत ॥

४७

यह अस्फुट सम्पुट के पृष्ठ सी, घुट घुट घट सी फूट ।
लुट लुट अपने ही पनघट पर लट सी जाती छूट ॥
करवट ली करके भुर मुट मे तन का पुरट बखेर ।
लिपटी किङ्किणि तट घेरे के पट में अम्बर घेर ॥

४८

पांशु पङ्क से हृद्ध होगये मधुर सुधा के स्रोत ।
दूट गया इस दुख स्फोट से उर का पीवर पोत ॥
नीराजना ज्योति वत् जग मग हो होठों के पास ।
मिह भाग पाने शृगाल ने किया जघन्य प्रयास ।

४९

रोकू थाम जिस धूमधाम की कर न सके युग याम ।
रुका न जो परिणाम किसी से थके अमित संग्राम ॥
अम्बर का मुर - अवनी का नर जिसमे चिर आहूत ।
तिरष्कार कर उमी काम का सहमी यह अवधूत ॥

५०

पर सुख, पर यश, पर उन्नति से—पर गुण गण से द्वेष ।
 पर का लक्ष्य भ्रष्ट कर ने में रत जो जन अनिमेष ॥
 पर के धन पर मोह, रूप पर, कुल पर जहाँ कुटुम्बि ।
 नियति नियत क्षण मे हरती उम खल नीयत की सृष्टि ॥

५१

वह तमिस्र का गेर आवरण प्रलय मेघ सा उग्र ।
 करती रही क्रान्ति उसमे घिर यह विद्युत् सी व्यग्र ॥
 भटक करो से, पटक जानु बल, कर गिर वसन निरस्त ।
 सर्प कुण्डली सी समिटी को लगा खींचने व्यस्त ॥

५२

धर्म द्वार पर - साधु कुटी पर, मधुर प्रकृति के पार ।
 केवल आर्त पहुँच पाते है इस नारी के द्वार ॥
 चूम सका दे प्राण शनभ का जल जल प्रेम अगाध ।
 लुब्ध मक्षिका के पर कैसे ले वह ज्वाला बाँध ॥

५३

शिर-कर-पद, नख, दन्त वार कर दूर हुई दुत्कार ।
 दिव्य सृजन-पालन के स्थल पर आ बैठा संहार ॥
 अश्रु तरल, नत नयन, कोर से बरसाती अङ्गार ।
 खड़ी रही वह मूर्त्ति शम्भु के क्षुर त्रिशूल की धार ।

५४

एक अकेली सहज दुर्बला पहरे पर है आग ।
 जितनी सुन्दर मणि रक्षक की उतना भीषण नाग ॥
 मृदुल कवि हृदय ही पा सकता नारी रस गम्भीर ।
 स्वर्ण पात्र में ही कढ़ता है केहरिणी का क्षीर ॥

५५

मदिरा की बोतल प्रहार से करके उसे अचेत ।
 मुक्त द्वार कर निकल गई वह कज्जल गृह से द्रवत ॥
 उस प्रचण्ड धधकी ज्वाला को सका न कोई टोक ।
 जाती हुई वीरिणी को श्री को कौन सका है रोक ॥

५६

संतसंकल्पों मय सन्तों की यह दैवी सम्पत्ति ।
इम प्रज्ञा तह को रख सकती कहाँ आमुरी वृत्ति ॥
यह सत्पुरुषों की महिमा मयि दर्शिन आत्म विभूति ।
कही कीच पर पड सकती है पावन यज्ञाहूति ॥

•

५७

ऊपर नीचे इधर उधर लख निज पग ध्वनि से भीत ।
मन की मूक वासना सी जो सब तकों को जीत ॥
भगी जीर्ण अञ्चल से ढकती कुम्हलाये जलजात ।
उम नीरव रजनी सी जिसके नभ पर उड़ती घात ॥

५८

घन मे द्युति, निशि मे शशि, फणि मे मणि, गिरि शिखर तुषार ।
वन मे उत्स, हँस यमुना पर, शिव शिर मुरसरि धार ॥
कञ्चन रेख कसौटो पर यह नीलाम्बुधि मे सीप ।
पथ के तम मे वह मनु कज्जल छादन के तल दीप ॥

५९

प्रात किरण मृदु वात मलय की आ उतरी नभ पार ।
कुमुद वन - श्री सी पहुँची जब यह निज गृह के द्वार ॥
आने लगे स्वजन सब रवि से ताप प्रताप बखेर ।
जाने लगे उमी सम करते तम कज्जल का ढेर ॥

६०

शुभ्रासित, वसनाञ्चित, शिथिलित, कला मुकुल जलजात ।
मन्द उषा किरणों से झिलझिल है कुमुमो सा गात ॥
भीनी सुरभि अङ्ग अञ्चल की श्वासों का मधु धूम ।
सत्य स्निग्ध आत्मबल उसका रहा विजय से भूम ॥

६१

सत्य, धैर्य, सुख, जो इममे है वह न अन्य के पाम ।
धर्म इसी के मन का प्रहरी, कर्म इसी की श्वास ॥
श्रेय प्रेय की मूर्ति ध्येय की यह आत्मा की ज्ञेय ।
महा शक्ति ज्योतिर्विभूति यह नारी सदा अजेय ॥

६२

दृष्टि - भाव - निज प्रति कुत्सित लख, मुन जन जन के व्यङ्ग ।
 मकुच - धीर गम्भीर सुदृढ वह बोली नत सोमङ्ग ॥
 'व्यर्थ' लाञ्छित क्यों करते हो, व्यर्थ रोपते पाप ।
 शुद्ध पवित्र लोंठ आई है उचित न यह अनुताप ॥

६३

जान बूझ प्रत्यय न कर सका भुक्त समाज का स्वार्थ ।
 उसे सत्य की जिज्ञासा क्या ? कछ भी रहे यथार्थ ॥
 इष्ट किसी विधि भी जन जन पर छाया रह आतङ्क ।
 पर महतों के शीष दिठोंना बन कर शेष कलङ्क ॥

६४

कृपा धनद, छवि काम, बाहु महि, मुख गशि, अग्नि प्रताप ।
 शक्ति पवन, यम कोप, तेज रवि, गिरा भारती आप ॥
 चित्त धर्म, गुरु बुद्धि, दृष्टि श्री, कुक्षि पूर्व, उर जिष्णु ।
 लोम लोम से सास्त्वित्व सुर आत्मा से शिव विष्णु ॥

६५

कृष्ण नाम हो अशुचि न अघ से, मल से अग्नि अपूत ।
 पङ्क प्रसूत कमल न चिता की रज से शम्भु अदूत ॥
 तम से दिनकर मलिन न जैसे नारी किसी प्रकार-
 हो सकती अपुनीत न जग मे ज्यो गंगा की धार ॥

६६

हुई उपेक्षा से न सती की क्षति न हका उन्मेष ।
 शकुन्तला को भुला बिगाड़ा क्या उसका लवलेख ॥
 निर्वासिता मैथिली का मिट सका कौनसा इष्ट ।
 परित्याग से दमयन्ती का क्या हो सका अनिष्ट ॥

६७

बिना चन्द्र के निशि, सुवास से रहित वसन्ती फूल ।
 त्विषा हीन घन, नलिनी बिन सर, बिना लहर के कूल ॥
 गीत बिना त्यौहार, विहग बिन विपिन, देह बिन रूप ।
 गृह बिन दीप तथा नारी बिन रहती सृष्टि कुरूप ॥

६५

विफल निबल चिर निन्दा करते सफल सबल यश गान ।
 उपयोगिता-सुधा नारी की जाने साधु सुजान ॥
 अविश्वस्त, अस्थिर, असन्तुलित, अपने प्रति अति भ्रान्त ।
 नारी प्रति शङ्कित वे जन जो स्वयं स्व से आक्रान्त ॥

६६

प्रेम साधना भाव व्यञ्जना, सत्य, मधुर व्यवहार,
 बल्लु वाक्य, सद्गुणोत्कर्ष सह हृदयार्पण, सत्कार,
 सदाचार, पुरुषत्व, कलान्वित कर स्निग्ध उपचार,
 मानवीय विधि से पाये हम स्वानुरूप का प्यार ॥

७०

कुछ प्रभाव रखता न भाव पर लोकतन्त्र षड़यन्त्र ।
 मर्त्य स्वर्ग के नय - शासन से प्रेम सदैव स्वतन्त्र ॥
 किसका कहाँ नियन्त्रण मन पर, आत्मा कब परतन्त्र ।
 नारी ! सदा निमन्त्रित जन से तब सम्मोहन मन्त्र ॥

७१

उच्च जाति, दिव्य वपु, गुरु कुल, विपुल शक्ति, गुण कला ।
 प्रेम मुलभ न रूप से वय से साम्राज्यो से अल्प ॥
 हिंसा, हेम, अहं हाला से मिले मोह अक्षेम ।
 विनय समर्पण युक्त प्रेम से ही सम्भव है प्रेम ॥

७२

प्रेम दीक्षा की गुरु नारी जिसके शुचि सौजन्य ।
 कठिन साधना, तप से पाता वह निधि जीव अनन्य ॥
 प्रेम आत्मा है परमात्मा प्राप्य सार परमार्थ ।
 जिसने किया, जहाँ, जब जिससे, वे सब धन्य कृतार्थ ॥

७३

नारी ! यह उपकार करो जो मर्यादा के द्वार ।
 पार न करे स्व मार - मोह - मद - सत्व स्वरूप निसार—
 दृष्टि, वचन गति, से तब उमड़े पावन पारावार—
 जिस पर जागे कवि सहस्र मुख श्री-हरि शीर्ष पधार ॥

७४

टूटा मोह, द्रोह घट फूटा, मोंम बन गया लोहं ।
 पंगु कर चला द्रुत गति से गिरि शिखरों का आरोह ॥
 साध्या चल दी शरद विभा सा छलकाती मणि गात ।
 बिन सहचरी विश्व लगता बिन दूलह की बारात ॥

७५

भीतर बाहर ध्यात हो रहा जिसका सरस प्रकाश ।
 कण कण में नत्तित है जिसका संज्ञामय उल्लास ॥
 परम पुरुष की आत्म-शुक्ति की जी मुक्ता उद्दाम ।
 उस अनन्त शाश्वत नारी को मेरे अमिट प्रणाम ॥

सहचरो

षोडश सर्ग

१

मानव को सहचरी सु - साध्या,
चिर अभिन्न हृदया प्राणाधिक ।
अध्येया, धर्म्या, आत्मीया,
काम्या, जयति नृ कल्प कामधुक ।

२

वशीभूत संश्लेष दशा मे—
 हरि-विश्लेष दशा मे नर को ।
 उभय स्नेह वचन से करती,
 छवि से प्रथम, कृपा से पर को ॥

३

‘पुरुषकार वैभव’ मयि जाया,
 प्रकट ‘पुरुषकारत्व रूप घन ।
 सर्व शब्द वाच्या प्राज्ञी यह—
 अकलङ्कामृत - धारा शोभन ॥

४

वेदात्मा यह जगन्मोहिनी,
 योषिद्विचर निजेष्ट सेवा रत ।
 इस योषा की परिचर्या कर,
 जीव मात्र है सुकृत सदुपकृत ॥

५

सब कुछ सुनती, मिश्रित करती,
 द्वेष दोष अघ हरती वामा ।
 स्वगुणो से ससार बदलती—
 ध्येय - प्रदा लोकाश्रय रामा ॥

६

क्षमा - मयी, प्रणिपात प्रसन्ना,
 अनघा, सुमना क्षान्ति रूपिणी ।
 सततानुग्रह - सम्पन्ना स्त्री,
 द्रुत प्रसादिनी, अखिल अग्रणी ॥

७

निज कर्माह फलद प्रिय के प्रति—
 प्रथम कर्म निग्रह से वारण ।
 सत्य सन्ध शीला वनिता का,
 अपर अनुग्रह का सन्धुक्षण ॥

८

पति सुत से अवगत अधिविन्ना,
उभय मध्य मे सदा अवस्थित ।
सम्पादन, संयोजन करती—
युगल पक्ष तन्मिथ श्रेयस्थित ॥

९

अनुग्रहैक स्वभावा प्रमदा,
है अशरण्य शरण्या, आर्या ।
ग्लानि क्लेश दारा कटुस्नुषा,
शाश्वत स्वधा आर्या, वर्या ॥

१०

विघ्न विटप वन हेतु सुन्दरी,
कठिन लोक मन शैल सुन्दरी ।
यह सुन्दरी, सुभग सर्वाधिक,
आनख शिख सर्वाङ्ग - सुन्दरी ॥

११

अनवद्या, सकलेष्ट कामदा,
सदनुरूप सौभगा, नन्दना,
सुधैर्य्य प्रदा, दिधिपु, परिध्येया,
है नृ - आत्म बल्लभा अगना ॥

१२

मानवीय धर्मों की पद्मा,
मानव धर्माचरण द्योतिका ।
जीवन धर्म फलाढ्य कल्प तरु,
नारी, धर्म-स्वरूपयोजिका ॥

१३

शैव शक्ति, वैष्णवी भक्ति यह,
कान्ता निखिल अनन्त विभार्णव ।
यह मानिनी चित्त मे अपने—
सहज समेटे अति मानव भव ॥

१४

हे त्रिपाद त्रिभुवन त्रिकाल की—

रमणी श्रीङ्गा कला क्षेत्र भृश ।

सङ्कल्पाढ्या, जीवाराधित—

यह कामिनी अखिल रस मानस ॥

१५

अवपु मिलन अद्वैत, द्वैत जब—

दो सदेह सत्ता विनिमय चिर ।

द्विगुण द्वितीया से द्विक सर्जित—

आलम्बन आश्रय के सान्तर ॥

१६

निज अभिमान, मान गौरव की,

नव निर्माण, विकास, व्यास की ।

यह पुंभूमि सृष्टि सुषमा की,

महिमा, गरिमा, गुण प्रकाश की ॥

१७

प्रति प्रतीप - दर्शिनी तभी तो,

निज प्रिय के प्रतीप लक्षित कर ।

तीक्ष्ण श्लक्ष्ण बाण रक्षण में,

उसे अनुक्षण रखती दृग पर ॥

१८

जिसकी चाह चराचर को चिर,

जो विलास शीला सतवन्ती ।

लाढ़ चाध ललिता सुलालिता,

ललना की लालसा वसन्ती ॥

१९

अविकल कला जनित वय पेशल,

नर शशि, यह शशि द्युतिमणि द्रावित ।

तेज किरण उत्सारित रस मय—

वह रवि, तुम कोपना द्युमणि सित ॥

२०

मसृणाङ्गी अबला यह रुचि से,
 विश्व विजयिनी 'अ' बला कमला ।
 विमलास्था मयि, अति समुज्ज्वला,
 सरला रिश्वरः सबला यह चपला ॥

२१

तप से, त्रिबलः भाग्यः, पुण्यों से,
 वधू मधुर मानव के घर मे ।
 इसके रस बन्धन मे बँध कर,
 मुक्ति नाचती आत्माजिर मे ॥

२२

वाम लोचना, वाम नयन कर,
 सरति साध्वी जब निहारती ।
 पुरुष कपाल पटी तज भीता-
 वाम हुई निज नियति भागती ॥

२३

महा भाव सुख सार मूर्ति यह,
 निखिल साधनाओं की निकषा ।
 शुचि अङ्गना अङ्ग पुष्कर मे,
 भुवन रूप इन्दीवर विकसा ॥

२४

वाम लोचना के लोचन मे,
 वाम अतनु अविराम अवस्थित ।
 होता चितवन से प्रति मन में,
 एक अनेक रूप धर जीवित ॥

२५

भीरु सदय पर सुख वाञ्छा रत,
 सदा भामिनी निभूत भाव घन ।
 मत्त - काशिनी में रहता चिर,
 उज्ज्वल रस रत्नाकर प्लावन ॥

२६

वर वर्णिनी, उत्तमा महिषी,
 परम सत्तमा देव सम्पदा ।
 प्रति क्षण, प्रति ऋतु मे प्राणी को,
 तदनुकूल जीवन विभूति दां ॥

२७

पाणि - गृहीता है यह पति की,
 पाणि गृहीती - पति की है प्रिय ।
 यह पत्नी स्वामिनी स्व गृह की,
 सती समस्त सुधा का सञ्चय ॥

२८

सह धर्मिणी स्वकृत विभाजिका,
 सहयोगिनी, सदैव स्वधव की ।
 सुचरित्रा, सु - सहानुभूति मयि,
 जनी अधिष्ठात्री है भव की ॥

२९

बीज रूप यह रुचिर स्थाली,
 माली-मधु ऋतु, सब इसका श्रम ।
 सुतनु सुरस से शिञ्जित, कुसुमित,
 सफल स पल्लव काव्य कल्प द्रुम ॥

३०

परम ज्ञान निगुणी, शिल्पी गण,
 भक्त, कलाकारो के मन से ।
 नित्य नवार्विभाव प्रिया का,
 होता ध्यान मनन चिन्तन से ॥

३१

नर प्रति तत्त्व मध्य शिव परिणति,
 शक्ति, विकास, शोभना के गृह ।
 प्रेम विषय नर, तनु प्रेमाश्रय,
 वह रस राज, सु महाभाव यह ॥

३२

नित्य आत्म - राग धर्मा की,
राग सुधाकर की किरणों कृत ।
प्रेमी उर स्फटिक मणि होती-
प्रणय प्रणोदित - सित ममुल्लसित ॥

३३

सुष्ठु कान्त स्वरूपा तरुणी,
है द्वादश - भूषणाश्रिता नव ।
'धृत षोडश शृङ्गार' सु जिसके,
ममुदय बिना परम शिव है शव ॥

३४

यह अनुभूति नृरस - मयत्व की,
परम स्फूर्ति ममास्वादन की ।
प्रिय सुखैक तात्पर्यता वलित,
स्वाभाविकी शक्ति रस घन की ॥

३५

ऋजु 'असमोर्ध्व चमत्कारिक कृत
उन्मादित स्नेह निर्यासित ।
प्रेम पराकाष्ठा - निष्ठा की,
अनिग प्रतिष्ठा सी अभिराजित ॥

३६

भक्ति जनित आनन्द जीव का,
अद्भुत् लीला कृत ईश्वर का ।
द्वयोनयेया 'दिव्य' 'ह्लादिनी',
एक स्रोत यह दो निर्भर का ॥

३७

सीमन्तिनी , सुचारुदृष्टि ,
कादम्बिनी सारभरिता सी ।
है नितम्बिनी नयन बन्दिनी,
सुखस्पन्दिनी रुचि सरिता सी ॥

३८

प्रतिभा, आभा, रस, स्वरूपता,
 शक्ति, सुधा, स्थिति, गुण, महिमा की ।
 ले पाती न स्व थाह आप निज,
 रुचि विभूति, गति मन, परमा की ॥

३९

यह सुचरित्रा पतिव्रता तनु,
 कुल पालिका, कुलीना कमला ।
 स्वयम्बरा, पति पत्नी छवि से,
 कृत सपत्निका जयति निर्मला ॥

४०

गुह्या विद्या स आत्म विद्या,
 ग्रह आधार शक्ति सह सङ्गम ।
 निज विशुद्ध सत्त्व में कर यह,
 होती ब्रह्म मूर्ति परमोत्तम ॥

४१

अविनाभाव पुरुष नारी मे,
 बाह्य द्वैत, अद्वैतान्तर मे ।
 पुरुष मूल की नारी में स्थिति,
 तदनु मूल प्रस्थापित नर में ॥

४२

आते प्रभु जिससे विग्रह में,
 अनुभव, लक्ष्य, भाव, अनुमिति मे ।
 उनकी निज माया यह समुदित,
 तच्चैतन्य स्वभावस्थिति मे ॥

४३

कथित ब्रह्म जिसकी विभु तनुभा,
 उसके अन्तर की आभा में ।
 यह सच्चित् का महानन्द घन,
 बिलस रहा अप्रकृत प्रतिभा में ॥

४४

निखिल शक्ति, विद्या, की जननी,
अखिल तत्त्व रस सार अंगिका !
अमित विग्रहा शुद्ध सत्त्व विभु-
नारी मूल स्वरूप राधिका ॥

४५

महतान्दोलित नव वर्षा मे,
भित्त स्फुट कोरक कदम्ब की ।
मधुपावृत शाखा सी रसिल,
मूर्ति-हृदय धृत भुवन बिम्ब की ॥

४६

दिव्यालोक रसोक, लोक निधि,
कृष्ण कोकनद निभूत मञ्जरी-
की, स्निग्ध अविकल्प सुरभि सी,
यह मानस निकृञ्च मे उतरी ॥

४७

इसके स्मरण स्फुरण, स्मर मे,
परिष्कार तीनो तत्त्वों का ।
नारी मे सम्पन्न सदुत्सव,
एक साथ सब कर्तृत्वों का ॥

४८

देवि ! तुम्हारे गुण लीला, वपु,
रस, वय, भाव स्वभाव, स्थिति के ।
अमित नाम सम्बोधन छवि के,
शक्ति, तत्त्व, श्रुति प्रीति प्रभृति के ॥

४९

स्व लक्ष लक्ष दृष्टि कोणों से,
नारी तुन्हें और ईश्वर को ।
एक अनेक रूप विधि से लख,
प्रत्यय किया अनन्त स्थिर को ।

५०

तव मुक्ता पाने जितना हम,
चले, मिला उतना गहरा जल ।
आज थके से मरु पर बैठे,
दृग में भर आये मुक्ताहल ॥

५१

गगन कण्ठ पर तारक स्रग में,
उग्रो गरदिन्दु सुधा घन विलसित ।
ब्रह्माण्डो की मणिकाग्रो में,
नारी ! तुम सुमेरु सी शोभित ॥

५२

तव मङ्गीत प्रतीक्षित जीवन
मखमल मे आवरित वाद्य सा ।
तुम उममे स्वर बन गूजो हे !
नव प्रभात जागरण माध्य सा ॥

५३

तव दर्शनोल्लसित ध्रुव शिशु कवि,
करने को उत्सुक विनय स्तुति ।
निज श्रुति शङ्ख स्पर्श सदय दो,
जिससे हृदयोदित हो श्री-श्रुति ॥

५४

नारी प्रभु की भक्ति कृपा मयि,
जिसका अवस्थान मानव मन ।
तत्प्रभाव प्रकटित होते चिर,
भाव नृसिंह फोड़ निज पाहन ॥

५५

काया मे कुण्डलिनी सी है,
समृति में नारी की स्थिति शुभ ।
ऊर्ध्व गमन से त्रिविधोन्नत जन,
जिसके निम्न गमन से निष्प्रभ ॥

५६

अमृत रूप संगार इन्दु की,
षोडश कला प्रवृत्ति परक, नर ।
उसकी सत दशी निजी कला,
निधि प्रवृत्ति पथ की नारी चिर ॥

५७

लय, सौन्दर्य, गन्ध, वर्ण, वय,
प्रेम, रूप, रस, भाव, भारती ।
निभृत स्थाली सी नारी में,
दीप्त नृभव की विभव आरती ॥

५८

सर्वोत्कृष्ट सु तत्त्व ह्लादिनी,
उसका भाव - महाभाव तद् ।
है नारीत्व शस्य सार घन,
सुतनु कमलिनी सी जिसके हृद ॥

५९

विधि विमर्श का वह विवेक मय,
विविध विचार भाव विग्रह सा ।
उसमे यह नारी निर्णय सी,
विश्व उभय का संग्रह गृह सा ॥

६०

दास्य, सख्य, वात्सल्य, युक्त यह,
नारी का माधुर्य सुधाकर ।
'विस्मय' निशि मे मधुरस द्युतिसह,
करुणा की नीहार रहा भर ॥

६१

नारी के उत्सव गोपुर पर,
प्रेम प्रदीप, विश्व नौबत सा ।
तोरण प्रकृति, स्वर्ग शुभ घट सा,
मुक्ति लेख, ज्ञान चित्रित सा ॥

६२

स्वागत में प्रभु स्वयं खड़े हैं,
 कर मे ले सब निधियों की सज ।
 विछूँ पावड़े सा मै उस पर,
 जो शिर पड़े सुतनु की पद रज ॥

६३

मेरी वाणी मे प्राणों मे,
 तुम शृङ्गार किये मुस्काती ।
 क्या परिचय दूँ देवि ! तुम्हारा ?
 बान न कुछ कहने मे आती ॥

६४

सजग अर्थ तुम ऋषि काव्यो की,
 शब्द ब्रह्म की चेतन ध्वनि हो ।
 सब रेखा रंगों की आकृति,
 शेष शिरस्य अशेष द्युमणि हो ॥

६५

आया तो था द्वार तुम्हारे,
 मै दरिद्र कुछ पा लेने को ।
 पर पहले ही तुम कह बैठी,
 अपना सब कुछ दे देने को ॥

६६

कल्प वृक्ष बहु तब प्राण मे,
 द्वार बँधी है कामधेनु शत ।
 कोप भरा चिन्ता मणियो से,
 विनत कुबेर जयति नारी नित ॥

६७

निरुपहार युग वाद उपस्थिति,
 मेरा रिक्त पाणि अभिवादन ।
 होगा क्या स्वीकार दीन का,
 बिना दीप अक्षत का पूजन ? ॥

६८

प्रेम विग्रहा, मुक्त सनातन,
दिव्य शक्ति संघट्ट सान्द्र तन ।
सत्य, शुद्ध, भुवनैक मूल हे ।
नारी तुम प्रति तत्त्व सार धन ॥

६९

सादर भेट रहा जीवन, तन,
शुचि प्रसाद सन्तोष रूप दो ।
मन, यौवन, उपहार ग्रहण कर,
आज शान्ति स्व स्मृति स्वरूप दो ॥

७०

हे ! आलोक राशि कोकनद-
शोक सुधा रस ओक ल्लादिनी ।
लोक मर्म वादिनी - नादिनी,
जयति अभय आयुध प्रमादिनी ॥

७१

श्यामल, सजल, प्राण जलधर घिर,
बरसाता मन पर मुक्ताहल ।
फूटे सुख के कोपल अगणित,
खिली एक तुम पहली शत दल ॥

७२

सुतनु स्वरूपोपेक्षा पूर्वक,
केवल रूपाश्रय बन्धन कर ।
मूर्ति सुयोग रूप माध्यम से,
शुद्ध स्वरूप प्राप्त करना चिर ॥

७३

आश्रय आलम्बन दोनों में,
नारी तो निचिश्त नारी है ।
पर हो प्रेमाश्रय रस भावित,
निजपन तज नर भी नारी है ॥

७४

महिला भद्र सुकुल की यश मयि,
 सामाजिक स्वरूप रूपामित ।
 देवि ! व्यक्तिगत जीवन मे भी,
 भिन्न विविध सम्बन्धो मे स्थित ॥

७५

निज प्रति भाग, विटप, किसलय में,
 कल गन्ध ज्यो विभु सम मिश्रित ।
 त्यों नारीत्व निहित कण कण मे,
 कर्त्ता - क्षेत्र - क्रिया - वारण मे ॥

— — —

महिला

सप्तदश सर्ग

सती १

(क)

भारतीय संस्कृति के वाङ्मय में
विभूति मति, सुमति
विश्व इतिहास की - संसृति की मौलिक कृति,
कीर्ति, श्रेय, गौरव, अभिमान की
दिव्योत्सर्ग मयि - पुण्य भूमि,
भुवन चरित्र चिन्तामणि, चूडामणि,
जिसके पारिजात चरण
मर्त्य से, अमर्त्य भुवन भर से
देव दनुज किन्नर से
यहाँ तक कि हरि हर से
पूजित प्रतिष्ठित सतत,
शक्तियाँ त्रिभुवन की
काल की प्रचण्ड गति
जिससे पराजित,
पानी पर पोत वत्
त्रिभुवन सभीत शिथिल

काँपता लहर सा,
ऐसी महान्, माहात्म्य मयि भारत की
महिमा मयी है
सती

(ख)

सहसां स्वतन्त्र शान्त राष्ट्र पर
आक्रमण अरि का प्रचण्ड हुआ
चतुर्दिक घिरा दुर्ग, भागे जन इधर उधर
सम्भावित था न समर,
फिर भी समस्त पुर वासी युवक वृद्ध
सैनिक रण कला सिद्ध
अस्त्र शस्त्र से समृद्ध
निकल पड़े त्याग घर
युद्ध हुआ प्रलयङ्कर
काम आये सभी नर
पूर्ण हुआ जौहर
होना पर चाहती पति शव साथ मता - एक
किन्तु शव तो शत्रु घेरे मे - दुरुहतम पहले मे
रोकने से रुकी नहीं - माहम से वेग से
कर मे करबाल लिये
ढाल भी कराल लिये
विशाल अश्व पर सवार मुद्रा मुख लाल किये
मानो काल भैरवी मुक्त निज बाल किये,
वीर वेश, रक्त निलक, तेजोमय विशद भाल,
गई कठिन ब्यूह तोड़ शत्रु के शिविर मे,
प्रचण्ड रण चण्डी से नृमुण्ड मण्डित धरा
मीषण सग्राम हुआ, व्याप्त कुहराम हुआ
मङ्गल परिणाम हुआ,
लौंटी पति शव लिये
वीर वधू - महा सती

(ग)

आई पति शव सह निज वृहद् कक्ष में
विधिवत् रचित, सुसज्जित, सुर मोहन जो,

सम्पन्न होती जहाँ आंज ही सुहांग रात;
 कर स्फटिक मञ्च पर देहाभिषेक पति का—
 भूषण, वसन, राग, लेप पुष्प मारार्चन,
 लिटा दिया किसलय दल कोमल नव तल्प पर
 रत्न वलित वसनाच्छादन किया ऊपर से,
 फिर निज करो से रच पच के निर्मित की
 चन्दन से श्रीफल से तुलसी के काष्ठ से
 कर्पूर केशर से चिता अति कला मयी
 द्रुत फिर स्वयं ने निज चाँदिनी से सरसिज से
 तन का उपचार किया, द्विविधि अलङ्कार पहिन
 पोडश शृङ्गार किया नख शिख सम्हाल लिया
 कुसुमों कलिकाओं से, विपुल कल गन्धो से,
 माँग भरी, रच के सुहाग बिन्दु सिन्दूरी
 चरणों मे यावक सु करो मे मंहदी ललित
 बन गई क्षण मे सुहागिनी नई बधू
 प्रेयसी प्रियतम की,
 पति के पदों का फिर पोडशोपचार युक्त
 पूजन वन्दन किया, मुस्करा एक बार
 किया हेम दर्पण मे दर्शन स्वरूप का,
 मुग्ध अभिनन्दन किया
 सादर समर्पित किया,
 प्रणाम युत तल्प पर विराजित हुई अङ्क में
 पति का कलेवर ले मुक्त किया आनन
 निरखा सराहा - भलके दो अश्रु बिन्दु
 बहणी धन खण्ड पर - मानो दो उदय इन्दु
 कोटि कोटि दिन कर सी दीप्त हुई
 देवि सती

(ध)

उठी फिर तल्प से प्रसन्न मुख भाव लीन
 तेज की अरुणिमा से सान्ध्य नभ लगता हीन,
 प्रोक्षण करके नीर सुरसरी का,
 जल फल गन्ध, पुष्प अक्षत से बार बार

पूजन विभोर किया माङ्गलिक चिता का
 उस पर बिछाया फिर मखमली आस्तर इत्र-का भीगा,
 पाटल की कमलों की केतकी सज्जा कर
 पति के शव को सावधानी से राजित किया,
 पुनि गन्ध, पुष्प, फल अक्षत ले हाथ मे
 'अनन्त काल पर्यन्त पति मिले, ये ही
 सकल्प सती ने किया इगो कामना से सबिधि,
 इसके अनन्तर पृथक् स्थापित विविध
 शूपो मे दिव्य त्रयोदश सधवाओं को
 वस्त्राभरण, पुष्प, गन्ध, स्वर्ण मुद्राएं
 अमित मिष्टान्न सादर समर्पित किये,
 प्रार्थना विनत की चरणों मे हरि से
 देव ! मम वायन दान से तुष्ट हो.
 शक्ति दे मुझे सहगमन की कहरामय !
 फिर वस्त्र कोर मे पञ्च रत्न - नीलाञ्जन
 बाँध कर मुक्ता पूरित किये मुख मे
 अरु किया आह्वान अन्तर मे अग्नि का
 प्रणाम कर पूजा कर राजित हुई स्तुति कर
 पति शव ओड धर-चिता पर—
 ज्यो नव सुहागिनी प्रीति मयी
 पति पलंग पर.
 मृत्यु को सुन्दर पवित्र बनाया शुभ
 विवाह शय्या सी सुखद श्रेय मयि हुई चिता
 धन्य धन्य दिव्य सती

(ड)

उधर पीछे से आये दृढ़ दुर्ग की परिधि तोड़
 पीछा करते से आक्रान्ता गए दल के दल
 दुर्ग जन शून्य श्मशान सा धूम्रासित
 चारो ओर पशुओ गिद्ध चीलो की हल चल मय
 मुक्त एक मन्दिर दीख पड़ता था आलोकित
 जिसमे प्रविष्ट हो पहुँचे सब कक्ष में
 जहाँ पति शव लिये चिता पर राजित

बाला शृंगार किये, तन्मय समाधि में
 दृश्य हुआ अद्भुत शक्ति से सती की—
 तेज प्रज्वलित लख हुए सब चमत्कृत
 सकल प्रखलित चरण मौन, निस्पन्द, नमित
 खड़े रहे स्तम्भित सारे समवेत दूर,
 घायल कियत् शेष पहुँचे पुरजन सयास,
 गगन दुंदभी वजी, बरस उठे पारिजात
 अदृश्य दिशाओं में बादित हुए वाद्य वृन्द
 सुन पड़े नर्तित नर्तिकियों के तूपुर नाद
 गूँज उठी विप्रां के कण्ठ की वेद ध्वनि,
 पितरों की आत्मा के दीख पड़े ज्योतिष्कण
 देवों की आशीर्मुद्राएँ झलक रही
 मुखरित स्वर्देवियों की श्रद्धान्वित सत्प्रशस्ति
 सिद्ध वधुओं का विवश, छलक उठा आत्मानन्द
 उत्सव सा दीख पड़ा मन्दिर में चारों ओर
 जिसमें देव मूर्ति सी विभासित सित

शान्त सती

(च)

साल्प संज्ञानुभूति, जागी समाधि से
 एक बार चतुर्दिक् दृष्टि की सौम्य शान्त
 खचित हुई अधरो पर पावन मुस्कान मञ्जु,
 भाल पर नाच उठी किरणें हेम रेखा सी,
 एक बार झुक कर विभोर - आत्मनिष्ठ हो
 कुसुमाञ्जलि भेट सहित पति को प्रणाम किया,
 लक्षित हुआ उसे ब्रह्म रूप चराचर
 लोम लोम भासता स्वरूप मात्र पति का
 कण कण में दीख पड़ी एक छवि एक गति
 त्रिभुवन समेट खड़ा निज में विराट पुरुष
 अधोन्मीलित नयन सुस्थिर नमित दीप्त
 अङ्क हुआ विलकुल निस्पन्द, द्युत - उन्नत,
 स्वास सम्बरण युक्त आकर्षण प्राणों का

करली करों की सँयत दृढ़ बद्धाञ्जलि
 नासिका कोर पर दृष्टि हुई केन्द्रित
 मुद्रा हुई आप्त, पूत, शान्त ऊर्जस्वित,
 दो क्षण रत किया योग - व्यक्त हुई आत्मा,
 मन्द मन्द गति से मन्द सान्द्र पुलक मय,
 उभय पाणि घर्षण किये
 प्रज्वलित कुशानु हुआ
 व्याप्त हुआ तन में तल्प में भवन में
 मलयानिल भपक उठी, लपट उठी प्रलयङ्कर
 महक उठा अग्ररु धूम, सौरभ कर्पूर का
 अचि की चट चट में, स्वर्ग सङ्गीत मधुर
 उन्नत स्फुलिङ्गो पर नर्तित अनन्त रूप
 लक्षित हुआ फिर भेद अग्नि मण्डल को
 लीन हुई क्षण में अनन्त मैं अशेष बन
 रह गये समस्त चकित
 पृथिवी पर भाल टेक मबने प्रणाम किया
 स्वर्ण भस्म शीश धर बोल उठे एक साथ
 नागरिक, सैनिक, गन्धर्व, देव किन्नर गण
 सम्मिलित स्वर में

जयति साधु महासती ।

श्यामली २ (अ)

तन गोरा क्या काला, सुन्दर नीलेन्दीवर मन्दिर रे !
 छवि सागर वपु पर छाया नव पावस रस का जलधर रे !
 किया प्रेम शृंगार कृष्ण रस निशि की काली मुरली में,
 श्यामा हुई श्यामली बस कर कजरारी प्रिय पुतली में ।

ग्राम्या २ (ब)

मरल, शुद्ध, अभीत, श्रमश्लथ,
अहज ब्रीडित, धूँधट मे स्मिता ।
सबल, संयत, सुष्ठु, निसर्गत,
सजग ग्राम बधू यह निश्छला ॥

निरुज, पुष्ट, सुडौल, शरीर है, प्रकृति, भाव, रुचि, स्थिर प्रेम है,
अनघ दृष्टि, मन, स्मित प्राण है। मित न कृत्रिम वेश विचार मे ।
विदित है न इसे कुछ विश्व का, चपलता, छलना, न विलासिता,
लसित जीवन मे अति सादगी ॥ नगर के अभिशाप न है इसे ॥

यह नही रस रङ्गिनि नायिका,
रति, कला, रस का न विवेक है ।
न पटु चालन मे दृग, अङ्ग भ्रू,
प्रपङ्ग है यह शाश्वत मानवी ॥

प्रकृति के उभड़े वन फूल सी, पलित धूलि सने शिशु अङ्ग ही,
लह लहे कृषि के नव धान सी । शिशिर ग्रीष्म कटें बिन वस्त्र ही ।
नव विहङ्गम ग्राम्य वसन्त सी, अधिक बाधक है न क्षुधा, तृषा,
ममुद-मुक्तस अस्फुट भारती ॥ मदन, मोह, विधान समाज के ॥

मित प्रकाश, विकास, न चेतना,
चिर अभाव, अबोध, दरिद्रता ।
विनय, शील, स आर्जब, आर्ष ये,
कथित है निज नागरिकाग्रजा ॥

मु पट, भूषण, राग विहीन भी, सरस, सुन्दर सात्विक, सौरभित,
अति उदार, मनोज्ञ, निसर्ग सी जयति मुग्ध मना तनु ग्राम की ।

नागरी ३

दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

नई वेश भूषा में दर्शित—नव विधि से घन चिकुर प्रसाधित
काया स्वच्छ, परिष्कृत, सुरभित आनख शिख सज्जित समलंकृत
कृश अतन्द्र-गृह-कुल, शीलोचित भद्र, विदग्ध सुसंस्कृत, शिक्षित
अनुशासित, मर्यादित, नियमित दृष्टि, हास, गति, रुचि, मति, संयत

विपुल कल्पना, चिन्तना भरी

दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

कटु समाज घेरे की बन्दी रूढ़ि-पीढ़ियों की चिन्ता रत
लोकाचार, विचार, व्रतों से व्यवहारों, विधान भारान्वित
स्वप्नों की निशि, दिन साधो के ललित भावनाओं से अस्थिर
कला केलि, कौशल, कौतुक मयि अनुरञ्जित, नव रस अर्जित उर

यौवन-रूप-स्नेह अप्सरी ।

दिव्य भव्य यह भद्र नागरी ॥

ऋतुओं के आडम्बर बहु विधि, जिसके सुख, दुख शीत, उष्ण घन
मिलन, विरह के, नटन गमन के ऊपर के बहु विविध प्रदर्शन
छुई मुई सी कोमल कुञ्चित सलज सुशील स्निग्ध - सरस मन
अंग गठन अनंग माव मय ! पय. फेन सा चञ्चल यौवन

छलके गीत रुदन की गगरी

दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

कथा, कहानी, कविताओं की, रसिक नायिका, सविभव, गौरव
युवकों के सपनों की रानी उर उर में जिसका मधुरोत्सव
अग जग की हल चल कोलाहल निखिल आन्ति कृतियों की सम्बल
मानव के निर्वाण, सृजन की आशा, अभिलाषा से उर्मिल

जन जीवन की सुख विभावरी

दिव्य भव्य यह भद्र नागरी

वृद्धा ४

हुई जीर्ण काया, चले टेक लाठी
अवस्था हुई प्राय सौ वर्ष की है
मिटी मोह माया, लगी ईश में लौ
प्रभा पुण्य की धर्म की मूर्ति सी है ॥

गिरा मिष्ट, है सत्स्वभावा, कृपालु
सभी के लिये एक सी प्रीति नीति
स्व के हेतुवाञ्छा, न आसक्ति किञ्चित्
परो के लिये चित्त मे है शुभेच्छा ॥

सुना के कहानी, कथा बालकों को
सजाती नये उच्च सस्कार धी मे
सदाचार के पाठ, देती सचेष्ट
स्वआचार से त्याग, सौजन्य द्वारा ॥

जिसे देख होती स्वत. सत्प्रवृत्ति
कँपे पाप जा सामने आप जी का
मिटे राग, इर्ष्या, मिले प्रेरणा सद्
रहे तीर्थ सी गेह में सिद्ध रूपा ॥

सभी गेह के मानते है प्रभाव
हुई वृद्धि सारी इसी के प्रताप
कहें 'पौत्र बाबा बड़े भाग्यशाली
कहाँ प्राप्त की ये स्व दादी निराली ॥

स्वयं सत्य की साधना सी मुधा सी
तपो निष्ठ है उच्च आत्मा, महात्मा
जगी प्रेम की-क्षेम की योग वर्त्ती
पवित्रोज्ज्वला कारिणी सर्व आत्मा ॥

सभी मोद भोगे, सभी रंग देखे
मह। वृत्ति की दीप्ति है भूरियो में
स्व पुत्रस्तुषा को सभी भार देके
रहे स्नेह से गेह मे निर्गिला हो ॥

शुभाशीष पाते स्वत. लोग प्रातः
परामर्श निष्पक्ष जिज्ञासु लेते
करे लोक वार्ता, न निन्दा प्रशंसा
जपे नाम, गीता पढे, शान्त बैठी ॥

सदा चाहते गेह के छत्र छाया
तिरोभाव की कल्पना भी सताती
बनी है इसी से कुटी स्वर्ग सी स्व
जिये और सौ वर्ष चाहे वधू ये ॥

शिरोधार्य सानन्द होती तदाज्ञा
यथा वेद वाणी, बिना तर्क शङ्का
नवारम्भ कर्त्रो नये कृत्य की ज्यों
सभी सिद्धियाँ हो उसी के कहे की ॥

व्यथा, शोक, चिन्ता न उद्वेग होता
सुने कृष्ण लीला तभी अश्रु आते
नही तो महाधीर गम्भीर है ये
सदा मुस्करातीरहे सौम्य मुद्रा ॥

गृहस्थी सही अर्थ में पद्म सी ये,
रहे नीर में ज्यो अनासक्त मुक्त ।
लसे गेह प्रत्येक वृद्धा सु ऐसी,
यही कामना देवि ! कोटि प्रणाम ॥

बालिका ५

जल जात सी नव जात सुन्दर बालिका यह

१

मधुर किसलय मृदुल नीलोत्पल नयन की
 अरुण पाटल से चरण, शशि से वदन की
 चिकुर कुञ्चित, अधर पर मधुमास उच्छल
 कुसुमिता मन्दार कलिका मातृ मन की
 जन वसन्त रसाल तरु की सारिका यह
 जल जात सी नव जात सुन्दर बालिका यह

२

आप्त पूत सजीव कवि की कल्पना सी
 नियति ! की सर्वाङ्ग सुन्दर सर्जना सी
 धूलि पर मणि मोतियो के प्रात सी डुल
 मुखरिता है स्वर्ग की स्वर वन्दना सी
 भूमि उर पर लसित तारक मालिका - यह
 जल जात सी नव जात सुन्दर बालिका यह

३

चिर अनादि अनन्त का आलोक पहला
 चिर अमर संगीत ससृति का रुपहला
 विश्व के सन्तोष का आनन्द घन सा
 उदित देव विभूतियो का पथ सुनहला
 व्यक्ति के सोभाग्य नभ की तारिका यह
 जल जात सी नवजात कोमल बालिका यह

४

जगत्पति जीवन रसों का कल्प पल्लव
 भावनाओं, कल्पनाओं, स्वप्न का भव
 आत्मा के सत्य का साकार दर्शन
 भव पुटी में चेतना का चिन्तनार्णव
 निखिल लोक स्नेह की रस साधिका यह
 जल जात सी नव जात कोमल बालिका यह

किशोरी ६

विरल पट से मदन मन का छन रहा आलोक,
बस रहा छवि इन्दिरा का सरस इन्दु रमोक ।
खिली प्रणाजिर शरद के प्रात की हिम धूप,
लाज की नव शुक्ति मे भनकिन नव स्फुट रूप ॥

नयन जल मे मीन से मृग चपल द्युति के कौन,
अरुण शत दल आँकता सा छिप रहा भुक मौन ।
कल्पना - सुधि - स्वप्न-निखरे रश्मि सलिल स्नात,
प्रथम परिचित सा पलक मे मोतियों का प्रात ॥

कुतूहल कर शशि किरण सी अरुण शीतल दृष्टि,
वयः सन्धि स्फुटित पावस खण्ड घन सी वृष्टि ।
भन भनाती बीन पर पहली रमीली मीड,
बीन-नृण-आरम्भ मय अज्ञात खग का नीड ॥

अधर गीले, तरल अञ्चल, सजग, लोचन लोल,
सिक्त कुन्तल, चिबुक भीगे, आर्द्र अरुण कपोल ।
लिस रहा लावण्य तन पर ज्योति रिसता भाल,
तिर रही छवि की तरी यह गेर वय का जाल ॥

कुछ नये संकेत उजले उदित नूतन लक्ष्य,
भुक रहा मुस्कान मे - साम्रह सजीला पक्ष ।
श्वाँस में मन्दार कोपल की नई सी वाम,
घ्राण के पहेने वकुन का अधर पर नव न्यास ॥

उठ पड़े जिस ओर पग वह सब अनूप अनन्त,
जहाँ पड़ती दृष्टि विलसित वही चैत्य बसन्त ।
ईङ्गित जिधर प्लावित उधर ही मुखर रस की धार,
बुरकता है रङ्ग सब पर यह किशोर उभार ॥

हो रह लघु मूर्ति का विस्तार जग के पार,
पर चला चिन्तन चराचर मे नई भङ्गार ।
मिलन क्षण सा, विरह कण सा मंदिर अवगत ताप,
गुन गुनाते अधर नर्तित चरण अपने आप ॥

पुण्य पर्वारम्भ, यौवन का निकट ल्योहार—
 ह्री ध्वज स्मर चिन्ह की पुज चढ़ी उत्सव द्वार ।
 पहचानते से पथ चरण, मन पा रहा पाथेय,
 कौन पाये यज्ञ में यह प्रथम पूजा श्रेय ॥

भुकी पलकें नत हुई है नासिका की नोंक,
 सहज छिपने की छिपाने की प्रकट है भोंक ।
 मदन मन्दिर दीप सी शुचि मंदिर मृदु मुस्कान,
 हो चली कुसुमित लता तन की नयन को ज्ञान ॥

एकान्त मे अनुरक्त लुक छिप खोज आत्म विभोर,
 चाहना का मेघ छाया नाचता मन मोर ।
 सुशुचि शिविका पर चढ़ी चल मधु कसक रस वन्त,
 रजत किरणों से खुली रस मुकुल वय के वृन्त ॥

श्वास स्वागत गीत सी, प्रति दृष्टि में आह्वान—
 मसृण पग ध्वनि मे नियन्त्रण, स्वप्न मे अभियान ।
 भर रहा मधु के कलश यह कौन अञ्चल ओट,
 सहज यौवन की विवशता सी हृदय की चोट ॥

मधुर नव शृङ्गार सुन्दर रूप का अभिसार,
 चुरा अञ्चल गन्ध मादक पवन है बलिहार ।
 भ्रू धनुष पर चढ़ रहे अनगिन मदीले बाण,
 सहला रहे व्रण मूक अपने अवश शावक प्राण ॥

कोमल कटु ७

सम्पन्न करती कभी हास, लास, रास क्रीड़ा,
 भगवती करती कभी घोर लीला विध्वंस की ।
 मयूर, हंस, कमलासना सिंह बाहिनी बने,
 रूप अन्न पूर्णा धर लेती भद्र काली का ॥

युवती ८

छूटा भ्रुवों पर धनु सप्त वर्णी
 टङ्कारती चाह गुणाधरो की ।
 फूटे नये रङ्ग, उमङ्ग फूली,
 है अङ्ग मे आज अनङ्ग बेला ॥

फूँकी किसी ने अनुराग वंशी,
 है रोम रोम मुदित मूर्च्छना मे ।
 उत्साह, सु स्फूर्ति, दृढ़ क्रिया से,
 जागा सुधार्णव रव चेतना मे ॥

चाहे 'समर्पण अपनेपने का
 उत्सर्ग पूर्वक करदे किसी को ।
 उत्कर्ष की रुचि, तप - साधना की,
 संघर्ष की मति निखरी हिये मे ॥

चिन्ता, सुखों की यश, मान्यता की,
 कर्त्तव्य, भावी स्थिति धर्म की है ।
 है सत्य का आग्रह भी अनूठा,
 व्यक्तित्व का सुष्ठ विकास इष्ट ॥

नाना कलाएँ, लिपि, शिल्प, शास्त्र,
 विद्या अनेको, रस ग्रन्थ सीखे ।
 कैसे करे सद् उपयोग जो हो,
 सन्तोष एवं स्व प्रकाश भू में ॥

सोचे स्वरूप, वय, विभूति, काया,
 क्षुद्रोद्यमों में न विनष्ट होले ।
 हो राष्ट्र, जाति, स्वजन, आत्म सेवा,
 सम्पन्न हो हेतु यथार्थ कैसे ॥

विश्वास युक्त स शुचि आप्त निष्ठा,
 है खोजती सहज स्वरूपता स्व ।
 आदर्श हो जीवन पूर्वजा सा,
 एकान्त मे स्थिर युवती विचारे ॥

जाने मिले घर वर संग कैसा,
 क्या प्रीति स्वर्ग सृजन हो सकेगा ।
 लेगे मुझे क्या अपना बना वे,
 क्या मैं उन्हें जीत रिझा सकुंगी ?

खोयी रहे कोमल कल्पना मे,
 स्वप्नों मयी प्रावृट की नदी सी ।
 लावण्य लीला रस रूप भाव,
 आनन्द गीतोदधि मे निमग्ना ॥

उत्साह पूर्वक कर लोक सेवा,
 सौम्या, सदाचार मयी सुशीला ।
 पाती समादर स्व स्वभाव द्वारा,
 माँ के यहाँ, जा पति के यहाँ भी ॥

रूपसी ६

आनख शिख साँचे की ढली !
 नील वसन घन मे तन छवि की कौंध रही बिजली ।
 शोभा के वसन्त मधुवन में कुन्तल अलि अवली ॥
 चली हृदय गोरस मटकी भर यौवन कुञ्ज गली ।
 बजे जहाँ रस मुग्ध प्राण की प्रीति पगी मुरली ॥
 मचल रही दृग में रह रह कर अरुण सुरा कुरली ।
 लोम लोम से बरस रही सुख सौरभ की बदली ।
 सुषमा की उपमा न भुवन में नुत्न स्फुटित कली ।
 जय रूपसी - अप्सरा सी चिर कवि कुल यश उजली ॥

दम्पति १०

नैसर्गिका प्रणयिनी प्रिय की अभिज्ञा,
 सम्मानिता सकल से गृह स्वामिनी है ।
 सौभाग्य - योग सब भूरि सराहते है,
 सन्तुष्ट, वृत्त, परिपूर्ण, प्रसन्न है ये ॥ १ ॥
 कान्ता कटाक्ष पति चित्त प्रफुल्ल करती,
 होती विमुग्ध तनु कान्त रसेक्षणा से ।
 राकेन्दु सी समुदिता जन पार्श्व मे स्त्री,
 होता प्रतीत पति सिन्धु तरङ्ग युक्त ॥ २ ॥
 तेतीस कोटि सुर, सात्विक सम्पदाओं—
 का स्वर्ग भूमि पर दम्पति ने उतारा ।
 है गेह मे वह रही सुख, शान्ति, शोभा,
 सन्तोष, गीत, रस, वैभव, की त्रिधारा ॥ ३ ॥
 दोनो परस्पर समर्पित चित्त वाले,
 दो देह एक अशु के रहते गुँथे से ।
 सक्षेम, प्रेम, रुचि, भाव, स्व व्यञ्जना मे,
 है एक सी उभय की रस रञ्जनाएं ॥ ४ ॥
 संयोग से मुदित आत्म वियोग से भी,
 होते मलीन रवि - पद्म समान दोनो ।
 है एक सिन्धु, सरिता अपरा अधीरा,
 आश्लेष, संगम, अथाह विलीन बेला ॥ ५ ॥
 दैवी विभूति, सुर पावन कल्पनाएं,
 सत्कृत्य मंगल प्रदायक मोद कारी ।
 नाना जनानुकरणीय चरित्र शोभी,
 है कल्प आश्रय स्वरूप वसुन्धरा के ॥ ६ ॥
 है देव वल्लभ, सुधी, पति वंश कीर्ति,
 देवांगना प्रिय वधू कुल शील साध्वी ।
 निश्चयेयसम्भुदय पन्थ चिरानुगामी,
 मृत्युञ्जयी सतत दम्पति हौ धरा में ॥ ७ ॥

प्रेमी सुसम्मत, सहिष्णु, परोपकारी,
 धेनु द्विजातिथि परायण धर्म सेवी ।
 संयुक्त पति वधू विष्णु रमा समान,
 शूली उमा जयति दर्शन दिव्य भू में ॥ ८ ॥

शूद्री ११

सु श्री वधू ये कुल की समज्ञा,
 सेवा रता, लोक विशुद्ध धर्मा ।
 है मानवी - क्या कम ये किसी से,
 सम्भ्रान्त नारी सुपुनीत शूद्री ॥
 कल्याण की मूर्ति, तिरस्कृता है,
 की स्पर्श छायापि निषिद्ध धिक् धिक् ।
 सद्धर्म, गौ, विप्र उपासिका के,
 क्या मानवी के प्रति न्याय है ये ॥
 राष्ट्रीय-जातीय-समाज की ये,
 काया अरुणा रखती स चेष्टा ।
 जन्मी हरि श्री पद से अतः क्यों,
 पूज्या न ये तत्पद तुल्य भू में ॥
 सानन्द जिये, यश मान पाये,
 हो मानवी सा व्यवहार सारा ।
 स्वश्रेय - धर्म - श्रुति तत्परा ये,
 सेवा-स्वभावा जय भद्र शूद्री ॥

गोर वर्णा १२

हिम, हीरक, हेम कपूर कृता,
 शरद द्युति, कुन्द सरोज यथा ।
 तरुणी पय फेन समान, सिता,
 शशि सी धरती पर है उदिता ॥

वियोगिनी १३

चिर विरहिणी के बिरह की रात अश्रुल प्रात,
ज्यों वनानल की लपट में धिर खिला जल जात ।

१

शैल सा मन - क्षण अनिश मन्वन्तरों सा,
श्वास में सुलगी शरद की आग ।
ज्योति का दर्शन, विषैला प्राण में ब्रण,
डस रहा है घन तिमिर का नांग ॥
कर रही पतझड़ नयन में मधु मलय की वात,
निकच यौवन पद्म वन में अर्हिनिशि हिम पात ।

२

सृष्टि का कण कण प्रति क्षण कर नवोत्सव,
रश्मियों में स्वर्ग के भर गान ।
व्याध सा कर वेणु मूर्च्छित मोहिनी उर,
बाँध देता इन्दु धनु शर प्राण ॥
लिपट जाती आर्द्र पट सी वेदना अज्ञात,
भोगती दृढ़ उलझ वरुनी पर प्रलय बरसात ।

३

खुल गये घन कुहर भय के आवरण सब,
दीख पड़ता निखिल जग मग लोक ।
पार बहने में सतत चितवन तरी को,
अब उपल कारा न पाती रोक ॥
आत्मा सा मुक्त मृगमय बन्धनों का गात,
चेतना के प्रति पहर का स्वप्न अमृत स्नात ।

४

थक गयी जिसको न पाया कर निकट भी,
दूर का प्रिय पास निज में लीन ।
स्वयं विभु प्रतिमा स्वयं मन्दिर दयित की,
हो गई आनन्द सर की मीन ॥
शाप ऋषि का अमर, वह उत्थान मय अवदात,
प्रिय विरह घन चिर मिलन की प्रीति मयि सौगात ।

संयुक्ता १४

कलत्र प्रिय के समीप जब से,
 न स्वप्न में भी वियुक्त तब से ।
 प्रफुल्ल मन से प्रसन्न रखती;
 स्व रूप रस में निमग्न करती ॥

सुधी सचिव ज्यो न दूर नृप से,
 समीप पति के तथैव तप से ।
 गृहस्थ करती प्रशस्त ललना,
 विकास पति का प्रकाश अपना ॥

नवानुभव स्वाद-भाव-रति का,
 न रुद्ध करती प्रवाह गति का ।
 प्रतीति सृजती स्व नित्य नव सी,
 सदा श्रुत नये वसन्त रव सी ॥

न भार लगता क्षणिक उर मे,
 नवीन रचना समस्त घर में ।
 न व्यर्थ क्षति काल, शक्ति, मन की,
 सु पुष्ट रहती निसर्ग जन की ॥

विनोद यश का, विलास यम का,
 सुशान्ति घर की फलाप्त श्रम का ।
 प्रयास सब ये प्रसाद सत् के,
 विधान इस के निधान हित के ॥

समृद्धि, धृति, श्री, सुधा, नियतिसी,
 समीप पति के अभिन्न प्रति सी ।
 स्वकी सुरभि सी विभूति विलसे,
 न भाव द्वय का प्रभूत इससे ॥

निषेध, द्विविधा, अहं न, भय है,
 क्रियद् गृहण का न लोभ क्रम है ।
 अतः न दुःख, द्वेष न भेद भ्रम है,
 विभूति भव की यहाँ न कम है ॥

स्व धर्म मति से उदार चित् से,
 विवेक बल से, बिचार सत् से ।
 समीप चिर की, सुधा सुकृत की,
 सदा जयति बल्लभा स्व पति की ॥

चित्रलेखा १५

अनगिन प्याली धर रंग भरी,
 प्रमुदित आगे कर चित्रपटी ।
 रस मयि तूली सह मुग्ध मना,
 कुछ करती ध्यान विभोर वधू ॥

बहु विधि रेखाङ्कित भाव विभा,
 द्युति छवि का चिन्तन, चित्त सुधा ।
 मृदु रुचि की मादकता छलके,
 विलसित दैवी प्रतिमा, सु कला ॥

स लगन, सत्साधन, साध वती,
 नव रस सिद्धा, अनुराग रंगी ।
 शुचि हृदयात्मा, सुनिसर्ग प्रिया,
 निशि दिन डूबी रहती छवि में ॥

रत रचती दिव्य कला कृतियां,
 लख पड़ती आय कलाकृति सी ।
 कृति सफला, मौलिक भाव परा,
 जय छवि लेखा अनुराग वती

सखी १६

स्व हृदय अनुरूपा, अन्तरङ्गा, अनन्या,
 सुमति, सुरुचि दात्री, भावुका, धी कुशाग्रा ।
 रसिक रहसि वार्त्ता, दक्ष, साध्वी सुशीला,
 हितमयि सुकलीना सत्सखी निश्छला ये ॥

परकीया १७

भाव स्नेह विमोहन होता परकीया में रसोल्लास घन,
मधुराध्यात्म साधना में इस प्रीति मार्ग का है अनुमोदन ।
कितनी भी अनिन्य-निरुपम हो रूपावती निज वधू नकोटा,
किन्तु अधिक आकर्षण करती पुरुष हृदय का सहज परोटा ॥

मधुर अनूठा की पूर्वा रति मंगल मयि पावन बन जाती,
यदि प्रेयसी स्व प्रियतम की चिर परिणीता पत्नी हो आती ।
ऊठा की पर में रति, कथित न धर्म दृष्टि से उचित आचरण,
'असती ब्रज्या' में परिगणना करते है उसकी कुलीन जन ॥

परकीया ऊठा व अनूठा, उद्धोधिता व उद्धुद्धा प्रति,
लक्षिता, विदग्धा, गुप्ता, मुदिता तथा अनुशयाना, कुलटा इति ।
पुनि तद्भेद स्वकीया वत् दश, है सम्भोग चतुर्विधि शीला,
कला, काव्य के हेतु रचित यह नारी का उपभोग सजीला ॥

इसमें त्याग स्व सुख वाञ्छा का, निखिल अहं का, तन मन का सब,
गोपी प्रेम तत्त्व चिन्तामणि यह 'चैतन्य' भाव तत्त्वाणव ।
रति के आश्रय आलम्बन को भाव स्थिति है नारी नर की,
प्रिय सुखैक तात्पर्य्य प्रेम मे कही न काम गन्ध अन्तर की ॥

पर पुरुषावलम्ब वामा को नर को पर दारा अभिमर्शन,
क्षुद्र वासनाएँ मन की चिर करती निज नैतिक अधःपतन ।
मोह अंधेरा वर्षा कुहु का, प्रेम प्रकाश कोटि रवि द्युति मय,
प्रेम हेतु दोनो नर नारी तन्मिथ आलम्बन अरु आश्रय ॥

कवयित्री १८

यह कविता की विषय, गेय कवियों की, काव्य सुधा घन, कवि यश,
आज स्वयं कवि बनी, धरा की अमर गायिका, गीत कार चिर ।
कोमल, मधुर, सरस छन्दो में गूँथ रही निज प्राण, भाव-मन,
कविता करते-हुई स्वयं यह 'कविता' कला साधना - रसनिधि ॥

ब्राह्मणी १६

ब्रह्म वादिनी, ब्रह्म विद्, ब्रह्म रूपा,
निखिलानुभवा स्वस्थिता, स्व'सद्विदा ।
परारा पटु, ज्ञान, विज्ञान, निभृता,
मु ब्रह्म निःउ - ब्राह्मणी ब्रह्म चारिणी ॥

योग, याग, परा, वैदिका ऋषि, श्रुति कवि,
त्रिकाल दर्शिनी, तत्त्व चिन्ता परा ।
अनासक्ता, निर्विकल्पा, सुसमर्था,
तेजस्विता, महामना, ऋद्ध - सिद्धा ॥

सत्त्व सत्त्वा, निर्विषया, धर्म शीला,
श्रद्धामयी, भावमयी, कर्म कुशला ।
परहितरता, स्वाध्यायनिरता मुक्तचिन्,
सर्वतोभद्र विग्रहा ब्राह्मणी जयति ॥

मैत्रेयी, गार्गी, वाक्, अरुन्धती, श्री—
रोमशा, सूर्यानुसूया, विद्य वारा ।
त्रिभुवन विदिता अपालादि देवीगण,
स्वशिरोभूषण द्विज कुलकी यशस्विनी ॥

मम स्वार्थ, परमार्थ, श्रेय, प्रेय, साधन,
जीवन तक देनी तप ! फल तपोधन ।
औरो के पाप, ताप, शाप, मदय हर,
करती निर्माण कल्याण त्रिभुवन का ॥

अध्यात्म ज्योति पुञ्ज, भवाञ्जल भरणा,
भुवनाचित, समर्थ, पुण्डरीक चरणा ।
आप्त, पूत, वृत्त, दीप्त, शान्त, दान्तचिर,
शुभाशीष मुद्रामयि वाञ्छा कल्प तरु ॥

१ दाचार चिन्तामणि, व्यक्तात्मा चिर,
स्वरूप दर्शन मुकुर, महत्त्व प्रेरिका ।
ऋषि पत्नी तरुणतपस्विनी सौम्य शुचि
वय अल्पा ज्ञान वृद्धा जय ब्राह्मणी ॥

क्षत्राणी २०

निज वर निर्वाचन स्वतन्त्र चिर, स्वयम्बरा - स्वच्छन्द - श्रेष्ठ निधि,
धीर पुरुष की वीर प्रणयिनी जिसे बनाते वृद्ध हुआ विधि ।
देख पुरुष छाया प्रांगण में जिसकी लज्जा से नत पलकें,
कभी मिलाकर आँख समर में भय से रिपु की छाती घड़कें ॥

मधु विलासिनी कुसुम कोमला दुख पाती महि पर पग धरती,
महा सती जब वज्र कठिन बन चलती, हिलती डग मग धरती ।
कांची भनक, छनक तूपुर की शिक्षित कण्ठ हार कल कंगन,
चकित कभी सुनते उन कर में भीषण तलवारों की भनभन ॥

मधुरासव प्याले भर भर लघु प्रियतम को देती कम्पित कर,
वे ही अभय पाणि सबल स्थिर भर देते रुधिरों से खप्पर ।
भीष्म ब्रती दृढ मति, प्रण दारुण स्वाभिमानीनी, निर्भय, अविचल,
दान, धर्म, यश, गौरव में रत पति अनुगत, ध्रुव ध्येय अचञ्चल ॥

संघर्षों की अडिग शिला यह मदन रङ्ग की रसिक दामिनी,
रण स्थली की प्रलय भैरवी अन्तःपुर की ललित कामिनी ।
तप मे, तेज सहन करने में सेवा में उदारता मे चिर,
करने मे निर्वाह प्रेम का इसका है उपमान न भू पर ॥

राज भवन पोषिता मुदित मन वल्कल पहिन तपोवन बसती,
आश्रम की एकान्त पालिता राज भवन मे मुक्त विहरती ।
इसे न ज्वाला पर कुछ भय है असुरों के गढ़ में भी पावन,
टकरा जाती महा काल से शासन में रखती अपना मन ॥

इसके सुत के सिंह खिलौने ऊर्जित वाणी से बनते ध्रुव,
क्षत्राणी की निज विभूति से भारत को भरतों का गौरव ।
ललित कलाओं, युद्ध, यज्ञ की यही नायिका युग अभिनय की,
चतुर्वर्ण की बल सम्बल यह चतुराश्रम स्वधर्म विनिमय की ॥

इसका दिया विश्व का वैभव विप्र - धेनु मख इससे रक्षित,
जीवित सत्ता रखती जन की इसके बल प्रति धर्म आचरित ।
शास्त्र, पुराणों, इतिहासों में हिल्लोरित इसका महिमार्णव,
में अपने असमर्थ कण्ठ से कैसे व्यक्त करूँ वह गौरव ॥

नैतिकता की सुर निधियों को कब से वचा रही कल्याणी,
मानवता के दिव्य द्वार की शाश्वत दृढ़ प्रहरी क्षत्राणी ।
कठिन विलासी, दुष्ट समय में निज विराट मातृत्व सजाओ,
अपने रण वाले स्वरूप में जयति देवि ! क्षण बाहर आओ ॥

अर्याणी २१

राजती अङ्ग में वेश भूषा छटा,
राजसी चाल मे, आढ्यता व्यक्त है ।
धर्म में कर्म में भामिनी भीह ये,
स्वच्छन्द, चित्ताद्रि, साध्वी महोदार है ॥

पालना, पोषणा, देवि ! उत्पादना की,
लोक संस्था इसी के चले दान से ।
दीन हीनार्त्त का मात्र आधार ये,
सत्य, सेवा, पर श्रेय की साधिका ॥

निश्छला, शान्त विश्वास श्रद्धामयी,
साधु, भोली, कृपालु स्वभावा-मृदु ।
रुढ़ियों, रीतियों, अर्चना में रता,
विश्व के छद्म का है इसे क्या पता ॥

लोक संघर्ष की वृद्धि उत्कर्ष की,
मूल है ये सभी के शुभारम्भ की ।
श्रीमती, पुण्यशीला, शुभागा, सती,
ये रहे नित्य भू में, स्वभाव स्थिता ॥

दाई २२

आशङ्का की मातृ प्रसव वेला में ये ही,
शुश्रूसा, सेवा कर, नव जच्चा बच्चा को ।
मीरोगी, संरक्षित रखती यत्नों द्वारा,
दायी देती जीवन नव संज्ञा दोनों को ॥

कुरूपा २३

शोभा की है कुछ न निकषा, रुढि सिद्धान्त व्याख्या,
हो जाती जो रुचिर वह ही सुन्दरी श्रेष्ठ भू में ।
पाती कोई नियति वश है क्लिष्ट काया कुरूपा,
हो धी की भी मलिन तब भी वन्दनीया वधू है ॥

मालिनी २४

कोमल सजीली, चटकीली, लजीली चारु,
धूँध में छलना मुस्काती बल खाती सी ।
उपवन रचना में पटु कुसुमस्तवक, ललितहार,
तोरण, छदन, फल समूह फैलाती सी ॥
भाल स्पन्दन, पाणि इङ्गित से सकुच, मुग्ध,
ग्राहक बुलाती, वस्तु भाव दरसाती सी ।
रसिका-रस रीति कुशल, वार्त्ता चतुर, चण्ड,
मालिनी मधुर रूप रुचि में भरमाती सी ॥

नापिती २५

जानती जग की सब नीति, रीति, परम्परा,
मानती सु अपनापन, सबसे हृदय मे ।
सबके विवाह, मृत्यु, हर्ष, शोक कृत्यो मे,
रहती सहयोगिनी सहज प्रति समय में ॥
निपुणा प्रदर्शन मे, स्व सहानुभूति, अभिमत,
पति रति रस, हाव, भाव, पटु लय विनय में ।
नापिता सरल, सुमति, व्यवहार पटु अनुभवी,
अभिन्न मति सदस्था- सी सबके निलय में ॥

मणिहारिणी २६

चूड़ी लेकर साथ भूरि रुचि की, त्योहार मे वार मे ।
देती है पहिना कलत्र गण को जैसी सुहाती जिसे ॥
शोभाढ्या मणिहारिणी जयति हे ! नारी शुभा-शोभना ।
सुस्निग्धा, व्यवहार भाव कुशला, है श्लक्ष्ण हस्ता पटु ॥

रजकी २७

रजताभरण मयी, तन्वी नवेली यह,
 शीष पट पोटिली, प्लुदारु लिये कर में ।
 स रन भुन, रन भुन, सङ्ग अपने रजक के,
 यमुना पुलिन आई चाव भरी उर में ॥
 पायल, वलय, रणित, कणित कटि कांची,
 अङ्ग है रसित पट धोने के प्रहर में ।
 स्व रजक प्रयास देख, लास लेख मन का,
 मस्त गीत भूम उठे रजकी के स्वर मे ॥

श्रमिका २८

करती कठोर श्रम, तोड़ती शिला,
 महि खोदती, विपुल बोझ लादती ।
 रहती स्वतन्त्र, नर सी उपार्जिका,
 करती स्व कर्म सब स्वाभिमान से ॥
 पट मे अपूप बासी अशाक वैधी,
 हिम, धूप, बात, धर शीष टोकरी ।
 शिशु को कसे उदर से अवस्त्र ही,
 कर में, कुदाल खुरपी लिये चली ॥
 मृदुता विनष्ट तन की सुरम्यता,
 गृह की वधू सुलभ सौम्यता मिटी ।
 भय, शील, की, सकुच हीन, मुक्त हो,
 रहती समान नर के नराकृता ॥
 इसका श्रमानुचित ये, निसर्ग ने,
 रस, रूप, मार्दव, विभूति दी इसे ।
 राह जो सके श्रम न दुःसहांग का,
 इस रत्न हेतु गृह - शुक्ति सर्जना ॥

साविका २६

नारी का स्वरूप यह अपूर्व, अभिराम नव,
 शुश्रूषा, सेवा का, जन हित का आकर ।
 समर की विभीषिकाएँ, रोगों की भीषणता,
 जिसे लख, जिसके उपचार से भृशाल्पतर ॥
 निरय से चिकित्सालय में स्वर्ग देवी सी,
 आशा, आश्वासन, आरोग्यता मूर्ति चिर ।
 जयति देवि ! शिर पर पाणि स्पर्श रोगी में,
 सहन शक्ति, जीवन द्युति मरण शान्ति दे भर ॥

धात्री ३०

जन्म मात्र देकर मुक्त हुई जननी,
 पालन पय से करे धाय प्राण के समान !
 प्रतीत वह तो विरानी, विमाता सी,
 निसर्गत होती यह माता यथार्थ भान ॥
 पुत्राधिक करती सम्हाल देख भाल चिर,
 विविध विधि दुलारप्यार अपना अभिन्न जान।
 जय समुदार - सुविचार की पोषण पट,
 मृदु धात्री पुनीत वात्सल्य रस की निधान ॥

विदुषी ३१

उच्चतम शिक्षा इसे शुभ दी गई, है हुआ इसका प्रकाश विकास सब,
 जो पढ़ा उसकी इसे उपयोगिता, और इसका देश को अति लाभ है ॥
 ज्ञान है विज्ञान, दर्शन का इसे निपुण बहु कोमल कलाओं में हुई,
 भद्र, नम्र, सुशील, सदय, सलज्ज है सादगी इसको पसन्द विशेष है ॥
 ध्यान से गृह कार्य करती निःसकुच, साथ में स्वाध्याय निज अभ्यास के,
 सात्विकी शिक्षा मिली इसको सही, बनी विदुषी यश समृद्धि समाज की ॥

पनिहारिनि ३२

उर के भरे अमृत कलशो से, सरसाती रस सिन्धु मदीला ।
 फैलाता दिगन्त में सौरभ, मृदु मलयानिल अञ्चल नीला ॥
 आँखों में रस के मुक्ताहल, रिसता अंग अंग से छवि विधु ।
 जीवन की रागाकुल पद गति, श्वाँसों में नव यौवन का मधु ॥
 श्रम शीकर नीहार लसित है, बाल भानु विलसित शिर शत दल ।
 थिरक सिहर चलती पनघट से, छलकाती गागर से मधु जल ॥
 छैग्रों ऋतु बारह मासों में, सुबह शाम भरतौ पनघट घट ।
 नित्य दुपहरी के आतप में, मन सा ही रोता रहता घट ॥
 तिरछी चितवन के घायल जब, जाते पी शीतल जल घट का ।
 अमर प्यास उनकी हो जाती, भूल न पाते रस पन घट का ॥
 करती कलश कण्ठ बन्धन सट, गुण बन्धन गव के घट घट में ।
 कृप पर भरती जल से घट, रूप सुधा शुचि अन्तर पट मे ॥
 सरल ग्राम की निश्छल श्री सी, रूप राशि के वन्य स्रोत सी ।
 पनिहारिनि देवी पन घट की, जयति प्रेम के अमृत पोत सी ॥
 उड़ उड़ जाता रह रह धूँघट, खुल खुल जाता इन्द्रीवर मुख ।
 मरु से तृषित नयन युवकों के, मचल मचल पीते कल्पित मुख ॥
 सुलभाती भुक उलभी पायल, शिथिलाञ्चल सम्हालती रुक रुक ।
 थके पथिक का तम-श्रम हरती, पनिहारिनि जाती घर उत्सुक ॥

करुणामयी ३३

आर्द्र स्निग्ध दृष्टि में जिसकी उमड़ रहा निश्छल मन,
 क्षण क्षण बरसा करता जिसकी कोमल करुणा का घन ।
 रहता द्रवित सदा अहेतुकी अनुकम्पा से अन्तर,
 करुणा मयि में महका करता सरल प्रेम का मधुवन ॥

आभीरी ३४

लावण्य लोल ललिता नव यौवना ये,
 माधुर्य्य मूर्ति रस की छवि की अनूठी ।
 मस्ती भरी, रति कलस्विनि केलि शीला,
 जाती निकुञ्ज पथ से दधि बेचने है ॥
 गूँजे गिरीन्द्र जिसके पद नूपरों से,
 होता पदाज्व ध्वनि से रस व्याप्त भू में ।
 फैली समस्त जग में छवि कौमुदी है,
 सौभाग्य की सुकृत की सुख की न सीमा ॥
 कैसा विचित्र इसका नवनीत है जो,
 लौनी निमित्त शिशु हो हरि नाचते है ।
 लक्ष्मी, उमा, रति, शची, जिसके न तुल्या,
 गोपी प्रणम्य शत वार किशोर कान्ता ॥
 वशी अखण्ड बजती रस की श्रुति मे,
 आह्वान मौन इसका सुन व्योम व्यापी ।
 आनन्द की उमड़ती अविराम धारा,
 सत्कीर्ति अक्षय है गुरु प्रेम की ये ॥



ननद ३५ -

स्व माँ की दृग पुतली, एक यह, एक भाभी,
 एकमन, एक रुचि, एक भाव वय सुकृति के ।
 केलि, कला, व्यवहार मे सहोदरा सी युग,
 अनुकूल उभय के दिव्य प्राण एक मति के ॥
 जीवन की, जग की, रस की, प्रेम की शिक्षा,
 पाती अग जग के जान मार्ग सब प्रगति के ।
 साधु भाभी की सरल सखी, अनुजा तत्पति की,
 चपल ऋजु ननद मे प्रकट रूप रस प्रकृति के ॥

मातृकक्षा ३६

गला नव स्नेह सुधा स्व प्राण की दृगाश्रुओं से स्व मलीनता धो,
क्षुधा हरी, पुष्ट करी, हितैषिणी नृ-पालिका माँ जय दुग्ध दायिनी ।
यशस्विनी, तेज मयी महा सती स्व वंश रक्षार्थ पिता प्रणोदिता,
स कष्ट धात्री नव माह गर्भ की जयति समुज्ज्वल जन्म दायिनी ॥

शुचिस्मिता षड्रस सिद्ध वत्सला सु पारगा, व्यञ्जन, भोग, पाक की,
स दक्षिणा भोजन दायिनी शुभा प्रणाम देवी । परिवेशस्थिता ।
तपस्विनी, धर्म, विवेक ऊर्जिता सदैव पूज्या, परमार्थ, साधिका,
सु बुद्धि संस्कार प्रदा समुज्ज्वला गुरु प्रिया माँ जय आत्म पोषिका ॥

विपत्ति बाधा हर, सर्व मंगला रसेश्वरी, श्री, कुल पोत तारिणी,
समर्थ, सर्वज्ञ, कृपालु, कोनला स्व इष्ट देवी जय इष्ट ह्लादिनी ।
उदार चित्ता, सम भाव, निश्छला विचार शीला, परिवार चालिका,
स्व स्वसृ माँ को सुत-को समान ही लखे विमाता गत भेद, प्रीति से ॥

विमातृ जा, मातृ श्वसा, तदात्म जा वधू श्वसा, श्याल वधू, पितृव्यजा,
पिता श्वसा, तद्दुहिता, श्वसात्मजा जयन्ति कान्तानुज मातृ वर्गिणी ॥
पिता मही, पुष्प मयी सुलक्षणा महान्त माता महि, गल्प कोविदा,
सुतस्तुपा अन्य कलत्र भूमि की स्व मातृ कक्षा चिर वन्दनीया ॥

स्व भामिनी से सुत रूप मे स्वयं नृ जन्म लेते निज अंशत. सदा,
अदोष भार्या प्रति मातृ प्रेरणा स्वरूप 'माँ' मात्र कलत्र वर्ग का ।
सदा स्वधात्री, भुवि पालिका वरा त्रिकाल पूज्या सुर सत्तमा शुभा,
समस्त देवाश्रय यज्ञ पूरिका त्रिलोक माता जय धेनु इष्ट दा ॥

सरित्समुद्राञ्चल पत्तनाटवी स भारती, संस्कृति, दर्शन द्युता,
समृद्ध कोषा दिशि व्यापिनी स्तुता स्व जन्म भू माँ जय विश्व मेदिनी ॥
दिगन्त व्यापी, जड़ चेतन स्थिति प्रकाशिता, दर्शित, जीव मात्र मे,
अनन्त है शाश्वत लोक लोक की प्रणाम नारी जननी स्वरूपिणी ॥

श्वश्रू ३७

उदार हृदया, सु विचार शीला,
सदैव अञ्जल अनुराग गीला ।
स्रवित सजल करुणा मेघ नीला,
महान् ऐसी है सास घर में ॥
सु शीतल स्निग्ध विशाल उर में ॥

दुलार करती मनुहार करती,
अम्लित वधू से है प्यार करती ।
स्वयं सभी देख सम्हाल करती,
महान् ऐसी है सास घर मे ॥
सुधाभ्र बरसाती शान्त स्वर में ॥

व्यवहार निश्छल, स्वभाव निरुपम,
कभी न करती अन्याय अनियम ।
न पक्ष मन में, प्यारे सभी सम,
महान् ऐसी है सास घर मे ॥
अपार सन्तोषस्थित अघर में ॥

दुराव न्यूनाधिकता, गतान्तर,
वधू सुता सुत प्रति रति बराबर ।
प्रबोध गूँथे सन्सूत्र मे दृढ़,
महान् ऐसी है सास घर में ॥
बहे सुधा जिसकी प्रति प्रहर में ॥

जेठानी ३८

देती आदर, गेह कृत्य करती सारे परामर्श से,
छोटी जान सदैव ध्यान करती, विश्राम देती उसे ।
जेठानी करती न चित्त त्रुटि को, दायित्व लेती स्वयं,
भार्या देवर की सगी बहिन सी आत्मीय प्यारी सखी ॥

देवरानी ३६

रहती अनुकूल, प्रेम करती हृदय से,
 न टाले रुचि, आज्ञा, अवज्ञा न करती ।
 मानती बड़ी, आदर, सत्कार करती,
 रहती प्रसन्न और तुष्ट उसे रखती ॥
 एक साथ खाती, सोती, नित जागती,
 पड़ने पर बात पक्ष उसके में खती ।
 करती न मन मे दुराव दोंरानी मित,
 जेठानी साथ छोटी बहिन सी रहती ॥

भाभी ४०

शाश्वत माँ की सरसता की सार मूर्ति सी,
 भगिनी भाव की विभूति मतो सुकृति सुधा ।
 है तो पूर्ण माँ ही वात्सल्य विलास मयी,
 किन्तु साथ इसके स्वभाव मे सख्य विधा ॥
 चरण वन्दना का अधिकार मान अविनश्वर,
 मिलती वरद कर शीघ्र रखने की सुविधा ।
 प्रिय भाभी है ये जिनका पुण्य स्नेह नद,
 संतति पति अनुज हेतु बहता है शतधा ॥

देवी ४१

सरल गुण मयी सौम्य शुभाचरण द्वारा,
 नवादर्श भू पर करती स्थापित ।
 प्रेम की क्षेम की विभूतियों के साथ अति,
 अलौकिक शक्तियों का होता समुद्रव ।
 कोई प्रतिकूल अनुकूल दुःख सुख में,
 न कर पाते अत से विचलित उसे लव ।
 पापी सुरापी तक होते पवित्र लख,
 अति व्यक्तित्व मयि कहाती तनु देवी तब ॥

श्यालिका ४२

भोली भाली रस भीनी यह ।

ललित लजीली, चपल किशोरी, जिसक नयना म अरुणाग्रह ।
मन का रसोल्लास धन कण कण, वरस रहा आनन से रह रह ॥
सरल, अनिन्द्य, रूपसी मधुमयि, छवि के भार श्रमित गति के गज ।
जिसकी इवासी से वय मदिरा अंग सुरभि आती बाहर बह ॥
कोमल, मोठे, सीठे स्वर मे जीवन का संगीत तरंगित ।
नूपुर के मादक शिञ्जन मे व्यक्त हो रहा स्निग्ध अनुग्रह ॥
है विनोदिनी साध्वी साली स्वच्छ मालिती के प्रसून सी ।
उत्तकी भाव कान्ति अनुपम शुचि, सरस स्नेह सुधा की विग्रह ॥

गायिका ४३

मधुर साधना के मन्दिर मे वीणा से स्वर मे वीणा पर,
तरल नयन, तन्मय गाती तुम अन्तर मधुर भाव, रस से भर ।
गीत सुधा मयि स्वर गङ्गा गति बहती पथ पाषाण भङ्ग कर,
जन जन मे प्रावृट प्लावन सी ज्योतिर्मय कण कण करती चिर ॥
विरह निवेदन, गृहण, समर्पण विकल निमन्त्रण, मधुर मिलन नव,
छलक रहा नव गीत कलश से मदिर स्मृति धन, प्रेम सुधारणव ।
भक्तूत प्राण, शिरा, मन; आत्मा गाते गाते गीत बनी तुम,
लय में द्रवित, द्रवित, दूरी कर स्वर में सँजो रही है प्रियतम ॥
मुग्ध हो रहा अम्बर अपने मौन किये तारक स्वर संकुल,
पृथिवी के रागारुण रज कण मचल रहे गीतो से विह्वल ।
मधुर मूर्च्छता मयी तान यह आरोहण अवरोह स्पन्दन,
मर्म भेद प्राणो मे चुभता मुग्ध मदिर स्वर का सम्मोहन ॥
जन्म, मरण, सुख, दुख निशि दिन में स्वप्न, जागरण, अस्त उदय में,
भर दो अपनी गीत सुधा प्रिय जीवन, जग, हिरण्य मृगमय मे ।
कौन योग दे तुम्हें गान मे कण्ठ पकड़ पाते न मन्द स्वर ॥
तुम गाओ अविराम अनश्वर विभु त्रिभुवन, प्रभु को उर में भर ॥

नर्तकी ४४

रुनक भुनक, भुनन, भुनन, पायल की रुन भुन,
 चितवन की चिलक, झलक-भाव परक, पलक दुलक ।
 क्षीण की लचक, छलक रस की, थिरक भ्रू की,
 अङ्ग अङ्ग की पुलक, कला मयी मरोर अचक ॥
 ताल पर धमक, मटक मुख की, गमक लय की,
 रूप की चटक, फड़क नस नस की, छवि छिटक ।
 हृदय की धड़क, ग्रीवा ठुमक, चमक कर की,
 दमक रही बिजली सी नर्तकी तमक भमक ॥

२

अग जग के भाल पर, कराल काल व्याल पर,
 नाच रही कामिनी उछाल स्वर्ग कन्दुक सा ।
 भूम रहे दिग्दिगन्त - छाया मधु रस वसन्त,
 वज्रता ताल मय अनन्त शब्द मन्द ढप सा ॥
 मङ्ग सङ्ग नाचते इन्दु, सूर्य, तारा, ग्रह,
 पद की ठोकर से अखिल भुवन रहा भुक सा ।
 जीवन तरङ्गित, उमङ्गित निखिल यौवन नव,
 नटिनी नृत्य से अचेत पवन रहा थक सा ॥

३

भारत नाट्यम्, मनीपुरी, कथकी, कथाकली,
 गरवादिक प्रचलित लोक नृत्य प्रान्त प्रान्त के ।
 सांग, सूक्ष्म, कलामय प्रदर्शन रास लास के—
 स अद्भुत शृंगार, कछुआ, वीर, हास्य शान्त के ॥
 भाव मुद्राएं, भाव भंगी, अभिव्यक्ति, थिरक,
 सह राग संगीत, द्रुत स्पन्द लयोपान्त के ।
 आनख सिख नृत्य छटा, स्वर्गिक भुवक मोहिनी,
 मीरा सी मुग्ध नाचे मन्दिर में कान्त के ॥

मञ्जीर शिञ्जन से उमड़ आते हर्ष मेघ,
 लेती निचोड़ द्रुत धिरक भू, गगन का रस ।
 नख नखत कोर अणि पर छलके निखिल प्राण,
 सु किरण दरस यावक की होता भुवम वश ॥
 गोट साटिका की उड़ साधती दिगन्त छोर,
 श्रम मुक्ताहल पर लोभित हंस मानस ।
 सुतनु कला गुरु के कला केन्द्र चारु पद,
 जयति मदन गजेन्द्र के ललाट स्थित अंकुश ॥

प्राचीना ४५

सरल सुशीला शुभ प्राचीना ।
 भगवद्भाव, भाविता, आस्तिक, सलज स सकुच कुलीना ॥
 गुरु जन आज्ञा कारिणि, पति सुख चिन्ता रत, व्रत लीना ।
 साहस-शक्ति-सत्य निष्ठा मयि आडम्बर छल हीना ।
 भूषण रुचिरा, गेह इन्दिरा, कुल व्यवहार प्रवीणा ।
 है इसमे नारीत्व प्रकाशित मानवती अमलीना ॥
 सादा, सीधी, शुचि, मर्यादित, विनय भाव से दीना ।
 जय नारी चिर जिसे सँजोये शुचि अतीत की बीणा ॥

आधुनिका ४६

यह [प्रदर्शिनी की पुतली सी केवल चपल कामिनी कृत्रिम,
 व्यस्त बाह्य तन की सज घज में अपने पन के प्रति जिसमें भ्रम ।
 चहल पहल मे जिसका है मन शान्त साधनाओं से वञ्चित,
 इधर उधर की हल चल मे रत जिसके अपने कृत्य उपेक्षित ॥
 अनिश लक्ष के जो विरुद्ध चल पर वश विवश स्व को पाती है,
 नर का कर अनुकरण, अनुशरण अपनापन खोती जाती है ।
 बाह्य समस्याओं मे उलभी स्वयं समस्या सी है युग की,
 जयति देवि ! मूर्च्छा त्यागो तुम बनो सु - समाधान इस युग की ॥

गणिका ४७

जय समाज गोपुर की प्रहरी ।

कर शृङ्गार, प्यार कृत्रिम ले, जिसकी गति गहरी,
बैठी खोल हाट तन बेचे रूप, राग रुचि गगरी ।
नृत्य, गीत, वार्त्ता, विलास, रति रीति, नीति मे निखरी,
क्षणोपयोग, स्वायुध प्रयोग पटु, काम कला अप्सरी ॥
कामी, धूर्त, सुरापी, दुर्जन, खल आते फँस फँस री-
अरु उनसे गृहस्थ, गृह, गृहिणी, सत्कुल जाते बच री,
यह नारी विष-विषयी-विष की औषधि गुण कर री ॥

ऋतुमती ४८

सृजन नवीन स्थापन रे ।

वाद ऋतु समय के नारी हो जाती बिल्कुल नूतन रे ।
माह माह में पाती वह नव जीवन, तन, मन, यौवन, रे ।
घुल जाते इस मिष सब कल्मष होती शुद्ध-मुपावन रे ।
निखिल सृष्टि में नारी केवल रहती मलिन चार दिन रे ।
मावस तक मिट पूनो तक ज्यों जाता अभिनव शशि बन रे !
त्याग पुराना पन त्यों इसका होता नव अपनापन रे ।
नव कृत इसके नव अन्तर मे नव विभूति उन्मीलन रे ।
कन्या सी होती ऋतु के पर कर सब पाप विमोचन रे !

सहयोगिनी ४९

सरिता सी बहकर कविता सी गति मयि बनिता,
सविता सी तेजोमयि लेकर निजता नीर व ।
मानव की पूर्णता महत्ता का सिद्धान्त कर,
करती उसमें दिव्य सिद्धियों की पथ सम्भव ॥

वीराङ्गना ५०

नव सुकुमार, शुशील, शोभना, पतिव्रता पति की अति ध्यारी ।
 तेजस्विनी, आत्म गौरव मयि, उत्सर्गोद्यत निर्भय नारी ॥
 कौन कर सके इसे तिरस्कृत, किसका इसे विश्व में है डर ।
 इस पर दृष्टि उठा तकने का, साहस किसे ? न नत किसका शिर ॥
 तल्प शायिनी, अश्व रोहिणी, चूड़ी वाले कोमल कर में ।
 जब तलवार उठा लेती है, फिर रुक पाता कौन समर में ॥
 आज न यह अबला, न दुर्बला, इस पर शक्ति प्रयोग न सम्भव ।
 अपराजित, सम्मानित, सक्षम, यह जीवित जाग्रत नारी नव ॥
 घर के बाहर के कृत्यों की, शास्त्र, शस्त्र, दोनों की शिक्षा ।
 आवश्यक है इसे शान्ति की, क्रान्ति, समर तीनों की दीक्षा ॥
 कौटुम्बिक, सामाजिक, आर्थिक, संस्थाओं की व्यवस्थापिका ।
 नारी है सर्वाधिकारिणी, प्रति सुधार पथ की प्रदर्शिका ॥
 अपना सदाचार रक्षित कर, वीराङ्गना खड़ी है आगे ।
 जिसकी जयी अहिंसा से डर हिंसा हिंसक दोनों भागे ॥
 हे ! बापू के युग की नारी—तुम उत्सर्गों की पोषित हो ।
 तुम्हें निमन्त्रण, संघर्षों की भूमि तुम्ही से उद्घाटित हो ॥

अनुगेया

अष्टादश सर्ग

चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय ! १

चिर पहचानी - चिर विश्वासी, मुझमें लय - मैं उसमें तन्मय ॥

सरस, सरल, स्वर मय, सौरभ मय,

मधुर, तरुण, कोमल, करुणामय ।

प्रतिभा - आभामय, सौभाग, शुभ,

अविनाशी, विजयी, अकुतोभय ॥

सलज, सजीली, अलबेली, कृश, भोली, गर्वोली, गौरव मय ॥

चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय ।

अनुपम रूप, अनौखा यौवन,
 शत वसन्त मय, शतदल सा तन ।
 मंदिर दृष्टि, मुस्कान अमृत मयि,
 वीणा से वाणी के गुञ्जन ॥
 कर देती वह रात रजत की, मधुर मिलन के दिन कञ्चन मय ॥
 चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय ।
 श्वास मलय पर झड़ झड़ पड़ते,
 नव प्रभात किरणों के पाटल ।
 जिसके गति हंसों पर दृग से,
 बरस पड़े मोती के बादल ॥
 सान्ध्य सुनहले पथ पर उसकी पैहचल का सङ्गीत अनामय ॥
 चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय ।
 मिली मुझे मनचाही प्रियतम,
 तुच्छ हाथ पर मैं मेरा पन ।
 रे ! लघु मिट्टी के दीपक से,
 हो लेती प्रसन्न ज्योतिर्धन ॥
 प्रकट आज इन सङ्केतों से मुझे प्यार करती वह निश्चय ॥
 चिर सुन्दर मादक मेरी प्रिय ।

नींद भी मेरी लुटी है जागरण भी खो गया है ! २

पोंछ श्याम वरूनियो से मंदिर काजल रेख अपनी,
अधर पर कोई नयन निज सान्ध्य घन से धो गया है ।

१

लोह तम ने प्रात पारस तुहिन पीकर—
ज्योति का तम के जलधि से अमृत घट भर ।
मुग्ध नभ को चकित निशि सङ्केत करती,
प्रणय की मृदु पाण्डु लिपि मे लिख कुमुद वर ।
विजलियों पर उठ गई है कसक मुक्त विहार करने,
आज ज्योतिर्मय पलक के तिमिर मे थक सो गया है । नींद॥

२

केश मे मधुमास - वर्षा नयन में भर,
सिहरता है शिशिर होठो मे लिपट कर ।
अङ्ग पर छायी शरद, हेमन्त पद तल,
ग्रीष्म का वैभव लुटा है तरुण मन पर ॥
ढल गया है रूप मेरा, धूप छिटकी है जगत् मे,
दुख बना पाथेय, पथ पर अश्रु छाया बन गया है ॥ नींद॥

३

बंध गयी है आज बन्दनवार मौक्तिक,
भर गया है हेम मङ्गल कलश पावन ।
अर्चना का देवता नर्तित नयन में,
बरसता निश्वास मे निस्पन्द सुख घन ।
है लुटायी रात ने चाँदी, दिवस ने स्वर्ण संकुल,
स्वास मे कोई सुनहले उल्लसित क्षण पो गया है । नींद॥

४

हो रहा त्योहार नव जीवन सृजन का,
बरसता यौवन सुधा का नील जल घन ।
मधुर नव युग का नवीन वसन्त रे ! मन,
धूलि का कण कण बना है आज मधुवन ।
कण्ठ में संगीत मेरे प्राण में सज धज नई है,
बिस्व का कोई सजीला आज मेरा होगया है ॥ नींद॥

मैंने तुमसे प्यार किया है ! ३

चिर सुन्दर को ज्योतिर्मय को अपने में साकार किया है ॥

असम्पन्न - असफल - क्षण क्षण ने,
निरवलम्ब यौवन, जीवन ने ।
चिर अतृप्ति के सूनेपन ने,
एकाकी पन से थक जन न ।
आज मरण बेला में सहसा नव जीवन त्योहार किया है
मैंने तुमसे प्यार किया है,

२

युग युग का पाषाण गल गया
तरल चौदनी सा बहता मन
खुले तिमिर बन्धन प्राणी के
खिला श्वास के मरु मे मधुवन
मैंने अन्तर की धरती पर मंगल स्वर्ग उतार लिया है
मैंने तुमसे प्यार किया है

३

दिव्य वरण स्रग की मोती निधि
अरुण नयन ज्वाला में ढलती
खिली चेतना, चिति, अधरों पर
आत्मा अपना स्वर्ण परखती
धूलि कणों का शशि-दिन मणि से-तारों से शृङ्गार किया है
मैंने तुमसे प्यार किया है ।

४

ठुकराना भी एक सहारा
और बना मङ्गधार किनारा
शोभा - आना के घेरे में
मेरा आज उच्च का तारा
खोया सत्य विश्व का मैंने तुममें लुका निहार लिया है
मैंने तुमसे प्यार किया है

५

अपने पन का मधु प्राणो का,
चरण पावणा लिया सहज बुन ।
मृग शावक सा यह चञ्चल मन,
बना तुम्हारा मृग चर्मासन ।
भारद्वाज आधार यक्त हो - अपना रूप निहार लिया है ॥मैने॥

६

प्रायश्चित - पश्चात्तापों का,
अभिशापों का संतापो का ।
यह मेरापन धुल कर उज्ज्वल,
लघु नापों का मित मापों का ।
भग्न खण्डहर पर ही मैने सृजन स्वर्ण संसार किया है ॥मैने॥

७

एक मधुर सङ्गीत बना मै,
थिरक रहा आनन्द तुम्हारा ।
सष्टि बनी सौंदर्य पूर्णिमा,
प्रकृति शान्ति की ज्योतिधारा ।
अखिल विश्व की प्रति दूरी को मैने निकट पुकार लिया है ॥मैने॥

८

चपल कल्पना की अप्सरियाँ,
आशा की पहने पग पायल ।
स्वप्नों के घुँघरू गिराती,
नाच रहीं चाहों से चञ्चल ।
मेरे खेवनहार कृपा कर तुम मुझे उबार लिया है ।
मैने तुनसे प्यार किया है ॥

त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ! ४

१

मिट चले युग के अंधेरे
हो तनिक ही पास तेरे ।

सिन्धु मे घन में गरजता है अमिट उल्लास मन का ॥

त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

२

राग रञ्जित पुतलियों में,
मधुर चित्राधार बन मैं ।

ढल गया स्वप्निल पलक पर प्रात प्रिय के पद्म वन का

त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

३

दूर से पहचान पन्थी,
उड़ पड़े लघु प्राण पक्षी ।

पार पर ही प्यार सहसा पागया आधार उनका

त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥

४

प्राण में तू चिर समायी,
पर न वृष्णा बाँध पायी ।

श्वास पीकर जी रही है स्वाति कण तुझ अमृत घन का

त्योहार प्रिय, मेरे सृजन का ॥



विजन वन में खुल गई है बात मन की ! ५

१

नयन के नव नील नभ में,
 अश्रु तारक हार पहने ।
 उठा अरुणोदय निशा को,
 अङ्क भर जब प्यार करने ।
 नीड़ में सङ्केत था कुछ—
 होठ में पग चाप उनके आगमन की ॥ विजन ०॥

२

प्राण छूकर उँगलियों से,
 हँस रही मेरी अपरिचित ।
 हेम हिम आलोक पीकर,
 जी लठे है स्वप्न विस्मृत ।
 सुख समाता है न मन मे
 दृग छिया पाते न लौ इस नव लगन की ॥ विजन० ॥

३

दूल अम्बर के अवर पर,
 चिर अमर विश्वाम निखरा ।
 विश्व शत दल पर अलख की,
 आत्मा का हाम उतरा ।
 इन्दु धनु मुख पर रंगा है
 साँभ फूली अंग में उस अरुण घन की ॥ विजन० ॥

४

रात कर शृंगार आयी,
 दिन बना है आज दूलह ।
 तट नदी में बह रहा है
 लहर का पाने अनुग्रह ।
 खिल रहा यौवन मुकुल मन,
 स्वर्ण से उतरी कनक बेल मिलन की ॥ विजन० ॥

सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुलादूँ ! ६

१

पथिक ने क्षण प्यार के,
अम्बार अम्बर तक उठाये ।
दृष्टि मे जब मुग्ध मन के,
दीप अगणित जगमगाये ।

छिप गयी तुम कर रूपहली—
रात में मधु - विधु इशारे ।

पास लाये पर मुझे,
चुप चाप ये पग चिह्न तारे ।

सकुच बैठी निशि,
सजा कर हाट तारक मोतियों की ।
दिन उन्हें क्रय कर,

तुम्हारी वाट पर फैला गया है ।
वे चुभेंगे पन्थ मे पग नयन से कैसे हटादूँ ।
सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुलादूँ ॥

२

चल वरुनी पर थकित इस,
प्रीति के सब गीत मधुरिम ।

जम रहा मुझमें तुहिन सा—

आज प्रिय का हास अरुणिम ।

ओस कण से प्राण पिघले
केतकी की मेखला मे

बंध गई प्रत्येक गाँत मम,
कञ्ज चितवन अर्गला मे ।

लय हुए जिनकी प्रलय में,
हर्ष छवि के वरद यौवन ।

पल रहे दुल तरल जिन में,
मधुर करुणा के अरुण घन ।

उन चमकते आँसुओं की आग मे कैसे बुझादूँ ।
सत्य मेरे प्रात के तुम स्वप्न कह कैसे भुलादूँ ॥

मधुर तुम्हारा प्यार चाहिये ! ७

इस जग में जीवित रहने को सुदृढ़ एक आधार चाहिये ।

१

मन में व्यथा स्वप्न आँखों में,
प्राणों में छविनिधि लहराया ।

कब आये कब लोट गये तुम,
मन अब तक भी जान न पाया ॥

इन भूले विश्वासों को प्रिय, तू समीप साकार चाहिये । मधुर०

२

अन्धकार में क्या फैला है,
अरुण रश्मियों का घूँघट कर ।

नव विकास की निर्भरिणी में,
तिरता यह कैसा इन्दीवर ।

सत्य लोक का-सत्व स्वर्ग का - मुझे यहाँ इस पार चाहिये ॥ मधुर०

३

खेल खेल में तुमने हँस कर,
छोड़ी सरि पर कागद तरणी ।

विपुल भार ले सहज चढ़ा में,
पार उतरने भव वैतरिणी ॥

तुच्छ अन्त को तुझ अनन्त में मिलने का अधिकार चाहिये ॥ मधुर०

४

रीते लघु अचेत जीवन को,
निज कोमल करुणा की मधु निधि ।

चिर अवृत्त आकुल प्राणों को,
दो अपना चेतन अमृतोदधि ।

मुरझायी दरिद्र आँखों को मोती का शृङ्गार चाहिये ॥ मधुर०

मैंने तुम्हें पुकारा है ! ८

विपुल भार अपने पन का सब थक कर - विवश उतारा है !

१

लहरों की घातों से पीड़ित,

एक अचेत विन्दु मुक्ताहल ।

पनप रहा दृग की ज्वाला में,

श्वाभों की पीकर मलयानिल ।

विरत, आत, उसकी घन द्युति में लीन न हो जीवन तारा है ॥ मैंने०

२

नवाकार, शृङ्गार नया कर,

एकाकार मुझे करने दो ।

दो आधार, भार मेरा ले,

सुधि, बुधि, हार प्यार करने दो ।

तुझ असीम मे उड़ चढ़ने को मन ने पल्लव पसारा है ॥ मैंने०

३

छोड़ शिविर का शान्त सहारा,

डुबा विश्व का कोर किनारा ।

तोड़ तिमिर की लोह अर्गला,

फोड़ हृदय की पाहन कारा ।

तुझ आनन्द सिन्धु में मिलने बहती जीवन धारा है ! मैंने०

४

लाँघ चुका मैं अपनी सीमा,

दूर अभी तुम, प्रिय तब सीमा ।

अनिल, अरुण, ग्रह, चरण पराजित—

फिर भी मम प्रति द्रुत पग धीमा ।

सदय ! तुम्हीं चल आओ. मम प्रति पल, बल, सम्बल हारा है ! मैंने०

क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है ! ६

सखि ! मैंने अपनापन, यौवन, मन, जीवन, तन वार दिया है ।

१

पत्थर को भगवान् बनाकर—

प्रण से प्राण-सिन्धु सीकर से ।

मन से भान, सत्य स्वप्नों से,

अभिशापों को बदला वर से ।

तम पर ज्योति - अश्रु पावक पर-सुमन शूल पर सार दिया है
क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है ?

२

फूट गई मेरे प्राणों में—

तेरी रूप सुधा की मटकी ।

डूब गई आनन्द चेतना,

अश्रु प्रतिभा दृग में घट घट की ।

सार हीन जर्जर तन्त्री पर अनहद स्वर संचार किया है !
क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है !

३

खोल दिया लहरों पर लंगर,

बाधाओं पर अडिग किया पग ।

दुख की शुचि निर्धूम अनल से,

सृजन हुआ मानव का नव युग ।

नयी दिशाओं के नव पथ पर प्रिय ने नव अवतार लिया है
क्षुद्र क्षीण मेरे रज कण को क्यों सुमेरु का भार दिया है

४

नाता तोड़ अपर से पर से—

जिसके लिये चलां हूँ घर से ।

लाज सकुच तज उसे जोड़ लूँ,

जी भर एक बार अन्तर से ।

वह 'विराट' मैं 'लघु' हूँ फिर भी मैंने उससे प्यार किया है ।
सखि ! मैंने अपनापन, यौवन, मन जीवन, तन वार दिया है ॥ क्षुद्र० ॥

मेरा चिर विश्वास मधुर प्रिय क्रूर नहीं है ! १०

१

शिथिल हुए मन के सब पहरे
घाव हो रहै क्षण क्षण गहरे
कौन कह रहा भीतर से द्रुत
इतना सहा और क्षण सह रे !

गीतों के पङ्क्तियों से उड़ कर
बहुत पार हो चुकी स्व मञ्जिल अब कुछ ज्यादा दूर नहीं है ॥मेरा०॥

२

वह प्रस्तुत चल कर आने को
जाकर 'अहं' रोक आती है ।
मैं की मद घूर्णित चितवन से
नव स्निग्ध वह डर जाती है ॥

स्वाभिमान उसका भी तो कुछ
क्यों सुहाग मागे तुमसे क्या उसके घर सिन्दूर नहीं है ॥मेरा०॥

३

उसकी प्राप्ति अभीष्ट आज यदि
तो अपनेपन का घन तोलो ।
अग्र भक्षी बल केवल जल है
निज मन में मृग दृग मे घोलो ॥

ओ मेरे है उचित न यह हट
उसका क्षण परिहार कर सके 'मै' इतनी भर पूर नहीं है ॥मेरा०॥

४

नव यावन शृङ्गार मिलन का
नव रूपाभिसार जीवन का
उसके द्वार आज करना है
अंगराग तन, मन, निज पन का

'मै' का देख विसर्जन 'तुम' में
बढ़ता जाता गाता गाता पन्थी पन्थ विसूर नहीं है ॥मेरा०॥

१ ११

१

उन सघन श्याम वर्षा की मधु रातो मे,
मृदु मन्द्र मेघ वाणी मे तुम्हे पुकारा ।
फिर नव वसन्त के मधुर सुनहले दिन भी,
पिक पञ्चम स्वर मे बुला बुला कर हारा ।

२

कर शिगिर प्रात मे मन्द पवन मर्मर से,
आह्वान तुम्हारा लहरो की कल कल में ।
हेमन्त समय निर्भर ध्वनि, सिन्धु गरज मे,
आने की कहता रहा ग्रथक प्रति पल में ।

३

तप वृत्त ग्रीष्म की कठिन दुपहरी मे कृश,
अपने ही विकल स्वरो मे कर सम्बोधन ।
री । मधुर शरद पूनम की शुभ सन्ध्या में,
कोटिक खग कण्ठों में थे स्फुरित निमन्त्रण ।

४

हंसों की पग ध्वनि, शिखी नृत्य की लय भी,
चिर मुग्ध कमल वन मे भोरों का गुञ्जन ।
इस ओर तनिक चलने का वृत्त न देती,
प्रेरित करती क्या तनिक न उर की धड़कन ।

५

पीडाकुल वंशी नाद, वीन की भङ्कति,
प्रतिमा कारों की छैनी का कोलाहल ।
कवि की कविताओं, गायक के गीतों से,
संदेश प्रतीक्षा का न अभी पाया मिल ? ।

६

फूलों से मैने छिप कर किये इशारे,
प्रत्येक किरण से और लहर से इङ्गित ।
संकेत किया अन्बर में सुरधनु के मिष,
फिर भी मैं तब दर्शन के सुख से वञ्चित ।

७

दीपावलि दीप जगा कर थी आशा में,
 हा, व्यर्थ पड़ा रह गया फाग का किशुक ।
 होली, हरियाली, तीज, दशहरा, अगहन,
 दिन, माह, प्रहर, बीते पथ लखते अपलक ॥

८

श्वासों में, प्राणों में निज शिरा शिरा में,
 बहु भाँति नाम मैं तेरा रोता गाता ।
 चिर मधुर कहाँ हो छिपी ! तुम्हारी कोमल,
 पगचाप न मैं इस पार कही सुन पाता ॥

९

चढ चन्द्र यान पर तुम्हे खोज देखा है,
 सूरज में लुक छिप छान लिये है अग जग ।
 नक्षत्र ग्रहों के दीप पाणि में लेकर,
 सब अन्धकार के लोक लखे कर जग मग ॥

१०

सागर तल शोध लिया कर बड़बा ज्योतिष,
 ज्वाला मुखि दीपित करके शैल धरातल ।
 दावाग्नि प्रभा में अनुसंधान वनों का,
 लख लिये अश्रु द्युति में सबके दृग उरतल ॥

११

री ! उठा सृष्टि के सप्तावरण करों से,
 फिर भाँक भाँक करके तत्वों के भीतर ।
 आत्मा की दीप शिखा की चिर आभा में,
 मैं विकल व्यग्र हूँ निज में तुम्हें न पाकर ॥

१२

संगीत विश्व का मैंने तुम्हें सुनाया,
 सौन्दर्य लोक का तुमको रिझा न पाया ।
 तन, मन, धन, जन, जीवन की चिर पूजा से,
 क्या मेरे प्रति सन्तोष न तुमको आया ॥

१३

मैं इसी पार पर अमृत मिलन को उत्सुक,
 प्रिय ! इसी रूप मे चिर अमीष्ट तव दर्शन ।
 मैं इसी मर्त्य मिट्टी के पङ्किल कर से,
 क्षण उठा सकूँ तव चरण रेणु कण पाव न ।

१४

बस एक बार कर कृपा प्राण मे मन में,
 तुम आजाओ मेरे यौवन मधुवन मे ।
 मे धवल धूलि कण बन पथ पर बिछ जाऊँ,
 तुम हेम पद्म पद चिह्नित कर दो उन मे ॥

१५

धुल उष्ण अश्रु से हो पग श्रान्ति निवारण,
 तुम आओ भङ्कृत करती पग की पायल ।
 जड़ चेतन भूत जगत् मे हो यह उत्सव,
 गुँथ एक सूत्र में गये युग्म मुक्ताहल ।

१६

हूँ एक अकिञ्चन दीन द्वार का याचक,
 पर प्रेम सभी का तुल्य धनी अभिमानी ।
 हो सकुच आगमन में तो सदय बुला लो,
 तुम लोक पूज्य त्रिभवन को मधु की दानी ।

—————

मोतियों की रात व्रीडित, सकुचता मङ्गल सवेरा १२

१

स्वर्ण स्वप्नों के सुनहले रूप में ढल,
 बना वह अङ्गार ही शृङ्गार सुन्दर ।
 प्रखर मेरे अश्रु की बड़वा विमोहित,
 हँस रही है पूर्णिमा के चन्द्रमा पर ॥
 बन गया तूफान मेरा चरण नूपुर,
 तुमुल हाहा कार पिक का पञ्चम स्वर ।
 अङ्क मे ऋतुराज के भंभा सहमती—
 कुमुद के भुज बन्ध मे है मुदित उल्कापात मेरा ॥ मोतियों० ॥

२

हृदय पुलकित खोल ज्वाला मुखी अगणित,
 चूम दावानल हृदय पुलकित बने चिर ।
 श्वास विद्युत मेघ को बन्द बना कर,
 थिरकते कुन्तल हलाहल को अमृत कर ।
 प्राण पर रीभी प्रलय निर्माण लेकर,
 जग गया अवसान मेरा उदय बन कर ।
 निरय नन्दन बन गया है प्राण मे रे । ।
 लिख रहा सौभाग्य मेरा आपदाओं का चितेरा ॥ मोतियों० ॥

३

शान्ति दुलराते सभी सङ्घर्ष विप्लव,
 विघ्न भीषण बन गया है शकुन अभिनव ।
 कुशल मारण मन्त्र से मेरी अनुष्ठित,
 खण्डहर पर उठा वैभव, भवन, नव भव ।
 कठिन मन का अमुर निश्चयस लिये है,
 चेतना तम अभ्युदय की द्युति पिये है ।
 नाचती है सुप्ति सुन्दर जागरण सह,
 वासना अहि तज गरुण से खेलता मानव सपेरा ।
 मोतियों की रात व्रीडित सकुचता मङ्गल सवेरा ॥

४

तुल गया है सिन्धु मेरे आँसुओं पर,
नप गया है अँगुलियों से नील अम्बर ।
आज मेरे जानु तक वामन हिमालय,
चुक्र गयी है धरा मेरे चरण तल पर ।

जगे मेरी आरती मे इन्दु उडु रवि,
बनी हेय कुरूपता पीयूष मयि छवि ।
आज दुर्बलता प्रबल अस्तित्व वाली
चैन लेगा क्या मुझे भगवान् कर वरदान तेरा,
मोतियो की रात ब्रीड़ित सकुचता मंगल सवेरा ।

जय भारत-भारती भुवन की विभु नारी रस गीते !

१

घर्षित भाल किये सुर सम्मुख,
 द्वार द्वार घूमे भरमाकर ।
 भाँके घर घर, अग जग खोजे,
 पथ पथ बैठे अलख जगा कर ।
 जिसके हेतु अमित तन, जीवन, बहु सुयोग, युग बीते ॥जय०॥

२

त्रिभुवन सुर सम्पदा सकल निधि,
 तुच्छ जिसे लख प्रति सम्मोहन ।
 रच न सका जिसकी उपमा विधि,
 बाँध न पाया जिसे निखिल मन ।
 जिसकी एक झलक ने जग के अध, तम, षड्भिषु जीते ॥जय०॥

३

अविनश्वर; अविलम्ब, अयाचित,
 दिया सुदृढ़ अवलम्ब कृपा कर ।
 जिसकी एक दृष्टि से जग का,
 रूप, गीत, रस आया भीतर ।
 मन के तृषित, गगन प्याले भर क्षण क्षण नव रस पीते

४

प्राणाजिर में वाञ्छा सुर तरु,
 लसित नयन में प्रेम यज्ञ चरु ।
 पाहन गला, बीज रोपित कर,
 सींच गयी विस्तृत जीवन मरु ।
 सुलभ मधुर सन्तोष रहे अब भव के कोष न रीते ॥
 जय भारत भारती भुवन की विभु नारी रस गीते ॥



नारोज्ञ

एकोनविंशति सर्ग

१

शुचि, सुकुमार, इन्दिरा मन्दिर, सुन्दर, यश मन्दर अरवनी के,
यावक रञ्जित, तूपुर शिञ्जित, सुर वन्दित, धन सुधि अपनी के।
चिदानन्द मय, छवि इन्दीवर, सिन्धुर गति, फल शुभ करणी के।
जय नखेन्दु कुल-द्युतिल-सुतनु के चरण द्वन्द-तट जन तरणी के।

२

भाव, समर्पण, श्रद्धा, प्रत्यय, कल्प कृपा मयि, क्षेम, प्रेम ध्वज,
मय प्रमाण - अनुमान - ज्ञान - गुण-रस सिद्धा अभिमान भूमि निज ।
परित्राण, परिमाण, प्राण मय स्वनिर्माण, निर्वाण दिव्य तम,
जय नारी नीरव के परिणत निखिल जीव कल्याण कल्प द्रुम ॥

३

लोमालक मिष धूम्रागरु घन, यौवन अग्नि शिखा, छवि घृत शुभ,
वाञ्छा समिधा, इष्ट आत्मा, श्रुवा पाणि मन शुचि वेदी प्रभ ।
दृग ऋत्विज, रुचि बलि, मति मण्डप, प्रेमाहूति, श्वास श्रुति सारी,
युग कुच कलशों में चरु संयुत चेतन यज्ञ मूर्ति जय नारी ॥

४

मन मानस से स्वयं अवतरित, मथित क्षीर सागर से समुदित,
ब्रह्म कमण्डलु, यज्ञकुण्ड, से धरती के अन्तर से आगत ।
नारायण ऋषि की तपः सृजा, हिम नगात्मजा, कानन ललना,
पुञ्जी भूत शक्ति ऋषि गण की, तनु सुर शिल्पी की रस रचना ॥

५

सुसौन्दर्य - माधुर्य रूप में वीर्य और ऐश्वर्य उभय का,
शुनि प्रकाश नारीत्व - सहज जो- भाव स्नेह विकास हृदय का ।
सुतनु मधुरता कोमलता में महाशक्ति की अनहद लीला,
पुरुष और पौरुष की जननी नारी का व्यक्तित्व सजीला ॥

६

रु रु ने की उत्सर्ग आयु निज- जिस पर रवि शशि ने अनन्त पग,
किये निरखने जिसे चार मुख शिव ने सुरपति ने सहस्र दृग ।
आग्नीध्र, पुरुखा, तपे बहु, पुरुषोत्तम जिसके रस याचक,
नारी की सौंदर्य सुधा से - हुए ब्रह्म सुधिमय उद्दालक ॥

७

नारी में पर निज का भेद न- कर्म क्षेत्र में हिंसा भाजम,
अन्तराय संकल्प सिद्धि में तद्विवेक पर है न आवरण ।
जीवन के निगूढ-तथ्यों की नारी सजग प्रतिष्ठा वेदी,
शक्ति, शान्ति, सुख, छवि, रति, मृदु-मधु, रस, लय-रुचि इसमें इसने दी ॥

८

दण्डक वन ऋषि वृन्द तपोधन - पूर्ण पुरुष रस का आस्वादन-
करने दिव्य कलत्र रूप में श्रुतियों का साकार अवतरण ।
अच्युत वर पाते रवि तनया, सुर सरि करने शाप विमोचन,
नारी मिष शोभाओं ने भिल ग्रहण किया एकाश्रयैक तन ॥

९

सत्यं, शिवं, सुन्दरं मय में रस अनुभूत हुआ अविकारी,
पुनि सविलाम प्रकाश प्रकट को नाम दिया वपु मय को नारी ।
लोक गीत में प्रथम प्रमुख तुम, कथा, व्यथा, वृत्तों में आगे,
पहले देवी क्योंकि देव सब नारी ज्योतिर्मय में जागे ॥

१०

प्रीति वर्म, आनन्द ढाल - तव - महोत्कर्ष निज कुशल सुहानी,
शिरस्त्राण सम्मान, कृपाबल, पाणिस्थिति तुम स्वयं भवानी ।
सैनिक व्यूह विविध सेवाएं विषम दुर्ग नारीत्व तुम्हारा,
षड्रिपु-रिपु नर अन्तर रण मे तुम सह जीता तुम बिन हारा ॥

११

अति अतथ्य की तथ्य निरामय, अज अमूर्त की मूर्त मनोज्ञा,
कल्पित का प्रत्यक्ष सावयव, सब असार की सार समज्ञा ।
जीवित, जाग्रत द्युति विनाश मे दर्शित सृजन-विभूति सुचेता,
तुम विराट की व्यास वृत्त अणि, धन्य तुम्हे रच लोक प्रणेता ॥

१२

पितृ लोक से पुण्य समाहित, पितरों की तृप्तात्मा उतरी,
सिद्धों की देवी प्रकटित या निखिल सिद्धियों की भर गगरी ।
निज सौभाग्य सिन्धु की लक्ष्मी सह विभूतियों की वर माला,
चौदह भुवनों की शोभा की अक्षय कोश खड़ी यह बाला ॥

१३

मानव के स्व प्रबुद्ध बुद्ध मे यह क्षमत्व प्रोज्वल प्रज्ञा सी,
अन्तर के आह्लाद प्लवन मे संज्ञा मयि उपकृत आज्ञा सी ।
अनासक्त ह्लादिनी, प्रकृति तुम चेतन पुरुष तुम्ही से पूरा,
योग - क्षेम - स्वप्रेम साधिका नारी बिन संसार अधूरा ॥

१४

चिति चकोर की चन्द्र कला सी, स्वाति तृषित चातक की हेला,
आत्म प्रात की पद्म वन श्रो. मर्त्य स्वर्ग को सुमिलन वेला ।
भव उर मरु की सरस निर्भरी भाग्य गगन की शरद घटा सी,
तुम अपुरुष कवि काव्य सरसि के पारिजात की सान्ध्य छटा सी ॥

१५

मधु निशीथिनी ने अञ्जल में वात पुलक दीपक दुलराया,
डुल प्रभात तारक प्राची के अरुण अङ्क मे लुक मुस्काया ।
नारी के उदयाद्वि शिखर पर होता मानव का अहणोदय,
मानव में होता नारी के विशद स्वरूप रूप का विनिमय ॥

१६

गंगा यमुना हार, मुकुट तुहिनाचल, कांची गिरि विन्ध्याचल,
सागर प्रक्षालित चरणों की कृष्णा कावेरी मृदु पायल ।
उस विराट भारत जननी की नारी सत्प्रतीक जिसमें सब,
दर्शित राष्ट्र, व्यक्ति, संस्कृति, श्रुति, कला, भारती, प्रकृति सावयव ॥

१७

निज अखण्ड अवलम्ब कल्पमय, लोक पथिक तनु पन्थ अपरिमित,
सङ्घर्षों से थकित निखिल जनकी विश्राम शिविर रुचि सज्जित ।
रंग, भूमि मानव अन्तर के अमृत दीप से प्रतिभ उल्लसित,
तुम निकटस्थ-ध्येय ध्रुव जिस पर गति, प्रयास, प्रति प्रगति पराजित ॥

१८

तपः पूत नारी आश्रम में नष्ट विषमता दिन रजनी की,
अजा सिंहिनी की गोदी में पा लेती ममता जननी की ।
भव माया मोहिनी करों पर काञ्चन तन में निभूत सुधा सी,
नर बाराह तीक्ष्ण दष्टा मे रोमाञ्चित रक्षित वसुधा सी ॥

१९

मूर्ति पूज्य-स्वतिक सत्त्वों की, निज कृतिस्व-व्यक्तिस्व पूरिका,
तत्त्वज्ञों की स्वतः स्फूर्ति सी जन महत्त्व अस्तित्व साधिका ।
सबले ! त्रिपुर दलनि ! त्रिताप हर ! आप्त पूत अनुभूति रसों की,
त्रिकुल तारिणी, निधि त्रिलोक की, आत्म विभूति श्रेष्ठ पुरुषों की ॥

२०

जिसके लोम लोम से बहती-शुचि, सौन्दर्य, गीत की स्रोती,
प्रेम मयी नारी बरसाती आई जग पर मंगल मोती ।
दीख रहा बाहर गिरि जितना उससे कही अधिक भू भीतर,
अब तक की समस्त दर्शित तनु का अनन्त आस्वाद्य, अभा स्वर ॥

२१

कनक दण्ड देवी शासन का पाणिच्युत चिन्मय हो आया,
नारी से शुचि शुक्ल पक्ष सा निज विकास संसृति ने पाया— ।
षड्रस, नवरस, दिव्य चतूरस कण कण ने जीवन के सब रस,
प्रति निर्यास मधुर करती तुझ उज्ज्वल रस मयि की रुचि पायस ॥

२२

देखा सुना युगों से हमने एक पुरुष अग्रव्यय अवतारी,
शेष सृष्टि की प्रति आत्मा में व्याप्त हो रही केवल नारी ।
प्रकृति, भूत, ब्रह्माण्ड, पिण्ड को सम्बोधन करते हम माया,
कियत् रसिक भावुक पथिकों ने हरि को भी नारी कह गया ॥

२३

सगिरा, सरस, समीप, समविना, निर्मल सुरभित सिंधु सुधाका,
तनु, निरभ्र शरदमण्डल मय शशि नभ सी अपङ्क वसुधा का ।
लीला सा कर रहा लास मय तन्मय लोक विलास लजीला,
इसके मिष धन हास भुवन का विकच खड़ा धर रूप सजीला ॥

२४

वह सर्वांश सदर्प ग्रहण रत, इसका दान, न विनय अधूरी,
मिट मिट होता शून्य रिक्त नर, शतोत्सर्ग कर नारी पूरी ।
हम अभाव में अप्रतिभ आकुल पर उसमें ही निखरी नारी,
तुम पा चुकी पूर्णतः निज में जिसके हुए न हम अधिकारी ॥

२५

जिस घर तनु का ध्यान मान है ऋद्धि, सिद्धि, निधि वृद्धि वही है,
चिर समृद्धि - देवी विभूतियाँ शक्ति, शुद्धि अन्यत्र नहीं है ।
विप्र, धेनु, दिक्पाल, पञ्चसुर अन्यदेव, गृह, पितर, वसु अतिशय
करें स्व पूजा गृहण अवस्थित नारी में नारी पूजा मिष ॥

२६

अति लज्जाभिलाष लतिका को, विस्तृत कर भुवि पर फैलाती,
जन की श्वासों में आशामयि, जीने का सन्तोष सजाती ।
अपना अमृत अनन्त दान कर सब का हालाहल है पीये,
सकल तपस्याओं के तेजों को निज में आश्रय है दीये ॥

२७

जीवन के सङ्घर्ष पुरुष के साथ सभी भेने दुख पाये,
पथ कण्टक पलकों से चुन कर दृग से नीलोत्पल विखराये ।
सुख की दुख की हानि लाभ की जीवन और मरण की साथी,
यज्ञ कुण्ड से साथ चली पर चितारोह तक रुकी कहाँ थी ॥

२८

पी विराग, अनुराग, राग, रस, अमृत, गरल, मादक, मृदु हाला,
सुख, दुख, श्रान्ति, उपेक्षा पीकर, मृदु कटु ऋजु समता का प्याला ।
मन में गिरि, दृग में सागर भर, भव जय कर अपने में हारी,
अहो ! कौन से दिव्य धाम से आई है यह अद्भुत नारी ॥

२९

तत्त्व वेत्ता गण, योगी जन-देख समझ पहिचान न पाये,
अति सर्वज्ञ, रहस रस ज्ञाता, खोज खोज भ्रम में भरमाये ।
जल, थल, गगन, पवन, द्युति विजयी, अवतक जिसके निकट न आये,
उसी आत्मा को नारी निज रसानन्द-मय में दरसाये ॥

३०

चिति यमुना तट-मग्न सुतनु की अहं - आवरण गगरी कोरी,
निश्चल आत्म विवेक कुञ्ज में होती मन माखन की चोरी ।
सुने अर्हनिशि श्रुत रहस्यमय-इसके श्रुत अनन्त वेगु ध्वनि,
तनु रस प्राण गोपियों में घिर नचित ब्रज रसिक चूड़ामणि ॥

३१

प्रात किरण-कलरव, स ओस कण, मधुपाचित कुङ्कुम की क्यारी,
बन्दनवार नियति मन्दिर की, जीवन की वसन्त फुलवारी ।
जाग्रत सिद्ध स्व योग पीठ के अधिष्ठात्र की अभय पताका,
नारी-पद रज चन्दन रवि मिस नील गगन ने शिर पर आँका ॥

३२

जिसके बहु अवतार अंश अणु, तेज विलास, प्रकाश प्रकट उस,
सैश्वर्य्य - माधुर्य्य, पूर्ण अवतारी की ह्लादिनी इष्ट रस ।
उदधि लहर करिका जो विश्वात्मा तट पर विखरी क्षत अंगुल,
उसकी किरणमूर्ति प्रति तनु जो चिर निजात्म मण्डलमें झिलमिल ॥

३३

क्षण क्षण हम नव जीवन पाते, हार हार कर जीत हमारी,
तृण सी नत तरु सी सहिष्णु अति-अग जग में सर्वोपरि नारी ।
कर अनुकूल सहज सर्वोदय, उन्नति द्वार चतुर्दिक खुलता,
दोनों कूल कमल मृदु दो पद मध्य बहे सुख की सुर सरिता ॥

३४

भ शिर,महि कटि,दिशि कर,गिरि कुच,कुसूम रोम मुख शशि,उर सागर
खग नूपुर कांची खग-सरिता,बलय विपिन, शुचि पद इन्दीवर ।
उषा मांग, सुहाग विन्दु रवि, तारक मुक्ता खग, तिमिरालक,
नय निसर्ग नारी तन द्युति दिन, रजनी अञ्जन, सन्ध्या यावक ॥

३५

पति मै प्राप्त, परम पति-करके, सहज परम पति में पति पाके,
नारी ने पत्थर के जग मे खोल दिये है स्रोत सुधा के ।
इसने पहचाना मानव को जी भर उसको प्यार किया है,
निज अमूल्य, निधियों से उसकी प्रतिभा का शृङ्गार किया है ॥

३६

विन्दु मयी यह विन्दु विन्दु में अमृत भरे ऋक् छन्द लिये है,
सिन्धुर गति मयि, रूप सिन्धु में स्वारविन्द के इन्दु पिये है ।
शरद कौमुदी सा विलास मय हास भरा उल्लास छिपाये,
रूप नदनु, वय सुरधनु तनु ने मदन, वदन से भुवन लुभाये ॥

३७

चिन्ता, चाह, चेतना में जो वर्षा की भीगी उषा सी,
स्वप्न, कल्पनाओं में जिसकी स्मृति सागर के तीर तृषा सी ।
जिसके चिन्तन के अभाव में सब अपदार्थ, समस्त विरस है,
नारी ही यौवन का सुख है - नारी ही जीवन का रस है ॥

निन्दारोप, अवज्ञा-कर्त्ता की कुरुडि मयि, दृष्टि संकुचित,
निज दुर्बलता, अथ तामस पर-पटाक्षेप की यह विधि अनुचित ।
है शत गुणित विशेष लाभ मयि सुतनु कल्प तरु सुरभी सुर से।
नारी विषयक कथन करे हम शान्त-स्वस्थ, विभु निर्मल उर से।

३६

तनु की धैर्योत्सर्ग-साधना-से शिक्षित मन जय का डङ्का
कर उनका अपमान राख में सहज मिली सोने की लङ्का
नहुष अवज्ञा कर स्वर्ग च्युत, कुरु कुल ध्वंश, हुए हरि पत्थर
पूजित-कीर्तित अग जग में कपि नारी के वर से अजरामर ॥

४०

मन की सतत परीक्षा है तनु - सफल पुरुष प्रणाम के द्वारा
अश्वमेध शत वाजपेय का पा सकता पल में फल सारा ।
व्यथा भुलाने वाली हाला - कुन्दन करने वाली ज्वाला,
इस बाला का भाग्यवान् ही पाता प्रेम सुधा का प्याला ॥

४१

शवरी के झूठे बेरों पर रीझे राम, कृष्ण गोरस वश,
प्रेम पकर स भरित अमृत फल, स्वादी तपें तपोवन मे वस ।
माँत्व अमृत, वधूत्व गङ्गा जल, पय भगिनीत्व, कामिनी मदिरा,
पीते वे विष जिनको नारी केवल विषय भोग प्रति रुचिरा ॥

४२

नारी के निर्मल दर्पण में अपनी आत्मा को अवलोकें,
इसके पहरे से विषयों को अन्तर में आने से रोकें ।
तव देवी जाला मे तप कर उजलें, निखरें, शुद्ध बनें हम,
देवि ! शक्ति दो घृणा न करके तव समुचित उपयोग करे हम ॥

४३

क्या कर लेगा वेश और वन, यदि मन में विकार जाग्रत है,
मृग छाला निकाल देगी क्या जो आनख शिख भूत आवृत है ।
क्या न विषय छाया, सुर माया शैल गुफाओं में जा सकती,
सती सुरक्षित गृह तज बाहर विरति द्वेष में लाज न लगती ॥

४४

इस अनन्त संसृति सरवर में पुरुष सलिल उर्मिल लहराता,
जिसमें प्रेम मृणाल मृदुल पर आत्म सुख्य चिति कमल खिलाता।
प्रति अनुभूति पखुड़ी सी सूत, प्रति अभाव परिमल सा भाता,
नारी है किञ्चलक सुरभिमय-प्राण-प्राण अलि सा मडराता ॥

४५

दाह धातु पाषाण मूर्ति मे प्रेम उसे बन्दी कर लाता,
विस्मित मे चेतन हिरण्य मयि छवि मे प्रकट न हमें लखाता।
सत्य और सङ्गीत समाहित पुण्य और पुरुषार्थ मिले है,
परम पर्वमय सुतनु तीर्थ मे सबके सब अपराध धले हैं ॥

४६

नारी ही सम्पूर्ण राष्ट्र है, धर्म कर्म, संस्कृति, युग चेता,
जन्म सिद्ध जन की समाज की देश जाति मानव की नेता।
प्राण दान कर भी न चुका सकते ऋण हम इस उपकारी का,
अब अपना अभिमान नष्ट हो - रक्षित स्वाभिमान नारी का ॥

४७

अति यथार्थ, आदर्श परायण, मुक्त, पूर्ण संस्कार मयी है,
नव सुवार की ओर प्रगति मयि, साधु मनस्थिति सार मयी है।
अनुरागी उर-त्यागी अतिषय, पुनि आसक्त, विरत वड़ भागी,
चिर अध्यात्म चेतना चिन्मयि इसमे सुत इसी मे जागी ॥

४८

अति, अनादि, जिज्ञासा जन की शाश्वत प्रश्न न हल हो पाया,
गुल्मी सी अवह'धित, ग्रन्थिल, निविड़ रहस्य स्व समझ न आया।
रही सदा गुँगे के गुड़ सी, गहन तत्व सी, गूढ़ कथा सी,
स्पष्ट सत्य सी मधुर स्वप्न सी अमित हर्ष सी, अजित व्यथा सी ॥

४९

नारी के चिर प्राण पुलिन में प्रेम साधना के ऋजु पथ पर,
दर्प दलन को, भाव ग्रहण को रुका समद उद्वेग का रथ चिर।
प्रेमानल में तपा स्वच्छ कर, शुद्ध तरल रस मध्य बुझाया,
रूखा ज्ञान पुरुष का जिस पर नारी ने निज भाव चढाया ॥

५०

स्वयं दया तुम-योग्य पात्र में, तुम करुणा-जिसका मैं याचक,
सौम्य क्षमा तुम क्षम्य देवि मे, परम प्रेम तुम मैं मृदु साधक ।
मैं गायक, संगीत सुतनु तुम, सौन्दर्य मे चिर आस्वादक,
मे चैतन्य वक्तिका द्युति, तुम नव स्नेह, मैं लघु मृगदीपक ॥

५१

नारी मिष शृङ्गार सुधाकर स शृङ्गार शत अलङ्कार धर,
धरती पर उतरा चिर सुन्दर कुसुमाकर सह कुसुम यान पर ।
अंग शरद ने वय मनोज ने. पावस ने स्वभाव रवि ने द्युति,
छवि निसर्ग ने, कानन ने रस शशि ने मन, मानव ने दी रति ॥

५२

शाप भस्म बहु भस्म राशि पर, तपस्फुरित स्वधुनी पधारी,
एक बहे वन-पुर में बाहर शिरा शिरा मे भीतर नारी ।
पाद्म - सद्म - पावन करने निज पद्म-पाणि भर पद्मा आई-
पहली बार कुलिश शिल से हट निज चेतना चकित मुस्काई ॥

५३

‘मधुर रसोवै सः, स्वरूप की सरस प्रेरणा की पूर्वोद्गम,
‘आनन्दो वै सः’ स्वस्थिति की स्वानुभूति का श्रेय तनूत्तम ।
एक रूप-रस एक नाम - गुण - एक इष्ट एक ईश्वर की,
है प्रदत्त संज्ञा नारी के रसिक समर्पण मय अन्तर की ॥

५४

दृग में प्रणय पाण्डु लिपि में मृदु-लिख निगूढ़ साङ्केतिक भाषा,
कर अधराक्त-अनृत हृदय की उपशम रहित अनन्त पिपासा ।
नारी के आगे सकुचाकर अयस्पात्र कर माँगा कण भर,
दिया उढ़ेल विहँस तनु ने भी स्वामित नयनों का रत्नाकर ॥

५५

प्रति सौन्दर्य सुधारण्व श्री की मुकुर विभा सात्विक अनहोनी,
लख पड़ती जिसमें अग जग को अपनी काली मूर्ति सलोंनी ।
सप्त ऊर्ध्व लोकों से ऊँचा तब विराट का ओभल कोना,
उछल स्पर्श हेतु करता उपहासास्पद प्रयास मम बोंना ॥

५६

अगणित अरुण राग मय सुख के स्वर्ण भार पलकों पर भेले,
खेले दो दृग हृदय अजिर में दुख के सौ सौ खेल अकेले ।
आगे पथ पर पड़ता सहसा, तम प्रकाश क्रमशः भाँईं सा,
निज करुणा में तुम सकुचित सी भव विराट है परछाईं सा ॥

५७

भर अनङ्ग की रस तरङ्ग कुल राजीवाङ्ग-अङ्गना-रङ्गिनि,
नर के सङ्ग उमङ्ग-व्यङ्ग मे राग रंग करती रस रङ्गिनि ।
खीज उठा नर-रीझ उठी वह भोग गई क्षण संसृति सारी,
नारी में नर लीन हुआ चिर, नर मे जाग उठी प्रिय नारी ॥

५८

अमृत कलश अमरों का लेकर क्या न मोहिनी का शुभागमन,
दीख न पाता क्या पुतली में घूम रहा जो चक्र सुदर्शन ?
रोगी - भोगी दूर हटे है दहल गये हैं जोगी - योगी,
केवल निकट खड़ा रह पाया अविकल अविचल एक वियोगी ॥

५९

रत्न मात्र हम यह रत्नाकर, नारी विकृति महाक्षय कारी,
नर मानव - तनु मानवता है, मै तन तुम आत्मा अविकारीं ।
सुखी रहे यह रत्न वही शुभ धन्य सदा उसका हितकारी,
फूले फले सतत दिन द्विगुणी रात चौगुनी जग में नारी ॥

६०

माँ में विजयी, दुहिता में स्थिर, भगिनी में शुचि, सयश प्रिया में,
चतुर्भांव मण्डल समाज का श्रेयस्कर है लोक क्रिया मे ।
नारी मर्यादा जिनको प्रिय, नारी हित जिनकी बलिवेदी,
मुक्ति स्वयम्बर में निश्चय वह होगा जन स्वलक्ष्य का भेदी ॥

६१

शान्ति, क्रान्ति में परिवर्त्तन में प्रति स्थान, प्रति काल स्थिति में,
सह प्रतिबन्ध, स रूढ़ि नगर में, मुक्त ग्राम की स्वच्छ प्रकृति में ।
भौतिक मांसल पुरुष करो में असुरक्षित सम्मान, सत्त्व प्रण,
महिषा सुर-निशुंभ सा निज अघ, खल मर्दिनि तनु करो असि ग्रहण ॥

६३

जन जन में तब विजय भारती - स्वर स्वर सान्द्र प्रतिध्वनि तेरी,
पायल की अस्फुट रुन भुन से रणित हुई युग की रण भेरी ।
राष्ट्र चेतना का सर्वोदय, व्यक्ति अभ्युदय, तुम स्व शक्ति त्रिक,
हे ! अभिराम ! प्रणाम कर रहे, संसृति के समस्त चेतन भुक्त ॥

६३

किस भी वृत्ति खोल पट अपने हो विभोर तब ओर न भाँकी,
चित्त चित्र पर पर चिर सुन्दर तब मृदु मंगल मूर्ति न आँकी ।
भग्न न किताबी हुई दृष्टि का मर्म चोट से पाहन कारा,
आकर तोरण पथ पर तेरे किनारे आना कर न पसारा ॥

६४

वध अमान, अग्रहरण, ताड़न क्षति, कुदृष्टि बल, भीति दिखाना,
लोभ, घृणा अपशब्द स्वार्थ, छन, निन्दा घात, कुचक्र चलाना ।
दुर्व्यवहार, त्याग, निष्कासन, अनाचार, व्यवसाय प्रयोगी,
नारी हृदय दुखाने वाला कोटि जन्म नरकों का भोगी ॥

६५

निज मस्तक की भार पोटली, अपने हाथ दयाद्र उतारी,
पोंछ श्रान्ति कण अञ्जल पट से स्वस्थ पुष्ट कर देती नारी ।
घन प्रकाश तारों पर मन के अनहद राग मूर्च्छना गाते,
तनु के यौवन हर्ष, रूप में हलके भाव भँवर बन जाते ॥

६६

जौहर की ज्वाला में - भाँसी - अरावली के मैदानों में,
पति शव ले प्रज्वलित चिता पर, रक्त पिपासू मर्दानों में ।
स्वतन्त्रता की सबल सैनिका - बन्दी गृह से है कब हारी,
त्रिभुवन की मृदु कटु हल चल मे कहाँ नहीं है मेरी नारी ॥

६७

बस रोटी का राग सकल ने गाया लक्ष्य यही माना है,
कर्तव्यार्थ उसे सहने का कियत्तत्व तुमने जाना है ।
कवल, कीर्ति, कादम्ब, कामिनी, काञ्चन केवल काम्य नरों को,
नारी ! तुम ही धो सकती हो उनके इन तामस अवरो को ॥

६८

अन्तःपुर की शुचि विलासिनी, दुर्गा सी प्रत्यक्ष समर में,
किसलय तल्प शायिनी पेशल प्रगति शील कण्टकित डगर में ।
जीवन के अदम्य संघर्षों की सेनानी - अन्ति कारिणी,
लोक शान्ति की अग्रदूत जय जन विवेक की हंस-वाहिनी ॥

६९

निज अतीत तुमसे उजला था, वर्तमान क्यों कुछ मैला है,
शुभ भविष्य की भीख माँगने दसुधा का अञ्चल फैला है ।
हमें जिलाये कौन विश्व में, हममे चेतन श्वास नहीं है,
जागो तुम्हीं पुरातन हे ! नारीत्व नयी के पास नहीं है ॥

७०

मेरा चित्राधार तुम्हारे रंगों से भर कर बन आया,
टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं में तेरा रूप समेट न पाया ।
श्वासों के सुन्दर गीतों को मिली सूकता की दृढ़ बेड़ी,
कागद पर हल्के वर्णों में सकुच रही है भाव त्रिवेणी ॥

७१

जय वृद्धे ! जय युवति ! किशोरी ! जय धन्ये कन्ये नव जाता,
जय कुल वधू ! बहिन ! जय दुहिते ! जय करुणा ममता मयि माता ।
दृष्टि दृष्टि की सुधा वृष्टि में व्यष्टि समष्टि सृष्टि की सारी,
पाती तुष्टि पुष्टि, संरक्षण जय सुलक्षणो ! लक्ष्य हमारी ॥

७२

मदिराञ्चल पारावत पर की सेवन करें सतत मलियानिल,
अनिश कूजती रहे श्रुतो मे तव वसन्त स्वर की मधु कोकिल ।
मुखर किङ्किणी शुभ निद्रामव, पायल दे जागरण सुधारणव,
वरद हस्त छाया मण्डप मे हौं सम्पन्न भुवन के उत्सव ॥

७३

यह परिणय कौशेय सूत्र मृदु, बँधे मत्त मातंग निराले,
प्रेम सुधा पी उभय अचञ्चल क्षेमाङ्गुलि भय टले न टाले ।
ऊँचो नारी नीची होकर हिम कर सी नर मद पर छायी,
पिघल गया अभिमान पुरुष का सुगम हुई जग की गहरायी ॥

७४

सब में नर नारी दोनों हैं शक्तिमान और शक्ति अनूपा,
एक सत्य के उभय तत्व दो - एक सत्व कृत मनु शत रूपा ।
कौन बड़ा छोटा है इनमें दोनों हलके - दोनों भारी,
नारी के मन में ऊँचा नर, नर के मन में ऊँची नारी ॥

७५

धर्म अतिथि सेवा - तुरंग द्वय, दान - मान दृढ दिव्य कुशा है,
सदाचरण उपकार-राजपथ, गृह जन पोषण परम दिशा है ।
यह गृहस्थ रथ- सत्य सारथी, श्रद्धा गति, ध्वज त्याग पुरा है,
रथ के दो पहिये नर नारी, प्रेम जोत, कर्तव्य धुरा है ॥

७६

प्रत्यय भवन- भुवन जब लूटे, कुसमय देव प्रबल हो रूटे,
जग की नौका भार वाहिनी, सह न सके मन के सुख भूँठे ।
सहसा गर्व गगन तब फूटे, दुरित स्वार्थ की मटकी फूटे,
देवि ! डूबते मेरे मन का तुझ तृण का अवलम्ब न छूटे ॥

७७

जीर्ण शीर्ण युग की मानवता - कायर संतति कुश विदुला सी,
आज देश की संस्कृत संस्कृति, रूपवती कुलीन अवला सी ।
पड़ी दस्युओं के हाथों में- बूढ़ी माँ की ओर निहारो,
निज असमर्थ थकित पौरुष है स्वागत नारी तुम्ही उवारों ॥

७८

खोल दिये जिसने समाज के, मूढ रूढ़ियों के सब बन्धन,
कटु कारा से मुक्त तुम्हें कर जिसने दिया नया युग-जीवन ।
सत्य, अहिंसा, शान्ति व्रती श्री गान्धी के शुभ युग में सक्षम,
उसकी आत्म ज्योति की अक्षय कल्प प्रदीप रहो नारी तुम ॥

७९

नारी के आनन्द पुञ्ज का - लघु प्रकाश कण मैंने पाया,
मेरा मरु वसन्त रच लेता - मृतक अमर जीवन भर लाया ।
वैतरणी के पार उतरने मत्स्य शृङ्ग रक्षित तरणी ये,
युग सन्देश लिये सञ्चारित सर्वात्मा रस निर्भरिणी ये ॥

८०

धोराहे पर सती वधू के महास्तित्व की कर नोटझूकी,
शोक ! पूज्य व्यक्तित्व मलिन कर होली मना रहा है सन्की ।
अन्तःपुर के रस रहस्य को गलियों में कर स्वांग ठकेला,
नारी को नंगा कर पथ पर लोक लगा बैठा है मेला ॥

८१

जाग उठो जय के विश्वासी चेतो हे ! युग के अविनाशी,
नव निर्माता नई क्रान्ति से शीघ्र नष्ट हो नृ-तम विनाशी ।
महदर्चाभ्यासी प्रियदर्शी देवानां प्रिय भारत वासी,
अपनी रुधिर राशि से धो दो मातृ जाति की मलिन उदासी ॥

८२

बोर बोर तेरे ऋजु रस मे अपने नीरव नव छन्दों को,
ज्योति बाँटने उतर पड़ा कवि मुझमें इन मुझसे अन्धों को ।
जंग लगे लोहे के पट है खुले न ये युग सब कर हारा,
नारी स्वयं भंग कर दो अब पदाघात से पाहन कारा ॥

८३

कुल व्यवहार-विहार-प्यार निज-प्रति अधिकार-विचार भार सब,
यह घर-बार सम्हाल शेष बस श्रमिक मात्र मे सब प्रकार जब ।
फिर समान अधिकार माँग का कौन अर्थ ? क्या एक नही भ्रम ?
बहिन वधू, दुहिता जननी ! क्या त्याग रही हो अपने को तुम ? ॥

८४

हमें अनुकरण करने दो निज तुम न हमारा करो अनुशरण,
लक्ष्य बनी तुम रहो-लोक पथ पर हम बने रहें पन्थी गए ।
यदि विश्वास हिला तब तो संस्कृतियों के सुमेरु ढह जाएँ,
यदि माँगो प्रतिकार, सत्य तो चुके न कण भर हम मिट जाएँ ॥

८५

वधू-प्रणयिनी-भोग्य एक की भगिनी, पुत्री, कियत्पुरुष की,
अखिलाखिल अनन्त पुरुषों की जननी तुम समस्त पौरुष की ।
भोग मोह-तन की सजधज का तिमिरोत्पादक रोक प्रदर्शन—,
माँ मातृत्व करो निज दर्शित जो संयत मर्यादत हो जन ॥

८६

।मर विमुख सुत को प्रबोध जो मरण हेतु निज हाथ सजाती,
 नति विमोह कदनार्थ नवोद्गा शीष काट निज समुद्र पठाती ।
 ।राम मन्त्र जिससे तुलसी ने पा भव निधि का सेतु बनाया,
 उस नारी के देव द्वार पर मैं प्रणाम करने हूँ आया ॥

८७

जिसका रत्नागार खोल कर युग ने युग पुरुषों को पाया,
 धर्म प्रेम की मर्यादा में करली जिसने भस्म स्व काया ।
 रोकी स्व तप तेज से रवि गति, जीती प्रबल काल की माया,
 उस पवित्र नारी मन्दिर में मैं प्रणाम भर करने आया ॥

८८

जिसकी कुञ्ज गली में विह्वल ब्रह्म कृपा करण - रस का याचक,
 भुवनाधिप शिव कर खप्पर ले जिसकी ड्योढ़ी के चिर भिक्षुक ।
 जिसने ईश्वर को ऊखल से बाँध कनखियों से घमकाया,
 उस नारी की चरण धूलि पर मैं प्रणाम करने हूँ आया ॥

८९

जिसके उपकारों का पीवर भार निखिल प्राणी पर अतुलित,
 जिसके प्रति कृत निज कृतघ्नता-खलता का अम्बार न परमित ।
 प्रति प्रतिकार क्षमानुग्रह दे वरदानों से भुवन सजाया,
 उस उदार करुणा - महिमामयि को प्रणाम करने नर आया ॥

९०

नयनों से मुक्ता की वर्षा, उर पर पय की धार दमकती,
 कंगन भार व्यथित कोमल कर फिर जिनमें प्रलयासि चमकती ।
 संस्कृति को समाज मानव को निज का कर उत्सर्ग बचाया,
 अभय दायिनी ! नारी ! सविनय मैं प्रणाम करने हूँ आया ॥

९१

स्वरप्सरा का रूप तिरस्कृत करती सहज अनिन्द्य सुन्दरी,
 सिद्ध लोक की रूपसियों से कहीं अधिक यह मधुर रस भरी ।
 देवी गण का तेज मलिन है मधुर मानवी की काया से,
 उसकी आत्म ज्योति के आगे, रवि-शशि उड्डु लगते छाया से ॥

९२

एक ओर मम हृदय अपर तब रुचि से बैधी स्वभाव शृङ्खला-
अन्तर की सम्बद्ध त्विषा से गजी परस्पर की अवर गिला-
हुआ युगल का शक्ति समन्वय, हुई पुष्टि भौतिक आध्यात्मिक,
मिली तब कृपा से स्थिति-परिणति, जीवन को गति स्वस्थ मानसिक ॥

९३

समष्टि माँ में व्यष्टि बधू में, सृष्टि सार पाया दुहिता में,
सबका शान्त पवित्र अभ्युदय, हुआ बहिन की, ऋजु निजता में ।
चारों तत्व सूत्र सत्ता मय निज स्वरूप की सहज समीक्षा,
पुरुष पूर्ण होता इनसे ले संस्कार - शिक्षा, ऋण, दीक्षा ॥

९४

जीवन का ऊर्ध्वारोहण कर निखिल पूर्ण तक जब हम आते,
हम विशुद्ध तब शक्ति रूप में केवल नारी ही रह जाते ॥
अस्यायो स्थित - पुरुष आर्त्तव - उभय पदी संज्ञा है मानव,
शक्ति केन्द्र जो समारम्भ में शक्ति स्वरूप बाद में आर्जव ॥

९५

काव्य विफल असमर्थ भले हो, विरस कल्पना, कला यश दूह,
पर न यहाँ स्तुति, अर्थवाद, या वय, रुचि, प्रीति, व्यक्ति का आग्रह ।
इयमें है सङ्गीत प्राण का मानव की आस्था श्रुति प्रत्यय,
भारत के नैसर्गिक, आस्तिक, संस्कार, संस्कृति का विनिमय ॥

९६

आत्मा गाती मति वीणा पर उदित प्राण से हृदय हंस चढ़,
मिला न पर कवि हृदय न प्रतिभा, या अभिव्यक्ति शक्ति में अनपढ़ ।
कोटि महाकाव्यों कवियों से गेयातीत अगोचर नारी,
में विमूढ़ तम तद्विषयक कुछ कहने का न अल्प अधिकारी ॥

९७

पावन मन सरोज सम्पुट में निर्मल छवि ज्योत्स्ना मधु धारा,
उमड़ी जिससे अर्घ्य-अर्घ दे श्रद्धा का मणि दीप उसारा ।
आत्म विभोर - भाव संज्ञित हो अनुभव में जो सुन लख पाया,
चेष्टा की उतार दूँ उसकी भली बुरी कागद पर छाया ॥

९८

देवी श्रुति संदेश वाहिका, तत्त्व मूर्ति आलोक वाहिनी,
घरती की प्रभुता विभुता है ! संसृति, श्रेय सितार वादिनी ।
सबकी सार - सत्य शोभा सुख आत्माराम अचिन्त्य धाम है,
हे ! विभूति भावो की देवी ! बार बार तुमको प्रणाम है ॥

९९

संकल्पार्थ तवाञ्जलि भरने काव्य कमण्डलु भर लाया हूँ,
युग भिक्षुक को सँग में लेकर मन्त्र पाठ करने आया हूँ ।
हे ! भगवती महामति नागी परित्राण दो अभय दान दो,
पतनोन्मुख नर को समाज को नव जीवन दो नवोत्थान दो ॥

१००

अन्तर ज्योतिर्मध्य - विन्दु पर अग जग का व्यक्तित्व लपेटे,
सत्ता और इयत्ता से पर घन अनन्त को खड़ी समेटे ।
जहाँ सृष्टि की दृष्टि न जाती आत्मा का उन्मेष पहुँचता,
निखिल शक्ति सगम उस 'तुम' में एक सत्य शिव, सुन्दर हँसता ॥

१०१

सप्तावरण उठा कर सारे स्थूल व्यक्त के पार पहुँच कर,
हो अनुरूप रूप निरखा हे मन ने तीनों त्याग कवेवर ।
तब अवित्रेक अन्ति का रहता कहाँ प्रश्न 'सद्' का कर अनुभव,
इस भव में शोभित है नागी, नारी से शोभित है यह भव ॥

शुद्धि पत्र :--

मर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका	ग	-	१२	आश्वादक	आम्वादक
"	"	+	१६	स्नेहाद्र	स्नेहाद्र
"	ड	-	२३	नसगिक	नैसर्गिक
"	च	+	२०	द्रति	द्रत
विपयानुक्रमणिका	८	+	४	मेरा	मेरो
"	"	-	६	के	की
सर्ग मानवी १	८	७	८	जय	जय जय
"	४	१४	८	तु	तुम
"	६	१८	३	दृष्टा मृष्टा	द्रष्टा म्रष्टा
"	१०	१४	४	वाञ्छित	वाञ्छित
"	१७	६४	४	ज	जन
"	१	६७	६	"	अहं
"	१०	-	-	बना	बना
"	१	६	१	निश्श्रेयस्	निश्श्रेयस
"	११	८	१	अद्भुत	अद्भुत
"	१	१३	२	इमी	इमी
"	१८	६	३	पूर्णा	पूर्णा
"	२७	३६	१	सर्व	सर्व
"	२६	२८	४	नहीं	नहीं
"	२७	४४	३	मव	मव
"	२८	५०	१	चन्द्र	चन्द्र
"	२९	५७	१	कर	कूर
"	३१	६६	२	अचल	अचल
"	३२	७६	२	युक्त	लज्जा युक्त
"	३३	७८	१	ममत्व	माँ ममत्व
"	३४	८६	३	विष्णु	बिष्णु
"	३५	८२	४	मिस	मिष
"	"	८६	१	विष्णु	विष्णु

मर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३ दुहिता	१६	६	४	अदभुत	अद्भुत
"	४०	१७	२	की	की
"	४३	३७	३	सय	सव
"	४६	४५	३	लक्षो	लक्ष्यों
"	४६	७१	१	अन्तर	अन्तर
वदिन ४	५१	१	१	चिम्तन	चिन्तन
"	५६	२८	३	के	मन के
"	६४	७८	४	गुन्त	मुन्त
"	६५	८४	३	पावक	यावक
प्रेयसी ५	६८	५	४	यम्त्र	यन्त्र
"	६८	१०	३	वेणु	वेणु
"	७०	१५	४	बना	बना
"	७१	२२	४	बेला	बेला
"	७३	३२	०	धारा	धारा
"	७४	३६	३	श्वोम्नो	श्याम्नो
"	"	४३	३	अन	अन्तर
"	७६	५१	४	लक्ष	लक्ष्य
"	७८	८४	३	निर्णीत	नियति
"	"	६५	४	रेणु	रेणु
"	"	१७	१	भँवरे	भँवरे
"	८२	१	१-४	वर्ग	वर्ग
"	८२	४	४	सर्वोत्तम	सर्वोत्तम
"	७६	७१	२	सङ्गीत	गीत
"	८०	७५	२	सम्पन्न	पूर्ण
बधू ६	८५	२५	२	की	की
"	८६	२७	४	गमन'ज्योत्सना'	सुगमन ज्योत्सना
"	"	२९	१	अथ	अथ
"	८७	१२	३	भान्ति	भांति
"	८३	८१	४	जी न	जीवन
"	"	७२	४	भयि	मयि
"	८६	८६	४	विदा	विदा

सार्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	६६	म७	१	क	के
कामिनी ७	१०१	२३	४	स्निग्ध	स्निग्ध
"	"	"	४	श्वौस	श्वास
"	१०२	३६	१	कव	कव
"	१०३	३४	३	किम्तु	किन्तु
"	"	३७	३	धैर्य	धैर्य
७	१०७	५६	१	बोडषी	बोडशी
"	"	५८	१	निश्चल	निश्चल
"	"	६७	३	समिट	सिमट
"	१०६	६६	३	बाद	बाद
"	११०	७७	३	सामटी	सिमटी
"	११३	६३	४	सुख	दुर्ष
"	"	६६	३	गृहण	ग्रहण
"	११४	१०१	२	श्वौसों	श्वासों
गृहिणी ८	११५			षष्ठमर्ग	अष्टममर्ग
"	११६	३	१	शीश	शांश
"	"	४	४	तव	तव
"	"	४	८	अविश्वर	अविनिश्वर
"	११६	२५	४	मर	नर
"	१२२	३६	४	मधु	मधु
"	"	४०	१	बहुभण्डार	भण्डार
"	१२६	६३	३	निश्भेयस्	निश्भेयस
"	"	"	४	सद्	सद्
"	"	"	२	भावनाओं	माधनाओं
"	१२७	६८	३	निश्भेयस्	निश्भेयस
"	"	७१	४	उभयापेक्षा	उभयापेक्षा
मादवी ६	१३०	३	३	तमपाश	पाश
"	"	"	४	सूच्य	सूर्य्य तप्त
"	"	४	६	धन्य	धन्य है
"	"	७	१	परमार्थ	परमार्थ
"	"	"	"	सब	सब

सर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३१	६	४	सद्	त्रिसद्
२	१	१०	१	मार्ग	मणि
३	१	११	१	तुहिनागिरि	तुहिनगिरि
४	१३२	१५	१	ढकते	ढकते
५	१	१६	४	पहिचान	पहचान
६	१	१८	१	साध्वी	हैं साध्वी
७	१	१९	१	अमृतत्व	नृतत्व
८	१३०	१	३	अन	माङ्ग
९	१	१	१	आम	माअ
१०	१३३	२०	१	विभु	है विभु
११	१	१	१	कर्त्ता	कर्त्ता
१२	१	२०	४	अजेय	अजेय है
१३	१	२३	४	बाधा सब	बाधा
१४	१	२४	१	विष्णु	विष्णु
१५	१	१	६	पालना	पालन
१६	१	१	४	कर्म	है कर्म
१७	१३४	२६	१	गारा	गारा
१८	१	२७	१	भूनि	भूनि
१९	१	२८	१	गो रहता	गो रहता
२०	१	३१	१	निधिया	निधिया
२१	१३५	३३	१	स्वरूप यह	मु स्वरूप
२२	१	३४	१	आत्महोन	आत्माहोन
२३	१	१	१	वनु	सुतनु
२४	१	१	१	इदग	मन
२५	१	३५	१	अव	भद
२६	१	३६	१	स्व का	है को चिह्न
२७	१	३७	२	चरणो	पदां
२८	१	१	४	शाप	शिर
२९	१३६	४१	१	घटना	घटे
३०	१	४२	१	निर्माण	सुनिर्माण
३१	१	४३	१	मन्द	मन

मर्म	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	१३६	४३	५	प्रतिष्ठा	स्व प्रतिष्ठा
"	१३७	४५	१	विकृत	सुतनु विकृत
"	१३६	४७	३	कौमार्य	स्व कौमार्य
"	"	"	४	म्भन	स्वतः चिर
"	"	४३	२	कगती	करे
"	"	"	३	नारी	सुतनु
"	१३८	४०	२	कुपित	कुपित हो
"	"	"	४	पूजा	अर्चना
६	१३८	४२	२	शुद्ध	विशुद्ध
"	"	४५	५	किन्तु	परन्तु
"	"	४६	१	मख	यज्ञ
"	१३६	६०	५	किन्तु	किन्तु
"	१४०	६५	४	अधिकधिक	अधिकाधिक
"	१४१	६६	१	भाँके	भाँके न
"	"	७०	१	प्रात	प्रातः
"	"	"	३	कृपा	करुणा
"	"	८१	१	टिका	टिका चिर
"	१४२	७१	१	वाङ्मय	सुवाङ्मय
"	"	"	३	वाङ्मयन्तर	वाङ्मयन्तर
नायिका १६	१४४	७	३	निश्चयेयस्	निश्चयेयस
"	१४१	१७	४	हंस	हंस
"	१४४	६५	४	दर्शात्मव	दर्शात्मव
शोचिना ११	१६४	२६	४	येपिता	योपिता
"	१७२	७५	४	क्रान्ति	क्रान्ति
परित्यक्ता १२	१७५	१२	१	युख	मुख
"	१८०	४०	३	लक्ष	लक्ष्य
"	१८२	४४	४	आभिष	आभिष
"	१८३	६०	१	निश्चयेयस्	निश्चयेयस
अयुक्त पदिस	१६२	१६	४	द्वित	द्वित
"	१६६	४२	३	पोडयी	पोडशी

सर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	१६७	४८	२	स्वालिङ्गन	स्वालिङ्गन
"	२०२	७४	१	हटान्	हठात्
विधवा १४	२०३	१	४	मन	तन
"	२०४	५	३	द्युस्फीति	द्युस्फीति
"	२०६	१६	३	सौदर्य	सौन्दर्य
"	"	"	४	स्वर्ग	स्वर्ण
"	"	"	"	विछड	विछड़
"	२०६	३३	२	भेदन	अजित
"	"	"	"	लक्ष	पक्ष
"	२१०	४०	४	बुण्डली	कुण्डली
१४	२१०	४०	४	इसवा	इसका
"	२१६	७४	३	हटान्	हठान्
अपहृता १५	२१६	१०	१	ज्यौहर	जौहर
"	"	१२	३	सत्य	सत्त्व
"	२२३	३७	१	क्षब्ध	क्षुब्ध
"	"	"	४	हरीं	हठी
सहचरी १६	२३४	१४	१	हे	है
"	२३६	८८	१	महधर्मिणी	महधर्मिणी
"	"	३१	१	मर	नर
"	२४३	७३	२	निचिश्न	निश्चिन्त
"	२४४	७५	२	सम्भ मिश्रित	कानन मे
महिला १७	२४०	१०	×	सौरभ	सौरभ
"	२५५	७	१	रह	रहा
"	२५६	"	२	पर	भर
"	२५७	४	१	सुष्ठ	सुष्ठु
"	२५६	७	३	निश्श्रेयसाभ्युदय	निश्श्रेयसाभ्युदय
"	२६०			गौरवर्णा	गौरवर्णा
"	२६२	७	२	गृहण	ग्रहण
१५ चित्रलेखा	२६३	२	४	प्रतिभा	प्रतिभा
३७	२७४	४	३	सन्सूत्र	सत्सूत्र

सर्ग	पृष्ठ	छन्द	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
देवी ४१	२७५		२	स्थापित	सस्थापित नव
"	"		३	साथ प्रति	साथ
"	"		६	न	कव
"	"		८	अति	सु
प्रशालिका ४२	२७६		३	धन	घन
गायिका ४३	"	२	१	गृहण	प्रदण
"	"	"	२	सुधारणव	सुधारणव
आधुनिका	२७८		५	लक्ष	लक्ष्य
ऋतुमती ४८			४	धुल	धुल
१७-४६	२७६		४	की	का
अनुगेया १८	२८५	८	४	मेरे	मेरी
"	"	"	"	तुम	तुमने
"	२८७	३	१	दूत	दूर
"	२६२	४	१	यावन	यौवन
"	२६३	२	८	बन्द	बन्दी
"	२६८	८	५	षड्विपु	षड्विपु
नारी १६	३०८	१६	१	स्वतिक	स्वास्तिक
"	३०२	२५	४	गृहण	प्रहण
"	३०४	२६	१	पहिचान	पहचान
"	३०४	२६	८	रहस	रहस्
"	"	३०	५	नर्चित	नर्तित
"	३०७	४७	३	अतिपय	अतिशय
"	३०७	४६	१	ऋज	ऋजु
"	३०८	५०	१	मे	मैं
"	"	"	२	मे	"
"	"	"	३	में	"
"	"	"	४	में	मैं
"	"	५१	१	घर	धर
"	३०६	६०	३	हिन	हित
"	३१२	७७	४	नवारों	नवागे
"	"	७६	१	पुञ्ज	पुञ्ज

नारी महाकाव्य पर सम्मति :—

“अनेक दिनों की आशा और प्रतीक्षा के बाद नारी महाकाव्य दृष्टिगत हुआ। इसके अवलोकन से इतनी भावनायें अन्तर में उठीं, कि लेखनी द्वारा प्रकट नहीं कर पा रही हूँ। हिन्दीसाहित्य की विद्यार्थिनी होने के नाते यह लिखने का साहस करता हूँ कि इधर दीर्घ काल से हिन्दी में भाव पद्य और कलापद्य की दृष्टि से इतने गम्भीर काव्य का सृजन नहीं हुआ। हिन्दीसाहित्य के लिये तो यह आपकी अमूल्य देन है”।

सुदेवी शर्मा

“साहित्यरत्न” ‘हिन्दी प्रभाकर’ प्रयाग

“नारी महाकाव्य के प्रकाशन के लिये अनेक बधाई। हिन्दी साहित्य में यह ग्रन्थ अपने विषय का अद्वितीय है इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। इसमें आपका व्यक्तित्व एक कवि के नाते पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है। पूरा ग्रन्थ एक शक्कर की रोटी के समान है। इसे जिधर से भी तोड़ा जाय, उधर से ही मीठा है”।

देवी प्रसाद शर्मा एम. ए.

प्रयाग

लेखक के अन्य ग्रन्थ—

निमाई— (खण्ड काव्य) मूल्य १॥)

“आपने संस्कृत छन्दों में ही इस ग्रन्थ को लिखा है। प्रिय प्रवास की रचना के बाद दो एक ग्रन्थ और संस्कृत वृत्तों में लिखे गये, परन्तु किसी को उतनी सफलता नहीं मिली है जितनी कि आपको। मैं आपकी प्रशंसा इस सफलता प्राप्ति के विषय में करता हूँ।

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिद्वीध

आजमगढ़ १६-२-४४

मेरेचरण— (लेखक के बाल्य कालिक गीतों का संग्रह) मूल्य- १॥)

बापू की अन्तिम भौंकी—(बापू की अस्थि विसर्जन के अवसर पर लिखित १०१ छन्द) मूल्य ॥)

वैष्णव बोधिनी— (मूल लेखक-श्री राधाचरण गोस्वामी विद्या-वागीश। टीकाकार अतुल कृष्ण गोस्वामी मूल्य =)

प्राप्ति स्थान— एवं प्रकाशक

विभूति भारती पुस्तकालय

राधारमण बेरा

इन्दावन (मथुरा)

उत्तर प्रदेश

